740

क्रांतिकारी कोश

इस श्रमसिद्ध व प्रज्ञापुष्ट ग्रंथ **क्रांतिकारी कोश** में भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास को पूरी प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। सामान्यतया भारतीय स्वातंत्र्य आंदोलन का काल १८५७ से १९४२ ई. तक माना जाता है; किंतु प्रस्तुत ग्रंथ में इसकी काल-सीमा १७५७ ई. (प्लासी युद्ध) से लेकर १९६१ ई. (गोवा मुक्ति) तक निर्धारित की गई है। लगभग दो सौ वर्ष की इस क्रांति-यात्रा में उद्‌भट प्रतिभा, अदम्य साहस और त्याग-तपस्या की हजारों प्रतिमाएँ साकार हुईं। इनके अलावा राष्ट्रभक्त कवि, लेखक, कलाकार, विद्वान् और साधक भी इसी के परिणाम-पुष्प हैं।

पाँच खंडों में विभक्त पंद्रह सौ से अधिक पृष्ठों का यह ग्रंथ क्रांतिकारियों का प्रामाणिक इतिवृत्त प्रस्तुत करता है। क्रांतिकारियों का परिचय अकारादि क्रम से रखा गया है। लेखक को जिन लगभग साढ़े चार सौ क्रांतिकारियों के फोटो मिल सके, उनके रेखाचित्र दिए गए हैं। किसी भी क्रांतिकारी का परिचय ढूँढ़ने की सुविधा हेतु पाँचवें खंड के अंत में विस्तृत एवं संयुक्त सूची (सभी खंडों की) भी दी गई है।

भविष्य में इस विषय पर कोई भी लेखन इस प्रामाणिक संदर्भ ग्रंथ की सहायता के बिना अधूरा ही रहेगा।

9326

क्रांतिकारी कोश

प्रथम खंड

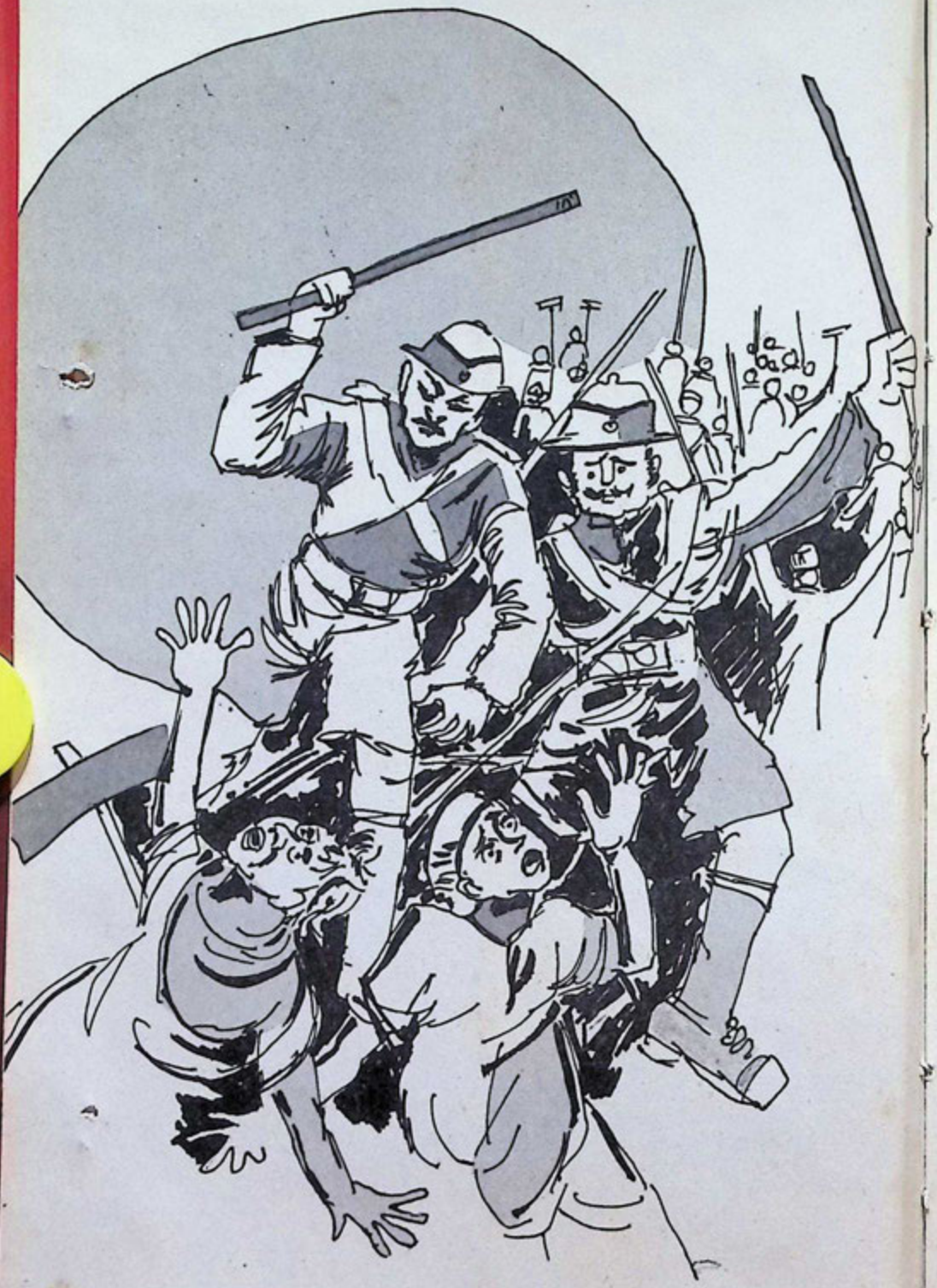

क्रांतिकारी कोश

प्रथम खंड

श्रीकृष्ण 'सरल'

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
ISO 9001 : 2000 प्रकाशक

प्रकाशक • प्रभात प्रकाशन™
४/१९ आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-११०००२
संस्करण • २०१०
सर्वाधिकार • सुरक्षित
मुद्रक • भानु प्रिंटर्स, दिल्ली
मूल्य • चार सौ रुपए (प्रथम खंड)
दो हजार रुपए
(पाँच खंडों का सेट)

KRANTIKARI KOSH (Encyclopaedia of Indian Freedom Fighters)
by Shrikrishna 'Saral'
Published by Prabhat Prakashan, 4/19 Asaf Ali Road, New Delhi-2

Vol I	Rs. 400.00	ISBN 81-7315-232-2
Set of five Vols.	Rs. 2000.00	ISBN 81-7315-237-3

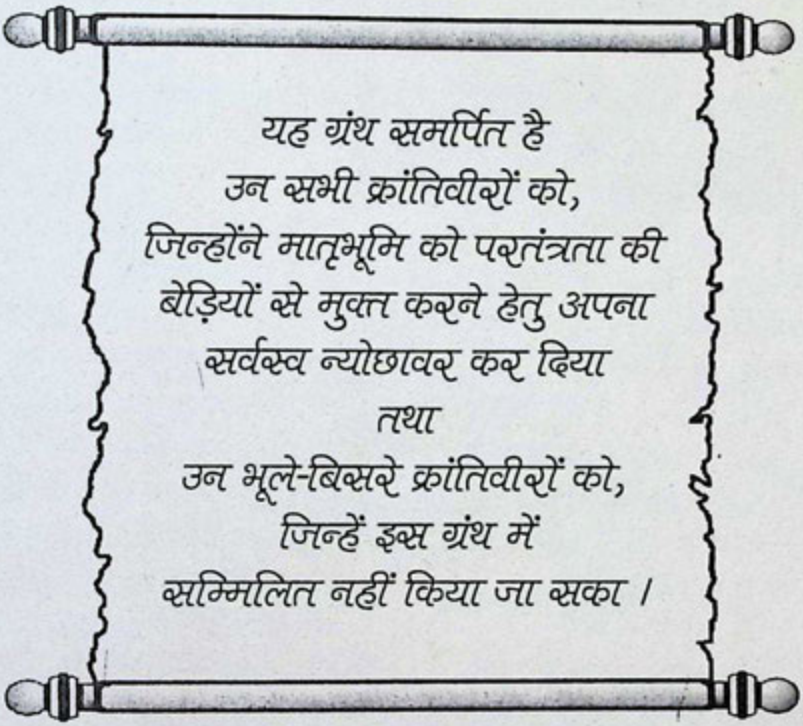

यह ग्रंथ समर्पित है
उन सभी क्रांतिवीरों को,
जिन्होंने मातृभूमि को परतंत्रता की
बेड़ियों से मुक्त करने हेतु अपना
सर्वस्व न्योछावर कर दिया
तथा
उन भूले-बिसरे क्रांतिवीरों को,
जिन्हें इस ग्रंथ में
सम्मिलित नहीं किया जा सका ।

भूमिका

भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन

भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग है। भारत की धरती के प्रति जितनी भक्ति और मातृ-भावना उस युग में थी, उतनी कभी नहीं रही। मातृभूमि की सेवा और उसके लिए मर-मिटने की जो भावना उस समय थी, आज उसका नितांत अभाव हो गया है।

क्रांतिकारी आंदोलन का समय सामान्यत: लोगों ने सन् १८५७ से १९४२ तक माना है। मेरा विनम्र मत है कि इसका समय सन् १७५७ अर्थात् प्लासी के युद्ध से सन् १९६१ अर्थात् गोवा मुक्ति तक मानना चाहिए। सन् १९६१ में गोवा मुक्ति के साथ ही भारतवर्ष पूर्णरूप से स्वाधीन हो सका है।

जिस प्रकार एक विशाल नदी अपने उद्गम स्थान से निकलकर अपने गंतव्य अर्थात् सागर मिलन तक अबाध रूप से बहती जाती है और बीच-बीच में उसमें अन्य छोटी-मोटी धाराएँ भी मिलती रहती हैं, उसी प्रकार हमारी मुक्ति गंगा का प्रवाह भी सन् १७५७ से सन् १९६१ तक अजस्र रहा है और उसमें मुक्ति यत्न की अन्य धाराएँ भी मिलती रही हैं।

सशस्त्र क्रांति की विशेषता यह रही है कि क्रांतिकारियों के मुक्ति प्रयास कभी शिथिल नहीं हुए। अपनी प्रमुख विशेषताओं और प्रवृत्तियों के कारण हम पूरे क्रांतिकारी आंदोलन का काल-विभाजन तथा उसका नामकरण भी कर सकते हैं—

युद्ध संगठन युग

प्लासी का युद्ध (सन् १७५७)

प्लासी का युद्ध अंग्रेजों और बंगाल के शासक सिराजुद्दौला के बीच सन् १७५७ में लड़ा गया था। यह युद्ध केवल आठ घंटे चला और कुल तेईस सैनिक मारे गए। युद्ध में सिराजुद्दौला की ओर से मीर जाफर ने गद्दारी की और रॉबर्ट

क्लाइव ने उसका भरपूर लाभ उठाया। प्लासी-विजय के पश्चात् भारतवर्ष में ईस्ट इंडिया कंपनी के माध्यम से अंग्रेजी साम्राज्य की नींव पड़ गई।

बंगाल का प्रथम सैनिक विद्रोह (सन् १७६४)

नए फौजी नियमों के विरोध में थलसेना ने बगावत कर दी। मेजर मनरो ने ब्रिटिश सेना के बल पर घमासान युद्ध के पश्चात् विद्रोह को दबा दिया। जो विद्रोही जीवित हाथ लगे, उन्हें तोपों के मुँह से बाँधकर उड़ा दिया गया।

जंगल महाल विद्रोह (सन् १७६७)

गद्दार मीर जाफर ने बंगाल के कुछ जिलों की जमींदारियाँ अंग्रेजों को दे दीं। इनमें से कुछ जिलों में अत्याचारों के विरोध में अंग्रेज विरोधी लहर उत्पन्न हो गई।

जंगल महाल के जमींदारों ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। मेजर फर्ग्यूसन को विद्रोहियों के साथ कई स्थानों पर युद्ध करना पड़ा। विद्रोही जमींदार जंगलों में छिप-छिपकर सशस्त्र प्रतिरोध करते रहे।

झाड़ग्राम के जमींदार ने भी विद्रोह कर दिया। मेजर फर्ग्यूसन ने कड़े संघर्ष के पश्चात् झाड़ग्राम दुर्ग पर अधिकार कर लेने में सफलता प्राप्त की।

घाटशीला के जमींदार ने कड़ा संघर्ष किया। उसके चुआड़ सैनिकों ने अंग्रेजी सेना को भयंकर क्षति पहुँचाई।

वीरभूम के जमींदार आसद जमान खाँ ने अंग्रेजों से डटकर मुकाबला किया। मेजर यार्क ने उसपर विजय प्राप्त की। इस प्रकार मिदनापुर, वीरभूम और बर्दवान जिले कंपनी सरकार के अधीन हो गए।

संन्यासी एवं फकीर विद्रोह (सन् १७६३ से १७७३ तक)

बंगाल में संन्यासियों और फकीरों के अलग-अलग संगठन थे। पहले तो इन दोनों संगठनों ने मिलकर अंग्रेजों के साथ संघर्ष किया; लेकिन बाद में उन्होंने पृथक्-पृथक् रूप से प्रतिरोध किया। संन्यासियों में उल्लेखनीय नाम हैं—मोहन गिरि और भवानी पाठक तथा फकीरों के नेता के रूप में मजनूशाह का नाम प्रसिद्ध है। ये लोग पचास-पचास हजार सैनिकों के साथ अंग्रेजी सेना पर आक्रमण करते थे। अंग्रेजों की कई कोठियाँ इन लोगों ने छीन लीं और कई अंग्रेज अफसरों को मौत के घाट उतार दिया। अंततोगत्वा संन्यासी विद्रोह और फकीर विद्रोह—दोनों ही दबा दिए गए।

बंगाल का द्वितीय सैनिक विद्रोह (सन् १७९५)

बंगाल की पंद्रहवीं बटालियन को आदेश मिला कि वह 'हमलक' स्थान पर

पहुँच जाए। बटालियन वहाँ पहुँच गई। वहाँ उस बटालियन को बताया गया कि उसे जहाज पर चढ़कर यूरोप जाना है। यूरोप में इस बटालियन को डच लोगों के साथ युद्ध करना था। भारतीय सैनिकों ने जहाज पर चढ़ने से इनकार कर दिया। उनमें से कुछ को गोलियों से भून दिया गया और कुछ को तोपों के मुँह से बाँधकर उड़ा दिया गया।

वेल्लौर का सैनिक विद्रोह (सन् १८०३)

वेल्लौर स्थित मद्रासी सेना ने भी अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। वह विद्रोह नंदी दुर्ग, सँकरी दुर्ग आदि स्थानों तक फैल गया। इसी विद्रोह के फलस्वरूप लॉर्ड विलियम वेंटिक को अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ा।

चुआड़ विद्रोह (सन् १७९८ से १८२० तक)

चुआड़ बंगाल की एक वन्य जाति थी। चुआड़ विद्रोह इसी वन्य जाति का विद्रोह था। यह जाति जंगल महाल जिले के भिन्न-भिन्न परगनों में रहती थी। कई स्थानों पर चुआड़ वीरों ने अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंका। बाद में संगठित होकर अंग्रेजी सेना ने बड़ी निर्ममता से इस विद्रोह का दमन कर दिया। 'रानी शिरोमणि' नाम की एक महिला विद्रोही ने भी अच्छी वीरता का प्रदर्शन किया। बाद में वह बंदी बना ली गई।

नायक विद्रोह (सन् १८२१)

इसी समय बगड़ी राज्य की नायक जाति ने भी अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध का बिगुल बजा दिया। अचलसिंह इस जाति का नेता था। गनगनी नामक स्थान पर अचलसिंह और अंग्रेज अफसर ओकेली की सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। दोनों ओर से बहुत जनहानि हुई। एक गद्दार के छल से अचलसिंह को गिरफ्तार कर लिया गया।

बैरकपुर का प्रथम सैनिक विद्रोह (सन् १८२४)

यह नायक विद्रोह और बहावी विद्रोह के बीच की कड़ी है। बंगाल रेजीमेंट को आदेश मिला कि वह बैलों की पीठ पर बैठकर हुगली नदी पार करे। रेजीमेंट ने यह आदेश मानने से इनकार कर दिया। सारे सैनिकों को निहत्था करके भून डाला गया।

बहावी विद्रोह (सन् १८२४ से १८३१ तक)

बहावी आंदोलन धार्मिक परिवेश में अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध एक विद्रोहात्मक प्रयास था। बहावियों का विश्वास था कि यदि हमने अंग्रेजी शासन को नहीं उखाड़ा तो वह हमको उखाड़ देगा। इस आंदोलन के नेता सैयद अहमद ने इसका समुचित प्रसार किया। इसके एक अन्य नेता का नाम तीतू मियाँ था।

कई लड़ाइयों में अंग्रेजी सेनाओं की पराजय हुई। आखिर यह आंदोलन दबा दिया गया।

गुजरात का महीकांत विद्रोह (सन् १८३६)

वैसे तो पूरे गुजरात में अंग्रेजों के प्रति विद्रोह की हवा चल रही थी; पर महीकांत में यह विद्रोह भड़ककर तीव्र हो गया। इस विद्रोह का दृढ़ता के साथ दमन कर दिया गया।

धर राव विद्रोह (सन् १८४१)

इस विद्रोह का सूत्रपात सतारा के महाराज छत्रपति प्रतापसिंह को राज्यच्युत करने के साथ हुआ। इस विद्रोह का संगठन धर राव पँवार ने किया। बदामी दुर्ग पर अधिकार कर लिया गया। अंग्रेजी सेना ने प्रत्याक्रमण करके दुर्ग को वापस ले लिया और विद्रोहियों को कड़े दंड दिए।

कोल्हापुर विद्रोह (सन् १८४४)

अंग्रेजों ने दाजी कृष्ण पंडित नाम के एक नए कर्मचारी की राज्य में नियुक्ति करके उसके द्वारा दोनों राजकुमारों को कैद करने का षड्यंत्र रचा। प्रजा सजग हो गई और अंग्रेज अफसरों को ही कैद किया जाने लगा। कई किले अंग्रेजों से छीन लिये गए। अंग्रेजी खजाने लूट लिये गए। अंग्रेज रक्षक मार डाले गए। कर्नल ओवांस को कैद कर लिया गया। बड़ी मुश्किल से संगठित होकर अंग्रेजों ने विद्रोह का दमन किया।

संथाल विद्रोह (सन् १८५४ से १८५५ तक)

संथाल जाति बंगाल और बिहार में फैली हुई थी। एक बार अंग्रेजी कुप्रबंध के कारण चीजें महँगी हो गईं। तीस हजार संथाल अपनी प्रार्थना लेकर कलकत्ता के लिए प्रस्थित हुए। उनका नेता सिद्धो था। दल में स्त्रियाँ और बच्चे भी थे। एक झगड़े में संथालों ने एक पुलिस इंस्पेक्टर को मार डाला। फौज भेजी गई। फौज ने हजारों संथालों को मार डाला और विद्रोह का दमन कर दिया गया।

सन् १८५५ का सैनिक विद्रोह

यह सैनिक विद्रोह निजाम हैदराबाद की फौज की तृतीय घुड़सवार सेना ने किया था। इस विद्रोह को दबाने में ब्रिगेडियर मैकेंजी के शरीर पर दस घाव लगे। मुश्किल से उसकी जान बच पाई। बड़ी फौज भेजकर विद्रोह दबा दिया गया।

प्रथम स्वाधीनता संग्राम (सन् १८५७)

सीमित पृष्ठों में इतने बड़े स्वाधीनता संग्राम का विवरण देना संभव नहीं है।

यहाँ तो उसकी गणना मात्र कराई जा रही है। अंतिम मुगल सम्राट् बहादुरशाह जफर के नेतृत्व में यह युद्ध लड़ा गया। कई रियासतों ने गद्दारी की और क्रांतिकारी सेना का साथ नहीं दिया। कई स्थानों पर अंग्रेजों की बुरी तरह पराजय हुई; पर अंत में विजय उन्हींकी हुई। महारानी लक्ष्मीबाई ने लड़ते-लड़ते वीरगति प्राप्त की। इस स्वाधीनता संग्राम में एक लाख से ऊपर क्रांतिकारी सैनिक मारे गए।

नील विद्रोह (सन् १८५० से १८६० तक)

बंगाल और बिहार में नील की खेती की जाती थी। नील की खेती से अंग्रेज बनिये खूब धन कमाते थे और वे संथाल मजदूरों का भरपूर शोषण करते थे। आखिरकार संथाल मजदूरों और कृषकों ने विद्रोह कर दिया। अंग्रेजों की कई कोठियाँ जला दी गईं और अंग्रेज मार डाले गए। विद्रोह दबा दिया गया; लेकिन मजदूरों का शोषण बंद हो गया।

कूका विद्रोह (सन् १८७२)

कूके लोग सिखों के नामधारी संप्रदाय के लोग थे। इन लोगों के सशस्त्र विद्रोह को 'कूका विद्रोह' के नाम से पुकारा जाता है। गुरु रामसिंहजी के नेतृत्व में कूका विद्रोह हुआ। कूके लोगों ने पूरे पंजाब को बाईस जिलों में बाँटकर अपनी समानांतर सरकार बना डाली। कूके वीरों की संख्या सात लाख से ऊपर थी। अधूरी तैयारी में ही विद्रोह भड़क उठा और इसी कारण वह दबा दिया गया।

वासुदेव बलवंत फड़के के मुक्ति प्रयास (सन् १८७५ से १८७९)

वासुदेव बलवंत फड़के का क्षेत्र महाराष्ट्र था। उसने रामोशी, नाइक, धनगर और भील जातियों को संगठित करके उनकी एक सुसज्जित सेना बना डाली। अंग्रेजी सेना के विरुद्ध उसने कई सफल लड़ाइयाँ लड़ीं। ब्रिटिश शासन के लिए वह आतंक बन गया। किसी देशद्रोही ने उसे सोते में गिरफ्तार करा दिया। उसे आजीवन कारावास का दंड देकर अदन की जेल में बंद कर दिया गया। वहीं उसका प्राणांत हुआ।

वासुदेव बलवंत फड़के के साथ ही आमने-सामने के और छापामार युद्धों का युग समाप्त हो गया।

गोपनीय क्रांति संगठन युग

चाफेकर संघ (सन् १८९७ के आसपास)

महाराष्ट्र के पूना नगर में दामोदर हरि चाफेकर, बालकृष्ण हरि चाफेकर और वासुदेव हरि चाफेकर नाम के तीन सगे भाइयों ने एक संघ की स्थापना की

और युवकों को अर्द्ध-सैनिक प्रशिक्षण देकर ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध उन्हें तैयार किया। इन लोगों को लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का संरक्षण प्राप्त था। २२ जून, १८९७ को उन्होंने पूना के अत्याचारी प्लेग कमिश्नर मि. रैंड और एक पुलिस अधिकारी मि. आयरिस्ट को गोलियों से भून डाला। इस कांड में दोनों चाफेकर बंधुओं को फाँसी का दंड मिला। सबसे छोटे भाई वासुदेव हरि चाफेकर को भी मुखबिर की हत्या के अपराध में फाँसी का दंड मिला।

बंग-भंग आंदोलन (सन् १९०५)

बंगाल में स्वदेशी आंदोलन पहले से ही चल रहा था। इसके अंतर्गत विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करके स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग को प्रोत्साहित किया जा रहा था। इसी बीच भारत के वाइसराय लॉर्ड कर्जन ने बंगाल प्रांत के विभाजन की घोषणा कर दी। इस घोषणा से सारा बंगाल भड़क उठा और गोपनीय क्रांतिकारी समितियाँ सक्रिय हो उठीं। अत्याचारी अंग्रेजों के विरुद्ध बमों और पिस्तौलों का उपयोग होने लगा। यह आंदोलन केवल बंगाल तक सीमित न रहकर समस्त भारत की आजादी का आंदोलन बन गया।

यूरोप में भारतीय क्रांतिकारियों के मुक्ति प्रयास (सन् १९०५ के आसपास)

भारत के प्रसिद्ध क्रांतिकारी और संस्कृत के प्रकांड विद्वान् श्यामजी कृष्ण वर्मा ने लंदन में 'इंडिया हाउस' की स्थापना करके उसे भारतीय क्रांतिकारियों का केंद्र बना दिया। उनके सहयोगी थे विनायक दामोदर सावरकर, जो बाद में 'वीर सावरकर' के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्हींके एक नौजवान साथी मदनलाल धींगरा ने एक अत्याचारी अंग्रेज अफसर को लंदन में गोली मारकर फाँसी का दंड प्राप्त किया। उस समय लंदन में कई भारतीय क्रांतिकारी सक्रिय थे, जिनमें लाला हरदयाल का नाम प्रमुख है।

फ्रांस में भी भारतीय क्रांतिकारी सक्रिय हो उठे। वहाँ मदाम कामा और सरदारसिंह राणा ने अच्छा खासा क्रांतिकारी संगठन खड़ा कर डाला।

जर्मनी में भी 'बर्लिन कमेटी' नाम से भारतीय क्रांतिकारियों का एक संगठन कार्य करने लगा।

अमेरिका तथा कनाडा में गदर पार्टी (प्रथम विश्वयुद्ध के आगे-पीछे)

अमेरिका और कनाडा पहुँचनेवाले प्रवासी भारतीयों ने सन् १९०७ में 'हिंदुस्तान एसोसिएशन' नाम की एक संस्था स्थापित की। सन् १९१३ में कनाडा के सान फ्रांसिस्को नगर में 'गदर पार्टी' नाम की एक महत्त्वपूर्ण संस्था स्थापित की गई। इसी संस्था का मुखपत्र 'गदर' दुनिया के कई देशों में निःशुल्क भेजा जाता

था। गदर पार्टी के संस्थापकों में लाला हरदयाल, सोहनसिंह भकना, भाई परमानंद, पं. परमानंद, करतारसिंह सराबा और बाबा पृथ्वीसिंह आजाद प्रमुख थे। इस पार्टी के हजारों सदस्य भारत को आजाद कराने के लिए जहाजों द्वारा भारत पहुँचे। ये लोग पूरे पंजाब में फैल गए और अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध गोपनीय कार्य करने लगे। गद्दारी के दुष्परिणाम से यह आंदोलन भी दबा दिया गया। सैकड़ों लोग गोलियों से भून दिए गए और सैकड़ों को फाँसी पर लटका दिया गया।

विप्लववादी युग

रासबिहारी बोस की क्रांति चेष्टा

जब गोपनीय क्रांति समितियों द्वारा भारत की आजादी के प्रयास सफल नहीं हुए तो कुछ क्रांतिकारियों का ध्यान इस ओर गया कि सेना के बिना स्वाधीनता प्राप्त करना संभव नहीं है। सेना का निर्माण संभव नहीं था। इस बात का प्रयत्न किया गया कि अंग्रेजों के अधीन भारतीय सेनाओं को विप्लव के लिए भड़काया जाए और आजादी की दिशा में प्रयत्न किए जाएँ। महान् क्रांतिकारी रासबिहारी बोस इस योजना के सूत्रधार थे। इस कार्य के लिए सेनाओं को तैयार कर लिया गया; लेकिन कृपालसिंह नाम के एक गद्दार ने भेद देकर सारी योजना पर पानी फेर दिया। कई क्रांतिकारियों को फाँसी का उपहार मिला।

'हिंदुस्तान प्रजातंत्र संघ' (सन् १९१५ के आसपास)

रासबिहारी बोस के लेफ्टिनेंट शचींद्रनाथ सान्याल ने समस्त उत्तर भारत में एक सशक्त क्रांति संगठन खड़ा कर दिया। इस संगठन की सेना के विभागाध्यक्ष रामप्रसाद बिस्मिल थे। इस संघ ने कई महत्त्वपूर्ण कार्य किए; लेकिन ब्रिटिश साम्राज्य ने इसके कार्यों को विफल कर दिया।

सशस्त्र क्रांति का प्रगतिशील युग

इस युग को 'भगतसिंह-चंद्रशेखर आजाद युग' के नाम से जाना जाता है। भगतसिंह क्रांतिपथ के मील के पत्थर की भाँति थे। इन लोगों ने 'हिंदुस्तान प्रजातंत्र संघ' का नाम बदलकर 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ' कर दिया। इनके प्रगतिशील कार्य थे—

१. अखिल भारतीय स्तर पर क्रांति संगठन खड़ा करना।
२. क्रांति संगठन को धर्मनिरपेक्ष स्वरूप प्रदान करना।
३. समाजवादी समाज की स्थापना का संकल्प करना।

४. क्रांतिकारी आंदोलन को जन आंदोलन का स्वरूप प्रदान करना।
५. महिला वर्ग को क्रांति संगठन में प्रमुख स्थान प्रदान करना।

क्रांति-शांति समन्वित युग

इस युग में भारत की आजादी के लिए जो प्रयत्न किए गए, वे अहिंसात्मक आंदोलनकारियों और क्रांतिकारियों द्वारा मिलजुलकर किए गए। इस आंदोलन के दो प्रमुख चरण थे—

अगस्त क्रांति (सन् १९४२ का 'भारत छोड़ो आंदोलन')

सन् १९४२ में व्यापक जनक्रांति फूट पड़ी। ब्रिटिश शासन ने ९ अगस्त सन् १९४२ को महात्मा गांधी और सभी प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार करके जेलों में डाल दिया। गांधीजी द्वारा 'करो या मरो' का नारा दिया जा चुका था। नेताविहीन आंदोलनकारियों की समझ में जो आया, वही उन्होंने किया। सशस्त्र क्रांति के समर्थक, जो 'सत्याग्रह आंदोलन' में विश्वास नहीं रखते थे, वे भी इस आंदोलन में कूद पड़े और तोड़-फोड़ का कार्य करने लगे। संचार व्यवस्था भंग करने के लिए तार काट दिए गए और सेना का आवागमन रोकने के लिए रेल की पटरियाँ उखाड़ी जाने लगीं। ब्रिटिश शासन ने निर्ममतापूर्वक इस आंदोलन को कुचल डाला। हजारों लोग गोलियों के शिकार हुए।

दक्षिण-पूर्व एशिया में आजाद हिंद आंदोलन

द्वितीय विश्वयुद्ध के दिनों में ही भारत के क्रांतिकारी नेता सुभाषचंद्र बोस अपनी योजना के अनुसार ब्रिटिश जासूसों की आँखों में धूल झोंककर अफगानिस्तान होते हुए जर्मनी जा पहुँचे। जब विश्वयुद्ध दक्षिण-पूर्व एशिया में उग्र हो उठा और अंग्रेज जापानियों से हारने लगे, तो सुभाषचंद्र बोस जर्मनी से जापान होते हुए सिंगापुर पहुँच गए तथा आजाद हिंद आंदोलन के सारे सूत्र अपने हाथ में ले लिये। उन्हें 'नेताजी' के संबोधन से पुकारा जाने लगा। आजाद हिंद आंदोलन के प्रमुख अंग थे—आजाद हिंद संघ, आजाद हिंद सरकार, आजाद हिंद फौज, रानी झाँसी रेजीमेंट, बाल सेना, आजाद हिंद बैंक और आजाद हिंद रेडियो।

आजाद हिंद फौज ने कई लड़ाइयों में अंग्रेजी सेनाओं को परास्त किया तथा मणिपुर एवं कोहिमा क्षेत्रों तक पहुँचने और भारतभूमि पर तिरंगा झंडा फहराने में सफलता प्राप्त की।

अमेरिका द्वारा जापान के हिरोशिमा एवं नागासाकी नगरों पर परमाणु बम छोड़ देने और भारी तबाही के कारण जापान ने हथियार डाल दिए। स्वाभाविक ही

था कि नेताजी सुभाष द्वारा भारत की आजादी के लिए किए जा रहे प्रयत्नों का पटाक्षेप हो गया। आजाद हिंद फौज के बड़े-बड़े अफसरों को गिरफ्तार करके भारत लाया गया और उनपर मुकदमे चलाए गए। नेताजी सुभाष के विषय में सुना गया कि मोरचा बदलने के क्रम में विमान के दुर्घटनाग्रस्त होने के कारण १८ अगस्त, १९४५ को फारमोसा द्वीप के ताइहोकू स्थान पर उनकी मृत्यु हो गई।

नौसैनिक विद्रोह (सन् १९४६)

नेताजी सुभाषचंद्र बोस बार-बार यह कहा करते थे कि हम नहीं कह सकते कि भारत की आजादी देखने के लिए हममें से कौन-कौन बचेगा; पर यह निश्चित है कि निकट भविष्य में ही भारत को आजादी मिलेगी और वह आजाद हिंद फौज के प्रभाव से मिलेगी। नेताजी की यह भविष्यवाणी पूर्णरूप से सत्य निकली।

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति पर शाही भारतीय नौसेना के बेड़े भारत लौट रहे थे। शाही भारतीय नौसेना का एक जहाज उन दिनों अराकान में था। जहाज के कर्मचारी और अधिकारी जब नगर भ्रमण के लिए निकले तो कुछ प्रवासी भारतीय उन्हें बाजार में मिल गए। परिचय होने पर उन प्रवासी भारतीयों ने नौसैनिकों को यह कहकर प्रताड़ित किया—

'आप लोगों को धिक्कार है कि आप भारत मुक्ति के लिए न लड़कर उसकी गुलामी को स्थायी करने के लिए लड़े और आप लोगों ने दूसरे स्वतंत्र देशों को भी गुलाम बनाने में अंग्रेजों की सहायता की। आप लोगों से तो नेताजी सुभाष चंद्र बोस की आजाद हिंद फौज लाख गुना अच्छी निकली, जो भूखी और अधभूखी रहकर अपने देश की आजादी के लिए लड़ी। आप लोगों को तो विजय की खुशी मनाने के स्थान पर चुल्लू-भर पानी में डूब मरना चाहिए।'

यह प्रताड़ना सुनकर नौसेना के सैनिकों की आँखें खुल गईं। स्वयं उनकी आत्मा ने उन्हें बहुत धिक्कारा। उन लोगों ने संकल्प कर डाला कि भारत पहुँचकर या तो देश को आजाद करके दिखाएँगे या अपने प्राण दे देंगे। इन नौसैनिकों ने अपने जहाज पर स्थान-स्थान पर नेताजी सुभाषचंद्र बोस के चित्र टाँग दिए और अभिवादन के लिए 'जयहिंद!' को अपना लिया। भारत पहुँचकर इन लोगों ने 'जयहिंद लहर' अन्य सभी जहाजों पर भी पहुँचा दी। सभी जहाजों के चुने हुए प्रतिनिधियों की एक संघर्ष समिति गठित कर ली गई।

'तलवार' नाम के एक जहाज के नौसैनिकों ने आखिर एक दिन अंग्रेज अधिकारियों से झगड़ा मोल ले लिया और विद्रोह का बिगुल बजा दिया। उस समय बंबई में जितने भी जहाज थे, उन सभी में विद्रोह की लपटें फैलने में देर नहीं लगी।

विद्रोह में सम्मिलित होनेवाले जहाजों में से प्रमुख थे—'हिंदुस्तान', 'कावेरी', 'सतलज', 'नर्मदा', 'यमुना', 'असम', 'बंगाल', 'पंजाब', 'ट्रावनकोर', 'काठियावाड़', 'बलूचिस्तान' और 'राजपूत' इत्यादि। कुछ प्रशिक्षण देनेवाले जहाज भी थे; जैसे—'डलहौजी', 'कलावती', 'दीपावली', 'नीलम' और 'हीरा'। सभी जहाजों पर से यूनियन जैक उतारकर कांग्रेस के तिरंगे झंडे फहरा दिए गए। सभी जहाजों में हिंदू-मुसलिम एकता के दृश्य देखने लायक थे।

बंबई के अतिरिक्त भारत के अन्य बंदरगाहों, जैसे—कराची, विशाखापट्टनम्, मद्रास, कोचीन, कलकत्ता और अन्य बंदरगाहों में जितने भी जहाज थे, सभी ओर विद्रोह फैल गया। भारत के बाहर भी जो जहाज थे, उन्हें भी संदेश भेजे गए और वे भी नौसैनिक विद्रोह में सम्मिलित हो गए। सभी जहांजों पर 'जयहिंद' के नारे गूँजने लगे और 'नेताजी की जय' बोली जाने लगी। सभी जहाजों पर नेताजी के चित्र भी टाँगे गए।

अंग्रेज कमांडरों ने थलसेना को यह आदेश दिया कि वे नौसैनिकों पर गोलियाँ चलाएँ, तो थलसेना ने यह आदेश मानने से इनकार कर दिया और वे भी विद्रोह में सम्मिलित हो गए। कराची में वायुसेना ने भी विद्रोह कर दिया और वह विद्रोह दूर-दूर तक फैल गया। बंबई में नागरिकों ने भी विद्रोहियों का साथ दिया और ब्रिटिश सेना के साथ जमकर युद्ध किया।

संधिवार्त्ता प्रारंभ हुई तो सरदार वल्लभभाई पटेल और श्रीमती अरुणा आसफ अली को मध्यस्थ स्वीकार किया गया। उन दोनों नेताओं ने हड़ताल तो समाप्त करा दी, पर वे विद्रोहियों को बाद में होनेवाले दुष्परिणामों से बचाने में असफल रहे। यदि उस समय भारत में सुभाषचंद्र बोस जैसा नेता होता तो भारत उसी समय आजाद हो गया होता। फिर भी सुभाषचंद्र बोस के नाम और उनकी आजाद हिंद फौज भारतीय सेना के तीनों अंगों में बगावत फैलाने में सफल हुई तथा ब्रिटिश साम्राज्य को भारत से अपने बोरिए-बिस्तर बाँधने के लिए विवश होना पड़ा।

लाल किले की चिनगारी

सन् १९४६ के नौसैनिक विद्रोह का तात्कालिक कारण दिल्ली के लाल किले में आजाद हिंद फौज के अफसरों पर मुकदमा चलाना भी था। जिन अफसरों पर मुकदमा चलाया गया, उनमें से प्रमुख थे—मेजर जनरल शहनवाज खाँ, कर्नल गुरुबख्शसिंह ढिल्लन और कर्नल प्रेमकुमार सहगल। ब्रिटिश शासन चाहता था कि इन अफसरों को फाँसी का दंड मिले। इन वीरों को बचाने के लिए जहाजी बेड़े के सैनिकों ने भी चंदे दिए, जो एक प्रकार की बगावत ही थी। सारे भारत में चेतना की

लहर फैल गई और पूरी जनता अपने राष्ट्रीय वीरों को बचाने के लिए तनकर खड़ी हो गई। यहाँ भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सारे देश में एकता की लहर फैलाने में आजाद हिंद फौज ही सहायक हुई।

आजाद हिंद फौज के राष्ट्रवीरों की ओर से मुकदमा लड़ने के लिए देश के प्रसिद्ध वकीलों की एक समिति बनाई गई, जिसके मुखिया थे श्री भूलाभाई देसाई। स्मरणीय है कि श्री भूलाभाई देसाई पहले श्री सुभाषचंद्र बोस के कटु आलोचक थे; लेकिन उनकी बहादुरी के किस्से सुन-सुनकर वे उनके कट्टर भक्त बन गए। पं. जवाहरलाल नेहरू ने भी आजाद हिंद फौज की वकालत की।

यह सब लिखने का तात्पर्य यह है कि आजाद हिंद फौज के वीरों पर चलाए जानेवाले मुकदमे से भारत की जनता भड़क उठी और बंबई स्थित नौसेना ने तो तत्काल ही विद्रोह का बिगुल बजा दिया। इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। यह विद्रोह सेना के तीनों अंगों में फैल गया और ब्रिटिश शासन को भारत छोड़ने का निर्णय लेना पड़ा। तभी तो तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री लॉर्ड एटली ने ब्रिटिश पार्लियामेंट में बयान देते हुए कहा था—

'ब्रिटेन भारत को सत्ता का हस्तांतरण इसलिए कर रहा है कि भारतीय सेना अब ब्रिटेन के लिए वफादार नहीं है और ब्रिटेन इतनी बड़ी ब्रिटिश सेना भारत में नहीं रख सकता, जो भारत को गुलाम बनाकर रख सके।'

और बहुत ईमानदारी के साथ ब्रिटिश साम्राज्य ने सत्ता का हस्तांतरण करते हुए सुभाषचंद्र बोस के महत्त्व को स्वीकार करते हुए कहा था—

'भारत सरकार को शीघ्र ही यह विदित हो गया कि अंग्रेजी राज्य की रीढ़ की हड्डी अर्थात् भारतीय सेना पर अधिक समय तक निर्भर नहीं रहा जा सकता। हेमलेट के पिता की भाँति सुभाषचंद्र बोस का भूत लाल किले की आग्नेय दरारों को खूँद रहा था और उसका औचक विराट् व्यक्तित्व उन अधिवेशनों पर छाया हुआ था, जिनमें भारत को आजादी देने के लिए निर्णय लिये जा रहे थे।'

—माइकेल एडवर्ड्स, 'लास्ट ईयर्स ऑफ ब्रिटिश इंडिया'

इसी प्रकार के विचार व्यक्त किए हैं एक अंग्रेज लेखक अलास्टेअर लैंब ने। उनके शब्द हैं—

'युद्ध की समाप्ति पर आजाद हिंद फौज के वीरों पर चले मुकदमे से उत्पन्न उत्तेजना और सन् १९४६ के नौसैनिक विद्रोह ने यह सिद्ध कर दिया कि अंग्रेज लोग भारत में अपना साम्राज्य कायम रखने के लिए भारतीय सेनाओं पर भरोसा नहीं रख सकते। किसी अन्य कारण की अपेक्षा इसी सत्य ने ब्रिटिश मन को बाध्य किया कि भारत को स्वराज्य देना अवश्यंभावी हो गया है।'

इसी तथ्य को ब्रिटिश लेखक माइकेल एडवर्ड्स ने इन शब्दों में स्वीकारा है—

'केवल एक ही महान् व्यक्तित्व था, जिसने अन्य लोगों से पृथक् और उग्रता का मार्ग अपनाया; और वह था—सुभाषचंद्र बोस। सच बात तो यह है कि यद्यपि उसके प्रयास असफल जैसे दिखाई दिए, पर भारत की आजादी का सर्वाधिक श्रेय केवल उसीको है, किसी अन्य को नहीं।'

स्वतंत्रता प्राप्ति की इस प्रक्रिया को हम एक रूपक के माध्यम से भलीभाँति समझ सकते हैं—

यदि कोई बहुत बड़ा वृक्ष किसी ऐसे स्थान पर खड़ा हो, जो आसपास के मकानों को क्षति पहुँचा सकता हो, तो उसे काटकर गिराने के उपाय किए जाते हैं। पहले कुछ लोग उस वृक्ष के तने पर एक तरफ से कुल्हाड़े चलाते हैं और उसे काफी काट देते हैं। कहीं वह वृक्ष काटनेवालों पर ही न गिर पड़े, इसके लिए उसकी शाखाओं से रस्से बाँधकर दूर खड़े लोग उसे हिलाते हैं। जब वह वृक्ष हिलाने पर भी नहीं गिरता तो अनुभव किया जाता है कि वृक्ष के तने को दूसरी ओर से भी काटा जाए। उसे दूसरी ओर से भी काटा जाता है। उसकी शाखाओं से बँधे रस्सों के सहारे जब उसे फिर हिलाया जाता है तो वह गिर जाता है; पर यदि उसकी झोंक न सँभाली गई तो वह किसी भवन पर गिरकर उसे खंडित कर सकता है।

ठीक यही हुआ भारत की आजादी के संदर्भ में। दासता के उस विशाल वृक्ष को गिराने के लिए भारतीय क्रांतिकारी उसपर निरंतर कुठाराघात करते रहे। सन् १८८५ में स्थापित कांग्रेस ने अपने असहयोग के रस्सों से बाँधकर दूर खड़े होकर उस वृक्ष को गिराना चाहा तो वह नहीं गिरा। फिर नेताजी सुभाषचंद्र बोस की आजाद हिंद फौज के कुल्हाड़ों ने उसे दूसरी ओर से अर्थात् भारत से बाहर जाकर उसे काफी हद तक काट दिया। उसके पश्चात् जब नौसैनिक विद्रोह के रस्सों ने उससे जोर-आजमाई की तो वह भरभराकर गिर पड़ा; पर गिरते-गिरते भी दासता का वह वृक्ष हमारी आजादी के भवन पर गिरा और उसे खंडित कर गया।

गोवा मुक्ति आंदोलन

यद्यपि भारत को लूली-लँगड़ी आजादी १५ अगस्त, १९४७ को मिल गई थी, पर यह अनुभव किया जाता रहा था कि उसका एक बहुत अच्छा भाग—गोवा—पुर्तगाली शासन के अधीन है।

१५ अगस्त, १९४७ से ही गोवा को पुर्तगाली शासन से मुक्त करने के प्रयास

किए जाते रहे। इस गोवा मुक्ति आंदोलन में गोवा निवासियों और शेष भारत के लोगों ने भी प्रयत्न किए। सर्वाधिक प्रयत्न किए गए सन् १९५५ में। पुर्तगाल शासन की यह नीति थी कि वह गोवा निवासियों को तो जेलों में डालकर तथा यातनाएँ देकर उन्हें समाप्त कर देती थी और जो शेष भारत के आंदोलनकारी गोवा की सीमा में प्रवेश करते थे, उन्हें गोवा की फौज गोलियों से भून डालती थी।

जब हमारी स्वाधीन सरकार पर भारतीयों और विदेशियों ने बहुत अधिक जोर डाला तो सन् १९६१ में हमारे देश (भारत) के तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू मिलिट्री एक्शन के लिए तैयार हुए। मिलिट्री एक्शन सफल हुआ और गोवा भी सन् १९६१ को मुक्त हो गया। गोवा की मुक्ति के साथ ही हमारे देश को पूर्ण आजादी मिली।

क्या यह ग्रंथ क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास है?

जी नहीं, यह पुस्तक क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास नहीं है। मैं अकेला इतिहास लिख भी कैसे सकता था। इतिहास लेखन के लिए लेखकों का एक मंडल होना चाहिए। उस आंदोलन के विषय में व्यक्तिगत रूप से जो सामग्री मैं सत्ताईस वर्षों में जुटा सका, उसे कथाओं के रूप में सँजोकर रख दिया है। वैसे इन कथाओं में पूरा इतिहास छिपा है और वह भी काल-क्रमानुसार। मैंने एक बात का अवश्य ध्यान रखा है कि किसी कल्पित पात्र या घटना का इसमें समावेश नहीं किया गया है। सबकुछ इतिहास जैसा ही प्रामाणिक और सत्य है। कथाओं में बिखरा हुआ यह क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास है। यदि आगे कोई क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास लिखने बैठेगा तो इस पुस्तक में उसे बहुत सामग्री मिल जाएगी।

एक बात और स्पष्ट कर दूँ कि इतना सारा लिख देने के पश्चात् भी बहुत कुछ छूट गया है। यदि उस छूटे हुए को समेटने का प्रयत्न करता तो यह भी छूट जाता। इस उम्र में भूलने की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है। सबकुछ भूल जाने के पहले ही, जो कुछ याद है, उसे लिख लेना ही मैंने श्रेयस्कर समझा। जो क्रांतिवीर छूट गए हैं, उन्हें इस पुस्तक के आगामी संस्करणों में समाविष्ट करने का प्रयत्न करूँगा।

घटनाओं के प्रस्तुतीकरण या चित्रों के प्रकाशन में यदि मुझसे भूलें हुई हों, तो वे मेरी अपनी भूलें हैं। मैं उनके लिए क्षमाप्रार्थी भी रहूँगा और उनका संशोधन करने के लिए तत्पर भी। यदि आप लोग उनकी ओर मेरा ध्यान आकर्षित करना चाहें तो उनका प्रमाणीकरण आवश्यक है।

प्रस्तुत ग्रंथ को पाँच खंडों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक खंड के

क्रांतिकारियों को अकारादि क्रम से रखा गया है, तथा साथ ही पाठकों की सुविधा का खयाल रखते हुए अंतिम (पंचम) खंड के अंत में पाँचों खंडों की विस्तृत तथा संयुक्त सूची दी जा रही है; जिसमें प्रत्येक खंड के प्रत्येक क्रांतिकारी को अकारादि क्रम में रखा गया है; ताकि हमारे पाठकों को किसी भी क्रांतिकारी को ढूँढ़ने में सरलता हो।

प्रस्तुत ग्रंथ में लगभग साढ़े चार सौ क्रांतिकारियों के रेखाचित्र प्रकाशित किए जा रहे हैं; किंतु अन्य क्रांतिवीरों के चित्र उपलब्ध न हो सकने के कारण प्रकाशित नहीं कर पा रहे हैं।

फिर भी कुछ ऐसे गुमनाम क्रांतिकारी और बलिदानी रह गए होंगे, जिनको इस ग्रंथ में स्थान नहीं मिल पाया होगा। जैसे-जैसे विवरण प्राप्त होते जाएँगे, उन्हें आगामी संस्करणों में स्थान देने का प्रयत्न किया जाएगा।

२७, दशहरा मैदान
(हीरो होंडा शो रूम के पीछे)
उज्जैन-४५६०१०

—श्रीकृष्ण 'सरल'

एक निवेदन

जिन महानुभावों के पास ऐसे क्रांतिकारियों और शहीदों के विवरण उपलब्ध हों, जिनका समावेश प्रस्तुत संस्करण में नहीं हुआ है, उनसे निवेदन है कि वे क्रांतिकारियों के विवरण और चित्र लेखक या प्रकाशक को भेजने का कष्ट करें, जिनसे उनका उपयोग आगामी संस्करण में किया जा सके।

अनुक्रम

(प्रथम स्वाधीनता संग्राम युग (सन् १७७० से १८५७ तक), यूरोप तथा एशिया में भारत के क्रांतिकारी और महाराष्ट्र का चाफेकर बंधु युग एवं बंग-भंग युग के क्रांतिकारी)

★ सूफी अंबाप्रसाद २५
★ सरदार अजीतसिंह २९
★ अजीमुल्ला खाँ ३३
★ अनंत लक्ष्मण कान्हरे ★ कृष्ण गोपाल कर्वे
★ विनायक नारायण देशपांडे ३८
★ अनंतहरि मित्र ★ प्रमोदरंजन चौधरी ४१
★ सेठ अमरचंद बाँठिया ४६
★ अमरसिंह ४८
★ अमरसिंह हरियाणवी ५०
★ अरविंद घोष ५१
★ अल्लूरी सीताराम राजू ५६
★ रानी अवंतीबाई ५९
★ अवनीनाथ मुकर्जी ६१
★ अशोक नंदी ६४
★ मौलवी अहमदुल्ला ६६
★ इंदुभूषण रे ६८
★ उदमीराम ७२
★ उपेंद्रनाथ बंद्योपाध्याय ७३
★ उल्लासकर दत्त ★ जितेंद्रनाथ राय ७६
★ सरदार ऊधमसिंह ८१

★ कन्हाईलाल दत्त ★ सत्येंद्रनाथ बसु ८५
★ ठाकुर किशोरसिंह ★ रघुनाथ राव ८८
★ वीर कुँअरसिंह ८९
★ खुदीराम बोस ★ प्रफुल्लकुमार चाकी ९२
★ गणेश दामोदर सावरकर ९८
★ गुलाबराव ★ चिमनलाल ★ महाराणा बख्तावरसिंह
★ बशीर उल्ला खाँ ९९
★ गौतम डोरे ★ मल्लू डोरे १०४
★ चंपक रमन पिल्लई १०६
★ चारुचंद्र बोस ११०
★ चिदंबरम् पिल्लै ★ पद्मनाभ आयंगार ★ सुब्रह्मण्यम शिव ११२
★ रानी चेन्नम्मा ११४
★ कुँअर चैनसिंह ★ बहादुर खाँ ★ हिम्मत खाँ ११८
★ जोगेंद्रनाथ चक्रवर्ती १२३
★ वीरांगना झलकारी ★ पूरनसिंह १२७
★ ताँतिया ★ दोपिया ★ बिजनिया १३१
★ तात्या टोपे १३८
★ तिरुमल आचार्य १४३
★ तिलका माँझी १४५
★ दामोदर चाफेकर ★ बालकृष्ण चाफेकर ★ महादेव रानडे
★ वासुदेव चाफेकर १४८
★ देवी सिंह ★ सरजूप्रसाद सिंह १५५
★ देवेंद्र सेन गुप्ता १५६
★ महाराज नंदकुमार १५८
★ नरपतिसिंह १६४
★ नरेंद्रनाथ भट्टाचार्य (मानवेंद्रनाथ राय) १६५
★ नरेंद्रनारायण चक्रवर्ती १६८
★ नानासाहब पेशवा १७०
★ वीर नारायणसिंह १७१
★ नाहरसिंह १७५
★ पांडुरंग महादेव वापट १७८

★ पुलिनबिहारी दास १८०
★ प्रफुल्लचंद्र चक्रवर्ती १८३
★ बहादुरशाह जफर और उसके बेटे १८६
★ भागीरथ वारगीर १८८
★ भास्कर राव बाबासाहब नरगुंदकर १८९
★ मदाम भीकाजी कामा १९१
★ वीरांगना भीमाबाई २०३
★ भूपेंद्रनाथ दत्त २०४
★ मंगल पांडे २०८
★ मदनलाल धींगरा २१०
★ मौलवी महमूद-उल-हसन ★ मौलाना मोहम्मद बरकतुल्ला २२०
★ राजा महेंद्रप्रताप २२५
★ मैना २३२
★ रंगो बापूजी गुप्ते २३७
★ रघुनाथशाह ★ शंकरशाह २३८
★ ठाकुर रणमतसिंह २४०
★ जगत्सेठ रामजीदास गुड़वाला २४१
★ गुरु रामसिंह २४२
★ रिचर्ड विलियम्स २४५
★ रिषीकेश लट्टा २४६
★ महारानी लक्ष्मीबाई २४९
★ लोहार गुंडा २५५
★ संत वरयामसिंह २५६
★ वांची अय्यर २५७
★ वारींद्रकुमार घोष २६०
★ वासुदेव बलवंत फड़के २६५
★ विनायक दामोदर सावरकर २७०
★ विशनसिंह २७४
★ वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय २७५
★ वीरेंद्रनाथ दत्त २७९
★ वेलू थंपी २८२

★ श्यामजी कृष्ण वर्मा २८४
★ सआदत खाँ २८८
★ सरदारसिंह राणा २८९
★ सुरेंद्र साय २९१
★ सुशीलकुमार सेन २९३
★ मिस्त्री हलकूराम २९७
★ हेमचंद्र दास कानूनगो २९८

क्रांतिकारी कोश के पाँचों खंडों की संयुक्त सूची
(प्रत्येक क्रांतिकारी अकारादि क्रम से)
के लिए देखें—
'क्रांतिकारी कोश : पंचम खंड' के अंत में।

★ सूफी अंबाप्रसाद

सूफी अंबाप्रसाद

एक दुबले-पतले काले-से व्यक्ति को कुछ लोग घेरे हुए हैं। गपशप के बीच हँसी के कहकहे लग रहे हैं। व्यक्ति को लोग 'अमृतलाल' नाम से जानते हैं, पर उसे 'भाईजी' कहकर ही पुकारते हैं। उसका दाहिना हाथ जड़ से ही साफ है। विनोद के स्वर में एक व्यक्ति पूछता है—

"क्यों भाईजी! आपका यह हाथ कैसे कट गया?"

भाईजी कहते हैं—"लाओ तलवार और तुम्हारे हाथ पर वार करके बता दूँ कि मेरा हाथ ऐसे कट गया।"

हँसी का फव्वारा छूटता है और दूसरा व्यक्ति गंभीरतापूर्वक कहता है—"भाईजी! हम हाथ काटकर दिखाने की बात नहीं कर रहे हैं, हम तो यह पूछ रहे हैं कि आपका यह हाथ कब और कैसे कटा?"

भाईजी बोले—

"क्या आपको मालूम है कि मेरा जन्म कब हुआ है?"

"आप ही ने तो एक समय बताया था कि आपका जन्म सन् १८५८ में हुआ है।"

"अच्छा, तो बताओ कि सन् १८५७ में मेरी क्या उम्र थी?"

सब लोग हँस पड़ते हैं। एक व्यक्ति कहता है—

"भाईजी! १८५७ में तो आप पैदा ही नहीं हुए थे।"

भाईजी ने कहा—

''तुम्हारा खयाल गलत है। सन् १८५७ में मेरी उम्र चालीस वर्ष की थी। उस समय मैं झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की फौज में एक बहुत बड़ा अफसर था। अंग्रेजों के साथ युद्ध करते हुए मेरा दाहिना हाथ कट गया और कुछ दिन के बाद मेरी मृत्यु हो गई। सन् १८५८ में मेरा पुनर्जन्म हुआ तो हाथ कटे का कटा आ गया। इसीसे तो मेरा एक हाथ गायब है।''

इस कहानी को सुनकर लोग पेट पकड़-पकड़कर हँसने लगे। इसी क्रम में अमृतलाल खिसक गए।

इन्हीं अमृतलाल को क्रांतिकारी जगत् में 'सूफी अंबाप्रसाद' के नाम से जाना जाता है। ईरान के लोग तो इन्हें 'आका सूफी' के नाम से बड़ी श्रद्धा से याद करते हैं। ईरान की संस्कृति पर सूफीजी का काफी प्रभाव है और वहाँ इनकी समाधि भी बनी हुई है। इनके विषय में जो कुछ ज्ञात है, वह इस प्रकार है—

सन् १८९०।

वर्तमान मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल उस समय भोपाल रियासत की राजधानी थी। रियासतों में एक अंग्रेज रेजीडेंट रहा करता था, जो राजाओं की गतिविधियों पर दृष्टि रखता था और अवसर मिलते ही रियासत को अंग्रेजी राज्य में मिलाने की सिफारिश कर देता था।

भोपाल के रेजीडेंट की वहाँ के नवाब से खटक गई। रेजीडेंट ने नवाब साहब की शिकायतें करनी प्रारंभ कर दीं और चाहा कि झूठे आरोप लगाकर रियासत हड़प ली जाए। नवाब साहब और राज्यभक्त जनता में रेजीडेंट के इस व्यवहार के प्रति रोष उत्पन्न हो गया। समाचार-पत्र भी इस मामले में रुचि लेने लगे।

रेजीडेंट के बैरे के पास एक पागल-सा आदमी पहुँचा और नौकरी माँगने लगा। उसने बैरे को बताया कि वह अच्छे-से-अच्छा खाना पकाने से लेकर चौका-बरतन आदि तक के सब काम कुशलतापूर्वक कर सकता है। बैरे ने सोचा कि अच्छा विदूषक मिल गया, इससे काम में मदद भी मिलेगी और मनोरंजन भी हो जाया करेगा। उसे बरतन साफ करने के लिए नौकर रख लिया गया; पर बिना वेतन, केवल भोजन की शर्त पर।

वह पागल बरतन साफ करता तो मिट्टी में लथपथ हो जाता और अन्य नौकरों का मनोरंजन करता। कभी-कभी वह बाजार से सौदा भी खरीद लाता, क्योंकि वह भाव-ताव करने में बड़ा चतुर समझा जाता था।

इन्हीं दिनों 'अमृत बाजार पत्रिका' में रेजीडेंट के विरुद्ध धड़ाधड़ लेख निकलने लगे। रेजीडेंट को पता चला कि कोई गुप्तचर भोपाल से ही पत्रिका में सामग्री भेजता है और उसके विरुद्ध वातावरण उत्पन्न करता है। रेजीडेंट ने घोषणा

की कि जो व्यक्ति गुप्तचर को पकड़ाएगा उसे भारी इनाम दिया जाएगा। पुलिस सिर पटककर रह गई, पर भेदिया हाथ नहीं आ सका।

रेजीडेंट के विरुद्ध वातावरण बहुत खराब हो गया था और शासन को हस्तक्षेप करने के लिए विवश होना पड़ा। विद्रोह की स्थिति से बचने के लिए अंग्रेजी शासन ने रेजीडेंट को भोपाल से हटा दिया। जाने के पहले साहब ने घरेलू नौकरों-चाकरों को खूब इनाम बाँटे। बरतन साफ करनेवाले उस पगले को भी इनाम दिया गया।

रेजीडेंट जब भोपाल छोड़कर चला गया और अस्थायी रूप से दिल्ली में रहने लगा, तो एक दिन उसके पास एक सूट-बूटधारी दुबला-पतला-सा काला व्यक्ति मिलने के लिए पहुँचा। वह व्यक्ति रेजीडेंट के साथ धाराप्रवाह गति से अंग्रेजी में बातें कर रहा था। रेजीडेंट उसे देखकर चकित था। यह तो वही व्यक्ति है, जो मेरे बंगले पर बरतन साफ करने का काम करता था। आगंतुक ने अंग्रेजी में बात प्रारंभ की—

"साहब! मैं आपके पास इनाम लेने आया हूँ।"

"आते समय मैं तुम्हें काफी इनाम देकर आया था, अब किस बात का इनाम चाहते हो?"

"साहब! आपने कहा था कि जो कोई आपका भेद देनेवाले गुप्तचर को पकड़ा देगा, उसे आप भारी इनाम देंगे।"

"हाँ, कहा तो था, पर वह व्यक्ति पकड़ा नहीं जा सका। क्या तुम उस व्यक्ति को पकड़वा सकते हो?"

"मैं ही वह व्यक्ति हूँ, जो आपके बंगले के बाहरी घरों में रहकर 'अमृत बाजार पत्रिका' को आपके भेद देता रहता था। अब इनाम लाइए।"

यह सुनकर साहब थरथर काँपने लगा। क्रांतिकारियों के कारनामों से वह अच्छी तरह परिचित था। उसे लगा कि कहीं यह व्यक्ति इनाम माँगने के बहाने उसको ही गोली का इनाम देने न आया हो। जान छुड़ाने के लिए साहब ने सोने की जंजीरवाली अपनी घड़ी उसे देते हुए कहा—

"यदि तुम स्वीकार करो तो जासूस विभाग के उच्च पद पर.नियुक्त कराके तुम्हें एक हजार रुपए मासिक वेतन दिला सकता हूँ।"

उत्तर मिला—

"यदि वेतन ही लेना होता तो बिना वेतन लिये आपके बरतन साफ क्यों करता?"

"अब क्या करना चाहते हो?"

"आप जैसे अन्यायी अफसरों को ठिकाने लगाना चाहता हूँ।"

इतना कहकर वह व्यक्ति खिसक गया। क्रांतिकारी सूफी अंबाप्रसाद एक जगह टिकनेवाले थोड़े ही थे।

□

सन् १९०८।

देशभक्त सूफी अंबाप्रसाद छह वर्षों की जेल तो काट ही चुके थे, उनको लगा कि एक-एक करके सबको पुनः पकड़ा जाएगा और जेलों में ठूँस दिया जाएगा। वे चाहते थे कि कुछ दिन के लिए क्रांति कार्य स्थगित कर दिया जाए और जब शासन निश्चिंत होने लगे, तो फिर एक साथ जोरों से कार्य प्रारंभ कर दिया जाए। इस विचार से देशभक्त मंडल के सभी सदस्य साधु बनकर पर्वतों की ओर जाने लगे। साधुओं को जाते देखकर एक भक्त भी उनके साथ हो लिया। वह सूट-बूटधारी भक्त था। उसने बढ़कर सूफीजी के चरणों पर अपना मस्तक रखा और पूछने लगा—

"बाबाजी! आप कहाँ रहते हैं?"

सूफीजी ने कठोर स्वर में उत्तर दिया—

"रहते हैं तुम्हारे सिर में!"

"महात्माजी! आप नाराज क्यों हो गए?"

"बेवकूफ कहीं के, तूने मुझको ही नमस्कार क्यों किया, और भी तो इतने साधु थे?"

"मैंने आपको ही बड़ा साधु समझा।"

"खैर, तूने जो समझा, ठीक ही समझा। जा, हम लोगों की भोजन-प्रसादी के लिए कुछ ले आ।"

भक्त चला गया। उसने सोचा, चूहा अभी पिंजरे में आता है। वह अच्छे-अच्छे पदार्थ खाने के लिए ले आया।

खा-पीकर सूफीजी उसे बुलाकर कहने लगे—

"क्यों बे! हमारा पीछा छोड़ेगा या नहीं?"

"साधु-संतों की सेवा करने का जितना अवसर मिल जाए, उतना ही अच्छा। इसलिए अधिक-से-अधिक समय आपके साथ रहना चाहता हूँ।"

"चालाकी छोड़, आया है जासूसी करने। जा! जा! अपने बाप अंग्रेज से कह देना कि सूफी पहाड़ में गदर करने जा रहे हैं।"

जासूस चरणों पर गिरकर कहने लगा—

"हुजूर, पेट की खातिर सबकुछ करना पड़ता है।"

□

सन् १९०९।

विदेशों में भारतीय पक्ष का समर्थन प्राप्त करने के लिए सूफी अंबाप्रसाद कराची से जहाज द्वारा ईरान चले गए। उनके साथ प्रसिद्ध क्रांतिकारी सरदार अजीतसिंह (सरदार भगतसिंह के चाचा) भी थे। ईरान में अंग्रेजों ने उनकी बहुत खोज की।

उन्हें बड़े कष्ट में अपने दिन बिताने पड़े। एक स्थान पर वे घेर लिये गए और उनका निकलना असंभव हो गया। व्यापारियों का एक काफिला वहाँ रुका हुआ था। ऊँटों पर तेल की टंकियाँ लदी हुई थीं। व्यापारियों को राजी करके एक खाली टंकी में सूफीजी बैठे और दूसरी में सरदार अजीतसिंह। ऊँट पर लदकर दोनों सुरक्षित निकल गए।

अंग्रेजों ने फिर उन्हें एक अमीर के घर जा घेरा। वह अमीर क्रांतिकारियों के साथ हमदर्दी रखता था। उसने इन्हें बुरका ओढ़ाकर जनानखाने में बैठा दिया। सारे घर की तलाशी ली गई। अंग्रेजों ने स्त्रियों के बुरके उठवाने चाहे, पर अमीर के साथी इसके विरोध में मरने-मारने के लिए उतारू हो गए। इस तरह दोनों यहाँ से भी बचे।

□

सन् १९१५।

अंग्रेजों ने ईरान में शीराज पर घेरा डाल दिया। दाहिना हाथ न होने पर भी सूफीजी ने बाएँ हाथ से पिस्तौल चलाकर अंग्रेजों का डटकर मुकाबला किया। अंत में गोलियाँ चुक जाने के कारण वे पकड़े गए और अगले दिन उन्हें गोलियों से उड़ा देने का निश्चय किया गया। सूफीजी कोठरी में बंद थे। अगले दिन उन्हें निकालने के लिए जब कोठरी का दरवाजा खोला गया, तो सूफीजी समाधि की अवस्था में पाए गए। प्राणायाम के द्वारा वे प्राण विसर्जित कर चुके थे।

ईरान के लोग सूफीजी का नाम सुनते ही श्रद्धा से सिर झुका लेते हैं।

□

★ सरदार अजीतसिंह

१५ अगस्त सन् १९४७ को रात्रि के बारह बजते ही भारत को आजादी मिलने की रस्म अदायगी होने लगी। जो लोग दिल्ली में उपस्थित थे, वे तो स्वयं आँखों से वह नजारा देख रहे थे कि किस तरह भारत को आजादी दी जा रही थी

सरदार अजीतसिंह

और जो लोग दिल्ली में नहीं थे, वे अपने-अपने रेडियो चालू किए स्वराज्य-प्राप्ति का आँखोंदेखा हाल सुन-सुनकर हर्षित हो रहे थे। एक छियासठ वर्ष के जर्जर क्रांतिकारी ने भी सत्ता परिवर्तन का आँखोंदेखा हाल रेडियो पर सुना, तो अपने परिवार के लोगों को बुलाकर कहा—"मेरा मकसद पूरा हो गया है, मैं जा रहा हूँ।"

परिवारवालों ने अर्थ लगाया कि ये किसी यात्रा पर जाने की बातें कह रहे हैं। लोगों ने समझाया-बुझाया—

"भारत की आजादी के लिए पूरे अड़तीस वर्ष विदेशों में संघर्ष करने के पश्चात् अभी-अभी आप भारत लौटे हैं। विदेशों में एक स्थान से दूसरे स्थान भटकते रहने के कारण आपका शरीर बिलकुल कमजोर हो गया है। अब आप कहीं जाने की बात न चलाइए।"

समझा-बुझाकर लोग चले गए। निरंतर अड़तीस वर्षों तक पति-वियोग का दारुण दुःख सहनेवाली तपस्विनी, अर्थात् क्रांतिकारी की पत्नी भी अपने पति को समझाने उनके कमरे में पहुँची। क्रांतिकारी सामने पैर फैलाए हुए सोफे पर बैठा था। पत्नी सामने खड़ी हो गई। क्रांतिकारी ही पहले बोला—

"मैंने तुमसे शादी की थी। तुम्हारे प्रति मैं अपना कर्तव्य नहीं निभा सका। मैं भारत माता की सेवा में लगा रहा। कसूर तो हुआ ही है, मुझे माफ कर देना।" यह कहकर क्रांतिकारी ने अपनी पत्नी के पैर छू लिये।

"यह पाप क्यों चढ़ाते हो जी?" कहती हुई पत्नी एकदम पीछे हट गई।

क्रांतिकारी ने अपने पैर ऊपर किए और सोफे पर लेट गया। उसने जोर से 'जयहिंद' पुकारा और आँखें बंद कर लीं। उसकी आँखें हमेशा के लिए बंद हो चुकी थीं। अब लोगों को उसके कथन का अर्थ समझ में आया—

'मेरा मकसद पूरा हो गया है, मैं जा रहा हूँ।'

२३ फरवरी, १८८१ को पराधीन भारत में जनमे महान् क्रांतिकारी सरदार अजीतसिंह १५ अगस्त, १९४७ को स्वाधीन भारत में अपने जीवन का मकसद पूरा हो जाने पर दूसरी दुनिया की सैर को चले गए। भारत में आजादी के सूर्योदय पर ही उन्होंने प्राण-त्याग किया।

सरदार अजीतसिंह शहीद भगतसिंह के सगे चाचा थे। महानता में दोनों ही एक-दूसरे से क्या कम थे! इक्कीस वर्ष की आयु में यदि भगतसिंह ने असेंबली में बम धड़ाका किया था, तो इक्कीस वर्ष का युवक अजीतसिंह दिल्ली में एकत्र राजा-महाराजाओं को भड़काता फिर रहा था कि दिल्ली में होनेवाले दरबार का बहिष्कार करो और खुशामद करने के बजाय भारत को आजाद करने के प्रयत्न करके अपने पुराने पापों को धो डालो।

सरदार अजीतसिंह सन् १८५७ की पुनरावृत्ति के प्रयत्न में लगे हुए थे। उनका हृदय अंदर-ही-अंदर धधकते हुए ज्वालामुखी पर्वत के समान था और उनकी वाणी अंग्रेजी साम्राज्य के लिए लावा के समान सिद्ध हो रही थी। पंजाब के किसान सरदार अजीतसिंह की मुट्ठी में थे। इसीलिए तो ब्रिटिश हुकूमत उनकी बढ़ती हुई शक्ति और प्रभाव को देखकर काँप उठी।

'भारत माता सोसाइटी' क्रांतिकारियों के लिए रंगमंच बनी। इस रंगमंच पर क्रांति कलाओं का प्रदर्शन कर रहे थे सरदार अजीतसिंह, उनके बड़े भाई सरदार किशनसिंह, छोटे भाई सरदार स्वर्णसिंह, सूफी अंबाप्रसाद, हरदयाल, लाला लालचंद फलक, मेहता नंदकिशोर, केदारनाथ सहगल, लाला पिंडीदास और महाशय घसीटाराम आदि।

यदि सरकार आबयाना (जल-कर) बढ़ा रही थी, तो ये लोग किसानों को भड़का रहे थे कि आबयाना देना ही बंद कर दो। यदि सरकार 'न्यू कॉलोनाइजेशन एक्ट' पास कर रही थी, तो ये लोग पूरे पंजाब के किसानों और यहाँ तक कि फौजियों को भी बागी बना रहे थे तथा खुलेआम राजद्रोह एवं अंग्रेजों का वध करने तक की बात कर रहे थे। ब्रिटिश हुकूमत की नजरों में अजीतसिंह एक भयंकर बागी थे, जो बंगाल के क्रांतिकारियों और महाराष्ट्र केसरी बाल गंगाधर तिलक से भी साँठ-गाँठ किए हुए थे।

पंजाब के गवर्नर मि. इबट्सन ने भारत के वाइसराय लॉर्ड हार्डिंग्ज को रिपोर्ट भेजते हुए लिखा—'पंजाब में गदर होने वाला है और उसका नेतृत्व सरदार अजीतसिंह और उनकी पार्टी करेगी।'

अंग्रेजी हुकूमत ने गदर को रोकने के लिए सरदार अजीतसिंह और लाला लाजपतराय को गिरफ्तार करके बर्मा की मांडले जेल में डाल दिया। अपने नेताओं की गिरफ्तारी और उन्हें मांडले जेल में रखने के विरोध में भारतवासियों ने तूफान खड़ा कर दिया। कुछ दिन बाद उन्हें मुक्त कर दिया गया।

जेल से छूटने पर सरदार अजीतसिंह और अधिक उग्र हो उठे। सरकार के विरुद्ध साहित्य भी छापने लगे और भाषणों द्वारा आग भी उगलने लगे। बहुत दूर-

दूर से लोग उनके भाषण सुनने के लिए पहुँचते थे और सरकार के खिलाफ बगावत का संकल्प करके लौटते थे।

इन्हीं दिनों भारत के महान् क्रांतिकारी राजा महेंद्रप्रताप अफगानिस्तान पहुँच गए थे और वहाँ आजाद हिंद सरकार बनाकर अंग्रेजी हुकूमत पर आक्रमण करने की योजना बना रहे थे। सरदार अजीतसिंह और सूफी अंबाप्रसाद ने सोचा कि राजा महेंद्रप्रताप को सहयोग देना चाहिए। निश्चय हो गया। ब्रिटिश जासूसों को पहाड़ पर जाने का चकमा दिया गया और किसी अन्य रास्ते से कराची पहुँचकर, छद्म नाम से पासपोर्ट बनवाकर जहाज द्वारा ईरान पहुँच गए। सरदार अजीतसिंह ने अपना नाम मिर्जा हसन खाँ रख लिया।

ईरान के क्रांतिकारियों ने भारत के इन दोनों क्रांतिकारियों का खूब स्वागत किया और सहयोग दिया। कुछ दिन तो ठगों व डाकुओं ने इन्हें तंग किया और पिटाई भी की, पर बाद में उन लोगों के सरदार से मित्रता हो जाने पर फिर इन्हें कोई परेशानी नहीं हुई। बाद में तो इन्हें सहयोग ही अधिक मिला। वे लोग गिरफ्तारी से भी इन्हें बचा रहे थे। एक बार इन्हें तेल की खाली टंकियों में भरकर ऊँटों पर लादकर गिरफ्तारी से बचाया गया और दूसरी बार एक अमीर ने इन्हें बुरका पहनाकर अपने जनानखाने में रखकर बचाया। अब सूफी अंबाप्रसाद वहीं रह गए और सरदार अजीतसिंह आगे बढ़ गए।

रस्तौब और बाखू होते हुए सरदार अजीतसिंह तुर्की एवं जर्मनी से फ्रांस पहुँचकर पेरिस में अध्यापन का कार्य करने लगे। यहाँ उनकी अन्य भारतीय क्रांतिकारियों से भेंट हुई। कुछ दिनों पश्चात् वे पेरिस से स्विट्जरलैंड पहुँच गए। मुसोलिनी से भी उनकी भेंट हुई, जो उस समय विद्यार्थी थे। एक बार फिर वे जर्मनी गए और कैसर को प्रभावित करके भारत की आजादी के पक्ष में उन्हें राजी कर लिया।

प्रथम विश्वयुद्ध के समय सरदार अजीतसिंह ब्राजील में थे। वे वहाँ सोलह वर्ष रहे। कभी वे वहाँ प्रोफेसर रहे और कभी किसी फर्म के मैनेजर। कुछ और देशों में घूमते हुए वे फिर जर्मनी पहुँच गए। उन दिनों ऑस्ट्रिया में सुभाषचंद्र बोस अपने इलाज के लिए गए हुए थे। दो क्रांतिकारियों की वहाँ भेंट हुई और कुछ भावी योजनाएँ बनीं।

सरदार अजीतसिंह यूरोप में बहुत लंबे समय तक रहे। उस समय तक दूसरा विश्वयुद्ध भी छिड़ गया। जर्मनी में हिटलर और इटली में मुसोलिनी का सितारा चमक रहा था। सरदारजी इटली पहुँच गए और वहाँ आजाद हिंद रेडियो चालू कर दिया। कई दशाब्दियों पश्चात् जब भारतीयों ने उनका स्वर सुना, तो उनके विषय में उन्हें मालूम हुआ।

बीच में अंग्रेजों ने यह अफवाह भी उड़ा दी थी कि सरदार अजीतसिंह की मृत्यु हो गई। इटली में भारत के एक अन्य क्रांतिकारी श्री इकबाल शैदाई और सरदार अजीतसिंह ने मिलकर 'आजाद हिंद लश्कर' का निर्माण कर लिया। इसमें वे सैनिक भरती किए गए थे, जो लीबिया के मोरचे पर अंग्रेजों की ओर से लड़कर जर्मनी सेना से हारे थे और बंदी बनाए गए थे। युद्ध के दिनों में जब नेताजी सुभाषचंद्र बोस जर्मनी पहुँचे और उन्होंने जर्मनी में आजाद हिंद फौज बनाई तो इटली में सरदार अजीतसिंह से उनकी फिर भेंट हुई। दोनों नेता भारत की आजादी के लिए ही कार्य कर रहे थे।

द्वितीय विश्वयुद्ध का पासा पलट गया। जर्मनी और इटली की पराजय हो गई। २ मई, १९४५ को सरदार अजीतसिंह को गिरफ्तार कर लिया गया। यातनागृहों में रखकर उन्हें अमानवीय यातनाएँ दी जाने लगीं। आजादी का दीवाना आजादी की कीमत चुका रहा था।

इधर भारत में कई राजनीतिक परिवर्तन हुए। १९४७ तक पहुँचते-पहुँचते सत्ता-परिवर्तन लगभग निश्चित-सा हो गया। ब्रिटेन के यातनागृहों में सरदार अजीतसिंह की स्थिति मरणासन्न हो गई थी। भारत की जनता पं. जवाहरलाल नेहरू पर बहुत जोर डाल रही थी कि सरदार अजीतसिंह को भारत बुलाया जाए। ब्रिटिश हुकूमत भारत-विभाजन के सिद्धांत को स्वीकार कराने के लिए पं. जवाहरलाल नेहरू को मना ही रही थी। लॉर्ड माउंटबेटन भी उनकी बात मान गए और मार्च १९४७ में सरदार अजीतसिंह अड़तीस वर्षों का लंबा समय विदेशों में गुजारते हुए फिर मातृभूमि की गोद में पहुँच गए।

१५ अगस्त, १९४७ का पावन दिवस आ गया। कुछ क्षति उठाकर ही सही, भारत में स्वाधीनता-सूर्य का उदय हुआ। अपने देशवासियों को स्वाधीन भारत की बधाइयाँ देकर लगभग पचास वर्षों तक निरंतर आजादी की लड़ाई लड़नेवाला महान् योद्धा सरदार अजीतसिंह ठीक १५ अगस्त, १९४७ को 'जयहिंद' के अंतिम घोष के साथ भारत के शहीदों को यह शुभ संदेश देने चला गया।

□

★ अजीमुल्ला खाँ

''यदि तुम खुद ईसाई धर्म स्वीकार नहीं कर रहीं तो कम-से-कम अपने बच्चे को तो इस धर्म की दीक्षा दिला दो। हम इसे बहुत अच्छी तरह पढ़ाएँगे-

लिखाएँगे और एक दिन यह हिंदुस्तान का बहुत बड़ा आदमी बनेगा।''

''धर्मपिता! अपना धर्म छोड़कर भी कोई आदमी बड़ा बन सकता है, कम-से-कम मैं तो यकीन नहीं कर सकती। अपना धर्म छोड़कर दूसरे का धर्म अपनानेवाला व्यक्ति पतित होता है, बड़ा आदमी नहीं बनता।''

अजीमुल्ला खाँ

बालक की युवती माँ का यह करारा उत्तर सुनकर धर्मपिता निरुत्तर हो गए। फिर भी बात को जारी रखने के लिए उन्होंने पैंतरा बदलते हुए कहा—

''तो क्या तुमने फैसला कर लिया है कि अब तुम इस मिशन आश्रम में नहीं रहोगी?''

''नहीं, धर्मपिता, मैंने इस प्रकार का कोई विचार तक नहीं किया है; अलबत्ता यह आपका फैसला हो तो बात अलग है।''

यह आरोप सुनकर मिशनरी महोदय झेंप गए। अपनी झेंप मिटाने के लिए वे कहने लगे—

''हम तुम्हें जाने के लिए थोड़े ही कह रहे हैं। तुम जितने दिन चाहो, यहाँ खुशी के साथ रह सकती हो।''

''धर्मपिता! मैं यहाँ रहना तो चाहती हूँ, पर एक शर्त है।''

''वह क्या?''

''वह यह कि अब मैं यहाँ बिना कुछ काम किए केवल आपकी दया पर निर्भर होकर नहीं रहना चाहती। मैं मेहनत-मजदूरी करूँगी, आप लोगों के बच्चे खिलाऊँगी और अपनी रोजी-रोटी खुद कमाकर यहाँ गुजर-बसर करूँगी।''

''तुम इतनी बातें क्यों सोच रही हो? अभी तक जिस तरह रह रही थीं वैसे ही क्यों नहीं रहतीं?''

''नहीं, धर्मपिता! आप लोगों के इतने ही एहसान काफी हैं। मुझ अकाल की मारी को आप लोग अपने यहाँ लाए और मेरी तथा मेरे बच्चे की परवरिश की, इतने ही एहसान काफी हैं। अब तो आप मुझे मौका दीजिए कि मैं आप लोगों के एहसानों का कुछ बदला चुका सकूँ।''

''ठीक है, तुम जिस तरह का जीवन बिताना चाहो, तुम्हें स्वतंत्रता है; पर

अपने बच्चे अजीमुल्ला को मिशन स्कूल में अवश्य भेजा करो। हम लोग उसका नाम नहीं बदलेंगे।''

और अजीमुल्ला कानपुर के मिशन स्कूल में पढ़ने के लिए जाता रहा। उसे पढ़ाई का खर्च नहीं देना पड़ता था और वजीफा अलग से मिलता था। अच्छे नंबरों से वह परीक्षाएँ पास करता चला गया और एक दिन उसी विद्यालय में अध्यापक बना दिया गया। वह अध्यापक बनना नहीं चाहता था, इसी कारण उस पद को छोड़कर वह ब्रिगेडियर स्कॉट के कार्यालय में एक पदाधिकारी हो गया।

माँ के विचारों की कट्टरता अजीमुल्ला खाँ में भी थी। एक दिन ब्रिगेडियर बर्नहम से उसका झगड़ा हो गया। अंग्रेज लोग इस प्रकार के कट्टर और स्वतंत्र विचार के आदमियों से कैसे निभाते! उन्होंने उसे सेवा से पृथक् कर दिया। उन्हें क्या पता था कि वे १८५७ के बागियों को एक आला दिमाग रहनुमा दे रहे हैं।

एक वकील के रूप में अजीमुल्ला खाँ नानासाहब पेशवा की सेवा में बिठूर पहुँच गए। अंग्रेजों ने नानासाहब के विशेषाधिकार छीन लिये थे। अजीमुल्ला खाँ की उपस्थिति का लाभ उठाकर नानासाहब पेशवा ने उन्हें बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स तथा महारानी विक्टोरिया के दरबार में अपील करने के लिए लंदन भेज दिया।

लंदन में अजीमुल्ला खाँ सभी के लिए आकर्षण का केंद्र बन गया। गोरा रंग, छरहरा बदन, सलीके से पहना हुआ भारतीय लिबास, अंग्रेजी और फ्रेंच का असाधारण ज्ञान, चेहरे पर खिलती हुई मृदु मुसकान और शिष्टाचारयुक्त संभाषण—सबकुछ तो था उसके पास, जिसके कारण लोग उसकी ओर खिंचने लगे। वह अंग्रेज परिवारों में आमंत्रित होने लगा, सभाओं एवं थिएटरों में उसकी उपस्थिति प्रार्थित होने लगी और नृत्य घरों में खूबसूरत लड़कियाँ उसके साथ नृत्य करने के लिए लालायित होने लगीं। लंदन में उसे मान-सम्मान, स्नेह-सौहार्द और यश-वैभव सभी कुछ मिला; पर वह कुछ न मिला जिसके लिए वह वहाँ गया था। बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स पेशवा के अधिकारों को लौटाने के लिए राजी नहीं हुआ। महारानी विक्टोरिया के सामने की गई अपील का कोई नतीजा नहीं निकला। अजीमुल्ला खाँ ने समझ लिया कि इंग्लैंड भारत के ऊपर अपना पंजा ढीला करने के बजाय उसे कसता जा रहा है; वह अपनी दाढ़ों में फाँसे हुए शिकार को छोड़ना नहीं चाहता। अब उसके मन में पेशवा के अधिकारों की बात नहीं, भारत के अधिकारों की बात थी। उसे इस निष्कर्ष पर पहुँचने में देर नहीं लगी कि केवल संगठित संघर्ष ही मुक्ति का मार्ग है, विनय और याचनाएँ नहीं।

अजीमुल्ला खाँ ने भारत लौटने का निश्चय कर लिया। जब उसका इरादा

लोगों को मालूम हुआ तो उन्हें अच्छा नहीं लगा, विशेष रूप से उसके आसपास घूमनेवाली युवतियों को बड़ी निराशा हुई। उनमें से एक ने, जिसका नाम रोजी था, उसे रात्रिभोज के लिए अपने घर आमंत्रित किया। बातचीत का सिलसिला चल पड़ा—

"मैंने सुना है कि तुमने अपने देश लौट जाने का फैसला कर लिया है?"

"तुमने ठीक ही सुना है।"

"क्या मैं यह जान सकती हूँ कि तुमने यह फैसला क्यों किया है?"

"सुनो, रोजी! मैं यहाँ जिंदगी-भर रहने के इरादे से तो नहीं आया था। मैं जिस काम के लिए आया था, वह पूरा नहीं हो रहा है, इसलिए वापस जा रहा हूँ।"

"नहीं, अजीम! मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी। तुम्हारे जाने से मेरा दिल टूट जाएगा।"

"और यहाँ आकर मेरा दिल जो टूट गया है।"

"तुम्हारे दिल का इलाज मेरे पास है। मैं तुमसे शादी करूँगी। मेरे पास धन-दौलत, ऐश्वर्य की क्या कमी है! मेरी पहुँच राजघराने तक है। मैं तुम्हें बहुत अच्छी नौकरी दिला दूँगी। हम लोगों का जीवन बड़े सुख से व्यतीत होगा।"

"अब मैं अपने और अपने मालिक नानासाहब पेशवा के सुख की बात नहीं सोचता, रोजी! मैं तो अब अपने संपूर्ण देश और देशवासियों के सुख की बात सोचता हूँ। मेरा देश परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ा रहे और मैं यहाँ आजाद रहकर रंगरेलियाँ मनाऊँ! मेरे देशवासी एक-एक दाने को मोहताज रहें और मैं यहाँ ऐश्वर्य का जीवन व्यतीत करूँ! यह सब मुझसे कैसे होगा?"

"ये तो बहुत बड़े-बड़े मसले हैं, अजीम, जो धीरे-धीरे हल होंगे। तुम तो यह बताओ कि इस समय मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकती हूँ?"

"रोजी! तुमने अभी बताया कि तुम्हारी पहुँच राजघराने तक है। तुम अपनी पहुँच और प्रभाव का इस्तेमाल करके बेचारे नानासाहब को उनके छीने गए अधिकार क्यों नहीं वापस दिला देती हो?"

"देखो, अजीम, वह राष्ट्रीय नीति का मामला है। मैं व्यक्तिगत संबंधों से राष्ट्रीय नीति को प्रभावित क्यों करूँ?"

"जिस तरह से तुम व्यक्तिगत संबंधों से राष्ट्रीय नीति को प्रभावित नहीं करना चाहतीं, उसी प्रकार मैं भी राष्ट्रीय सम्मान पर आघात करके व्यक्तिगत संबंध कायम करना नहीं चाहता। तुम प्रेम का दम भरती थीं, उसकी गहराई भी मैंने देख ली। मैं जा रहा हूँ।"

और अजीमुल्ला खाँ बिना भोजन किए ही रोजी का घर छोड़कर चल

दिया। भारत पहुँचने के पहले यूरोप के देशों में घूमकर वह राजनीति का व्यावहारिक अध्ययन कर लेना चाहता था; इस उद्देश्य से वह माल्टा जा पहुँचा। माल्टा पहुँचकर अजीमुल्ला खाँ को मालूम हुआ कि क्रीमिया के युद्ध में रूस के मुकाबले इंग्लैंड और फ्रांस की संयुक्त सेनाएँ हार गई हैं। उसे आश्चर्य भी हुआ और हर्ष भी। ब्रिटिश वीरता का खोखलापन उसके सामने प्रकट हो गया। वह सोचने लगा कि यदि दृढ़ निश्चय के साथ भारत की देशी रियासतें संयुक्त होकर अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध का बिगुल बजा दें, तो अंग्रेजों को भारत से भगाया जा सकता है। यूरोप की इस घटना ने उसके मन में क्रांति और आशावाद का संदेश दिया। रूसियों की गतिविधियों को निकट से देखने के लिए वह माल्टा से कुस्तुनतुनिया जा पहुँचा। वहाँ से मिस्र होता हुआ वह अपने देश भारत पहुँच गया।

भारत पहुँचने पर अजीमुल्ला खाँ ने नानासाहब पेशवा को उनके मामले की जानकारी तो दी ही, साथ ही उन्हें यूरोप की ताजा घटनाओं और अंग्रेजों की ह्रास होती हुई शक्ति से भी अवगत कराया। अब नानासाहब और अजीमुल्ला खाँ का अधिक-से-अधिक समय साथ-साथ बीतने लगा। अंग्रेजों के लिए यह कम आश्चर्य की बात न थी कि अवध के दौरे के समय भी अजीमुल्ला खाँ नानासाहब पेशवा के साथ था। तीर्थयात्रा के बहाने नानासाहब द्वारा समस्त उत्तर भारत की यात्रा के पीछे अजीमुल्ला खाँ की ही प्रेरणा थी। १८५७ की सैनिक क्रांति की संरचना में अजीमुल्ला खाँ का ही प्रमुख हाथ था। कानुपर की राजनीति के सारे सूत्र तो उसके हाथों में थे ही।

१८५७ का प्रथम संगठित स्वाधीनता समर छिड़ जाने के पश्चात् तो नानासाहब के दरबार में अजीमुल्ला खाँ का प्रभाव और भी बढ़ गया। यदि तात्या टोपे नानासाहब का दाहिना हाथ था, तो अजीमुल्ला खाँ नानासाहब का मस्तिष्क था। अंग्रेजों के विरुद्ध कानपुर में घटित होनेवाली घटनाओं—नावों पर सवार अंग्रेजों पर गोले-गोलियों की मार और नानासाहब के महल में छिपे अंग्रेज परिवार के कत्लेआम में अजीमुल्ला खाँ की ही विद्रोह-भावना कार्य कर रही थी। इंग्लैंड में ही तो उसने सीखा था कि व्यक्तिगत संबंध और आदर्श, राष्ट्र के कार्यों में आड़े नहीं आने चाहिए। वह अंग्रेजी कहावत को ही तो चरितार्थ करके दिखा रहा था कि युद्ध और प्रेम में सबकुछ क्षम्य है।

सचमुच ही अजीमुल्ला खाँ रोम-रोम से क्रांतिकारी था।

□

★ अनंत लक्ष्मण कान्हरे ★ कृष्ण गोपाल कर्वे ★ विनायक नारायण देशपांडे

अनंत लक्ष्मण कान्हरे

लंदन से आए हुए जहाज की सवारियाँ ज्यों ही बंबई बंदरगाह पर उतरीं, कस्टम के अधिकारियों ने उनकी तलाशी आरंभ कर दी। एक व्यक्ति की तलाशी लेते हुए एक अधिकारी ने पूछा—"आपका नाम?"

"चतुर्भुज अमीन।"

"आपके पास कोई आपत्ति-जनक सामान तो नहीं है?"

"जी नहीं।"

कस्टम अधिकारी ने सरसरी तौर से उसके सामान को टटोलना प्रारंभ किया और वह उसे जाने की इजाजत देने ही वाला था कि आखिरी सवाल के जवाब ने उसे चौंका दिया—

"लंदन में आप कहाँ से आए हैं?"

"जी, मैं लंदन में 'भारतीय भवन' (इंडिया हाउस) में रहता हूँ।"

'भारतीय भवन' का नाम सुनते ही कस्टम अधिकारी चौंका और उसने यात्री को ऊपर से नीचे तक देखते हुए कहा—"वही भारतीय भवन, जिसमें भारत के क्रांतिकारी रहकर ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ षड्यंत्र रचा करते हैं?"

"मुझे तो ऐसी कोई जानकारी नहीं है। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि वहाँ कुछ विद्यार्थी रहते हैं, जो विभिन्न कॉलेजों में पढ़ते हैं या कोई हुनर सीखते हैं।"

"हाँ, हमें मालूम है कि वे वहाँ बम और पिस्तौलों का हुनर सीखते हैं। अच्छा, यह बताइए कि आप क्या हुनर सीखते हैं?"

"मैं वहाँ कोई हुनर नहीं सीखता। जो हुनर मुझे आता है, उसीके द्वारा मैं वहाँ रहनेवालों की सेवा करता हूँ। मैं भारतीय भवन में रसोइया हूँ।"

इस प्रश्नावली के दौरान भी कस्टम अधिकारी के हाथ बराबर चलते रहे। वह अब सरसरी तौर से तलाशी न लेकर बहुत सावधानी से तलाशी ले रहा था। यात्री का बड़ा संदूक खुलवाकर उसने उसका पूरा सामान बाहर निकाला और उसे

तब संतोष हुआ जब उसने उसकी खाली तली देख ली।

तलाशी संपन्न हो जाने पर चतुर्भुज अमीन ने संदूक में सामान यथावत् रख दिया और अधिकारी की अनुमति लेकर वह हम्माल पर सामान लदवाकर बाहर की ओर चल पड़ा। वह मन-ही-मन खूब हँस रहा था। यदि वह एकांत में होता तो खूब जोर से हँसता। वह इसलिए हँस रहा था कि जाँच अधिकारी को उसने बुद्धू बनाया था। जिस संदूक की वह तलाशी ले चुका था, उसीमें एक नकली पेंदी लगवाकर वह बीस ब्राउनिंग पिस्तौलें लाया था। जाँच अधिकारी इस युक्ति को नहीं समझ पाया और चतुर्भुज अमीन के हाथों सचमुच ही बुद्धू बन गया।

चतुर्भुज अमीन ने अपना काम पूरा कर दिया। लंदन से विनायक दामोदर सावरकर और उनके साथी क्रांतिकारियों द्वारा भेजे गए वे आग्नेयास्त्र उसने महाराष्ट्र के क्रांतिकारियों को सौंप दिए।

महाराष्ट्र के क्रांतिकारियों के सामने उस समय एक बड़ा काम था। वे नासिक के कलेक्टर मि. जैक्सन की हत्या करना चाहते थे। वे जैक्सन की हत्या इसलिए करना चाहते थे कि उसने ही, मात्र राष्ट्रीय कविताएँ लिखने पर, गणेश दामोदर सावरकर को आजीवन कारावास की सजा देकर कालेपानी भिजवाया था।

कलेक्टर मि. जैक्सन की हत्या करने की योजना नासिक के क्रांतिकारी बना चुके थे। इस योजना को क्रियान्वित करने में सबसे अधिक उत्साह जिस नौजवान ने दिखाया था उसका नाम अनंत लक्ष्मण कान्हरे था। कान्हरे औरंगाबाद का निवासी और 'अभिनव भारत' संस्था का सदस्य था। वह चाहता था कि जिस प्रकार लंदन में मदनलाल धींगरा ने कर्जन वायली की हत्या की थी, वह भी उसी प्रकार जैक्सन की हत्या करके अंग्रेजों को सिखाए कि भारतीय नौजवान किसी भी अन्याय का बदला लेने की क्षमता रखते हैं। किसी परिस्थिति से वह विचलित नहीं होगा, यह प्रमाणित करने के लिए कान्हरे ने जलती हुई चिमनी के ऊपर अपनी हथेली कर ली थी और दो मिनट तक वह जलती हुई लौ पर अपनी हथेली किए रहा था।

जैक्सन की हत्या का दिन २१ दिसंबर, १९०९ निश्चित किया गया था। उसका स्थानांतरण पूना हो चुका था और उसके कार्यालय के लोगों ने उसके बिदाई समारोह के अंतर्गत २१ दिसंबर, १९०९ को नासिक के विजयानंद सभाभवन में रात्रि को 'शारदा' नाम का नाटक अभिनीत करने का निश्चय किया था।

अनंत लक्ष्मण कान्हरे और उसके सहयोगी सभाभवन में पहले ही अपनी स्थिति ले चुके थे। उसके सहयोगियों में विनायक नारायण देशपांडे और कृष्ण गोपाल कर्वे प्रमुख थे। २१ दिसंबर की संध्या को देशपांडे के घर पर क्रांतिकारियों

की बैठक हुई और वहीं सभी को हथियार वितरित किए गए। कान्हरे को एक ब्राउनिंग पिस्तौल दी गई, जो लंदन से चतुर्भुज अमीन द्वारा लाई गई थी। इसके अतिरिक्त उसे एक निकल प्लेटेड रिवॉल्वर भी दिया गया। यह तय किया गया कि यदि कान्हरे का निशाना चूकता है तो देशपांडे आक्रमण करेगा और उसके पश्चात् कृष्ण गोपाल कर्वे। जिस स्थान पर जैक्सन के बैठने की व्यवस्था की गई थी, उसके बहुत निकट ही कान्हरे ने अपनी स्थिति जमा रखी थी। वह उस स्थान पर बैठा हुआ था, जिस रास्ते को पार करके जैक्सन को अपने निश्चित स्थान पर पहुँचना था।

निश्चित समय पर जैक्सन सभाभवन पहुँचा। वह आगे-आगे था और उसकी अगवानी करनेवाले लोग उसके पीछे थे। जैसे ही वह कान्हरे के पास से निकला, कान्हरे ने अपनी पिस्तौल से एक गोली दाग दी। उसका यह निशाना खाली गया। तनिक भी देर किए बिना उसने दूसरी गोली दाग दी, जो जैक्सन की बाँह में जाकर लगी। कुछ लोग तो यह समझे कि जैक्सन की अगवानी में पटाखे छोड़े जा रहे हैं। जब गोली खाकर जैक्सन भूमि पर गिरा तब लोगों की समझ में आया कि उसे गोलियों का निशाना बनाया गया है। जैक्सन के गिरने पर भी कान्हरे ने उसके शरीर पर कई गोलियाँ दागीं और उसे छलनी कर दिया। कुछ लोग कान्हरे पर टूट पड़े और उसे गिरफ्तार कर लिया गया। जैक्सन की मृत्यु घटनास्थल पर ही हो गई। नासिक से बिदा होने के स्थान पर वह इस दुनिया से ही बिदा हो गया।

अनंत लक्ष्मण कान्हरे, विनायक देशपांडे, कृष्ण गोपाल कर्वे तथा चार अन्य व्यक्तियों पर जैक्सन की हत्या का मुकदमा चला और २९ मार्च, १९१० को फैसला सुना दिया गया। फैसले के अनुसार कान्हरे, कर्वे और देशपांडे को फाँसी की सजा सुनाई गई तथा तीन अभियुक्तों को आजीवन कारावास का दंड दिया गया। एक अभियुक्त को केवल दो वर्ष के कठोर कारावास का दंड दिया गया।

बंबई के निकट ठाणा स्थान की विशेष जेल में १९ अप्रैल, १९१० को कान्हरे, कर्वे और देशपांडे को फाँसी के फंदों पर झुला दिया गया। उनके बलिदान ने महाराष्ट्र और समूचे राष्ट्र में राष्ट्रीय चेतना की एक तेज लहर फैला दी।

□

★ अनंतहरि मित्र ★ प्रमोदरंजन चौधरी

प्रमोदरंजन चौधरी

अनंतहरि मित्र

दौड़ो!
बचाओ!
जल्दी करो!
वह मर जाएगा!

ये आवाजें किसी मानव कंठ से नहीं, अलीपुर सेंट्रल जेल के निर्जीव घंटे से निकल रही थीं, जो किसी भयंकर खतरे की सूचना देने के लिए बेतहाशा बजे जा रहा था। जी हाँ, जोर-जोर से और लगातार बजनेवाले उस घंटे से मानो यही ध्वनि निकल रही थी—'दौड़ो! बचाओ! जल्दी करो! वह मर जाएगा!'

जेल के अधिकारियों और सशस्त्र पुलिस की भीड़ जब हाँफती-हूँफती जेल के बम अहाते में पहुँची तो वहाँ उन्हें कोई खतरा नहीं मिला। सबकुछ सामान्य था। बम अहाते की उस कोठरी के सभी क्रांतिकारी कैदी अपनी कोठरी के खुले हुए दरवाजे के पास 'राजा बेटा' की तरह इस मुद्रा में खड़े थे मानो वे जानना चाह रहे हों कि क्या हुआ है और यह खतरे का घंटा क्यों बजा है?

जेल के अधिकारी तथा सशस्त्र पुलिस के लोग भी वहाँ खतरे का कोई निशान न पाकर यह सोच ही रहे थे कि कहीं वहाँ खतरा बताकर बम अहाते के वार्डर ने उन्हें बुद्धू तो नहीं बनाया कि इतने ही में उस अहाते का वार्डर भागता हुआ वहाँ आकर रुका और कोठरी के सामने खड़े हुए आठों कैदियों की ओर इशारा करते हुए बोला—

"इन्हीं लोगों ने बेरहमी के साथ लोहे के डंडे से पुलिस अफसर भूपेंद्रनाथ चटर्जी साहब को बुरी तरह मारा है, जो बिलकुल मरने जैसी हालत में उधर गली के मोड़ के पास पड़े हुए हैं।"

इतना कहकर वार्डर ने उन कैदियों को अंदर ठेलकर ताला लगा दिया और सहायता के लिए आई हुई भीड़ को वहाँ ले गया, जहाँ सचमुच ही खुफिया विभाग के विशेष पुलिस अधीक्षक भूपेंद्रनाथ चटर्जी पड़े हुए दम तोड़ रहे थे। उनकी खोपड़ी का कचूमर निकल चुका था और सारा शरीर खून से इतना लथपथ था कि उन्हें पहचानना भी मुश्किल था। यह संभव ही नहीं था कि मरनेवाला व्यक्ति कुछ बयान दे सकता और बता सकता कि उसके साथ क्या तथा किस प्रकार घटित हुआ है। कुछ लोग उस जीवित लाश को अस्पताल पहुँचाने के उपक्रम में लग गए और कुछ अधिकारी लोग उन आठों कैदियों की कोठरी के सामने पहुँचकर उनसे प्रश्न-पर-प्रश्न पूछने लगे। एक दल की ओर से प्रश्न और दूसरे दल की ओर से उत्तर कुछ इस प्रकार निकल रहे थे—

"तुम लोगों ने भूपेंद्र साहब को क्यों मारा?"

"हमने नहीं मारा साहब, आप हमपर यह झूठा आरोप क्यों लगा रहे हैं?"

"यदि यह मान भी लिया जाए कि उन्हें और किसीने मारा है, तो भी तुम लोग उन्हें बचाने क्यों नहीं दौड़े; जबकि तुम्हारी कोठरी का दरवाजा खुला हुआ था?"

"अरे साहब, कोई बचाने के लिए चिल्ला रहा होता, तभी तो हम बचाने के लिए दौड़ते!"

"यदि कोई बचाने के लिए नहीं चिल्ला रहा था तो वहाँ हो क्या रहा था?"

"वहाँ क्या हो रहा था, यह हमें क्या मालूम! हमें इस तरह की कुछ आवाजें अवश्य सुनाई दे रही थीं जैसे कोई किसी पर डंडे चला रहा हो।"

"तो फिर तुम लोगों ने जाकर हस्तक्षेप क्यों नहीं किया?"

"हम लोग किस अधिकार से हस्तक्षेप करते और क्यों करते? जेल में तो यह आएदिन का तमाशा है कि किसी-न-किसी कैदी पर डंडे बरसते ही हैं। हम तो यह समझे कि भूपेंद्र साहब खुद ही किसी कैदी को पीट रहे हैं।"

"अच्छा, यह तो बताओ कि दरवाजा खुला होने पर भी तुम लोग बाहर क्यों नहीं निकले?"

"बाहर हम इसलिए नहीं निकले कि हम क्रांतिकारी कैदी हैं। भागने की बात तो जघन्य अपराधों के कैदी सोचते हैं।"

"अच्छा, तुम लोग इस तरह कुछ कबूल नहीं करोगे। हम दूसरी तरह से

तुम्हारे साथ पेश आएँ, इसके पहले हम तुम्हारी कोठरी और तुम लोगों की जाँच करना चाहेंगे।''

जाँच करने की प्रक्रिया में उनकी कोठरी का ताला खोला गया और उनमें से प्रत्येक के हाथों में हथकड़ियाँ तथा पैरों में बेड़ियाँ डाल दी गईं। उन सभी को कोठरी से बाहर निकाला गया और अधिकारियों ने सूनी कोठरी का निरीक्षण इस उद्देश्य से किया कि वहाँ खून के धब्बे या वह हथियार मिले, जिससे यह सिद्ध हो सके कि पुलिस अफसर की हत्या में उन लोगों का हाथ है। वहाँ उस कोठरी में खून का एक छींटा भी दिखाई नहीं दिया और हथियार के नाम पर एक चाकू तक तो निकला नहीं। उन लोगों ने मसहरी के लोहे की छड़ों तक को ध्यान से देखा; पर उनपर भी खून का कोई निशान नहीं पाया गया।

कोठरी का निरीक्षण कर लेने के बाद उन कैदियों के शरीर और उनके कपड़ों की भी बारीकी के साथ जाँच की गई; पर खून का कोई निशान उनके शरीर या कपड़ों पर नहीं मिला। वे लोग अंसमंजस में थे कि वार्डर का कहना मानें या इन कैदियों का। इतने में ही किसीने वहाँ पहुँचकर सूचना दी कि भूपेंद्र साहब का प्राणांत हो चुका है। जाँच का काम आगे के लिए टालकर वे लोग वहाँ से चल दिए।

सच बात तो यह थी कि जो कैदी अपने आपको 'राजा बेटा' और घटना से स्वयं को बिलकुल अनभिज्ञ सिद्ध कर रहे थे, उन्होंने मिलकर खुफिया विभाग के विशेष पुलिस अधीक्षक भूपेंद्रनाथ चटर्जी की हत्या की थी। उनके दृष्टिकोण में उन्होंने हत्या नहीं की थी, अपितु एक देशद्रोही को भारत माता की स्वाधीनता के मार्ग से हटाया था। हत्या किस ढंग से की, यह सचमुच ही प्रशंसा और आश्चर्य करने की बात है। पूरी घटना को अधिक स्पष्ट और बोधगम्य बनाने के लिए प्रारंभिक घटनाओं की तह में जाना होगा।

वैसे तो स्वाधीनता के युद्ध के लिए क्रांतिकारियों ने कलकत्ता में बम बनाने के कई कारखाने स्थापित किए थे, पर उनमें से दो कारखाने ऐसे थे, जो एक-दूसरे के पूरक थे। इनमें से एक कारखाना दक्षिणेश्वर में था और दूसरा शोभा बाजार में। आवश्यकता पड़ने पर एक कारखाने से दूसरे कारखाने को बम सामग्री या बने हुए बम भी भेज दिए जाते थे और संकट के समय एक कारखाने के क्रांतिकारी दूसरे कारखाने में स्थानांतरित हो जाते थे।

कभी-कभी अनायास ही पुलिस को बड़ी सफलता हाथ लग जाती है; ठीक उसी प्रकार जैसे अनायास ही वैज्ञानिकों को प्रयोग करते समय कोई बहुत बड़ा आविष्कार हाथ लग जाता है। हुआ यह कि कलकत्ता की पुलिस काकोरी षड्यंत्र के कुछ अपराधियों का पता लगाने के लिए दक्षिणेश्वर के वाचस्पतिपाड़ा लेन के

एक मकान की तलाशी लेने के लिए पहुँची तो वहाँ एक साथ कई क्रांतिकारी उसकी पकड़ में आ गए और बने हुए बम तथा बम बनाने की बहुत सारी सामग्री भी उनके हाथ लग गई। जो लोग पकड़े गए थे उनमें थे—अनंतहरि मित्र, राजेंद्र लाहिड़ी, निखिल बनर्जी, राखाल डे, हरिनारायण चंद्र, वीरेंद्र बंद्योपाध्याय, देवीप्रसाद चौधरी, सुधांशु चौधरी और ध्रुवेंद्र चट्टोपाध्याय। सूर्यसेन भी उस समय वहाँ उपस्थित थे; पर वे पुलिस को चकमा देकर खिसक जाने में सफल हो गए। इनमें अनंतहरि मित्र दल के प्रमुख थे। अनंतहरि का जन्म १९०४ में हुआ था। उनके पिता का नाम रामलाल मित्र और माता का नाम पंचाननी देवी था। अनंतहरि का बचपन अपने मामा के यहाँ व्यतीत हुआ। कुछ दिन उन्होंने चटगाँव में भी शिक्षा प्राप्त की। विवेकानंद साहित्य ने उन्हें कुछ कर गुजरने की प्रेरणा दी। वे असहयोग आंदोलन में कूद पड़े; पर १९२२ में चौरीचौरा कांड में आंदोलन स्थगित कर दिए जाने के कारण वे क्रांतिकारियों के दल में सम्मिलित हो गए और धीरे-धीरे उन्हें मुखिया का पद भी प्राप्त हो गया।

दक्षिणेश्वर में बम का कारखाना और क्रांतिकारियों के हाथ लग जाने के कारण २८ नवंबर, १९२५ को 'दक्षिणेश्वर बम केस' नाम से एक मुकदमा चलाया गया, जिसका फैसला ९ जनवरी, १९२६ को सुनाया गया। फैसले के अनुसार अनंतहरि मित्र, राजेंद्र लाहिड़ी और हरिनारायण चंद्र को दस-दस साल के कालेपानी का दंड मिला तथा अन्य को विभिन्न अवधि के कारागार के दंड मिले। पुलिस को जब यह पता लगा कि राजेंद्र लाहिड़ी काकोरी केस का अभियुक्त है तो राजेंद्र को लखनऊ भेज दिया गया, जहाँ काकोरी केस के अंतर्गत उन्हें फाँसी की सजा दी गई। अनंतहरि मित्र और उनके साथियों को कुछ समय के लिए अलीपुर की सेंट्रल जेल में रखा गया।

दक्षिणेश्वर के बम कारखाने के अतिरिक्त शोभा बाजार के कारखाने पर भी पुलिस ने उसी दिन, अर्थात् १० नवंबर, १९२५ की शाम को छापा मारा और भारी मात्रा में हथियार, बम बनाने का मसाला और आपत्तिजनक प्रचार साहित्य बरामद किया। शोभा बाजार के कारखाने में से पुलिस ने दो क्रांतिकारियों को गिरफ्तार किया, जिनमें से एक का नाम प्रमोदरंजन चौधरी था। इन दोनों पर मुकदमा एक विशेष ट्रिब्यूनल के समक्ष २ जनवरी, १९२६ को चला और १५ जनवरी, १९२६ को फैसला सुना दिया गया। प्रमोदरंजन चौधरी और उसके साथी—दोनों को ही पाँच-पाँच वर्ष के कठोर कारावास का दंड मिला। इन दोनों क्रांतिकारियों को भी अलीपुर सेंट्रल जेल के बम अहाते में अनंतहरि और उनके साथियों के साथ अपील का निराकरण होने तक के लिए रखा गया। उस समय उस कोठरी में आठ क्रांतिकारी थे।

इतने क्रांतिकारियों को एक साथ रख दिए जाने के कारण जिस षड्यंत्र का क्रियान्वयन हुआ, उसके अंतर्गत विशेष पुलिस अधीक्षक भूपेंद्रनाथ चटर्जी को अपनी जान से हाथ धोने पड़े।

कलकत्ता की पुलिस को इस बात का खेद था कि बम के दोनों कारखानों के कुछ क्रांतिकारी भागने में सफल हो गए थे। वह उन्हें भी पकड़ना चाहती थी। उनके सूत्र पकड़े हुए क्रांतिकारियों से ही ज्ञात हो सकते थे। अत: पुलिस विभाग ने यह काम खुफिया विभाग के विशेष पुलिस अधीक्षक भूपेंद्रनाथ चटर्जी को सौंप रखा था। भूपेंद्रनाथ चटर्जी एक चालाक अफसर था। उसकी आदत थी कि ऑफिस का समय समाप्त होने के पश्चात् वह जेल का एक चक्कर लगाया करता था।

भूपेंद्रनाथ चटर्जी क्रांतिकारियों में फूट डालकर उन्हें पतित करने का प्रयत्न किया करता था। उसका प्रयत्न रहता था कि वह उनमें से किसी-न-किसीको फुसलाकर या प्रलोभन देकर उनसे उन क्रांतिकारियों के पते-ठिकाने पूछ ले, जो गिरफ्तार नहीं किए जा सके थे। क्रांतिकारी लोग उसके मंतव्य को समझते थे और वे उसकी चालों को विफल करते रहे थे; फिर भी वे उसकी धूर्तता से शंकित रहते थे। उससे छुटकारा पाने के लिए उन्होंने यही तय किया था कि किसी दिन मौका पाकर उसे खत्म कर दिया जाए। भूपेंद्र भी इस आशंका से बेखबर नहीं था और वह अपनी सुरक्षा का पूरा ध्यान रखता था।

वह २८ मई, १९२६ की संध्या थी, जब भूपेंद्रनाथ चटर्जी जेल-निरीक्षण के लिए निकला। जो कोठरी सामने पड़ती, वह उसमें बंद कैदियों को पुकारता और उनसे कुछ-न-कुछ बात करता जा रहा था। अनंतहरि और उसके साथियों ने उसपर अपना दाँव आजमाना चाहा। उन्होंने अपने बम अहाते के वार्डर से प्रार्थना की कि हमारी एक धोती, जो सूखने के लिए डाली गई थी, बाहर नाली में गिर गई है, हममें से कोई उसे उठा लाए, इसलिए आप तनिक कोठरी का ताला खोल दें। वार्डर ने उनकी बात मान ली और कोठरी का ताला खोल दिया। ज्यों ही उसने ताला खोला, चार क्रांतिकारी उसपर चढ़ बैठे और उसकी चाबी व सीटी छीन ली। इतने में ही भूपेंद्रनाथ चटर्जी उनकी कोठरी के सामने आने के लिए गली के मोड़ पर पहुँचा ही था कि शेष चार क्रांतिकारी बाहर झपट पड़े। दो क्रांतिकारी तो दोनों दिशाओं में निगरानी के लिए नियुक्त हो गए और दो क्रांतिकारी मसहरी के लोहे की छड़ें लिये हुए भूपेंद्रनाथ चटर्जी पर पिल पड़े। अनंतहरि मित्र और प्रमोदरंजन चौधरी विद्युत् गति से उसकी खोपड़ी पर छड़ों से प्रहार किए जा रहे थे। भूपेंद्र की खोपड़ी का कचूमर निकल गया और वह गिरकर बेहोश हो गया। उसके पश्चात् भी उसपर इतने प्रहार किए गए कि वह जीवित न बच सके। उसे छोड़कर वे लोग अपनी

कोठरी में आ गए और वार्डर को इस बात की चेतावनी के साथ छोड़ दिया कि अगर तूने किसीको यह बात बताई तो हम मौका पाकर तुझे भी मार डालेंगे। वार्डर भागकर वहाँ गया, जहाँ खतरे की सूचना देने के लिए घंटा लटकता रहता था। उसने जोर-जोर से घंटा बजाना शुरू कर दिया। इसी बीच कोठरी के क्रांतिकारियों ने हत्या के निशान मिटा दिए। अनंतहरि मित्र की लोहे की छड़ और उसके हाथ खून में रँग गए थे। उसने झटपट अपनी थाली में अपने हाथ धो डाले और उस छड़ को भी धो लिया। समस्या यह थी कि वह रक्त-मिश्रित पानी कहाँ फेंके। वह रक्त-मिश्रित पानी स्वयं पी गया और हत्या का वह निशान भी उसने मिटा दिया। मसहरी के लोहे की छड़ें भी यथास्थान लगा दी गईं।

बेतहाशा बजते हुए खतरे के घंटे की आवाज सुनकर जेल के अधिकारी तथा सशस्त्र पुलिस के लोग कारण जानने के लिए वहाँ पहुँचे तो बम अहाते का वार्डर अगुआ बनकर उन्हें घटनास्थल पर ले गया और जो कुछ घटित हुआ था, वह उन्हें सुना दिया। क्रांतिकारियों और जेल के अधिकारियों के बीच क्या सवाल-जवाब हुए, यह बताया ही जा चुका है।

उस कोठरी के क्रांतिकारियों पर नए सिरे से पुलिस अधीक्षक भूपेंद्रनाथ चटर्जी की हत्या का अभियोग चलाया गया। यह मुकदमा विशेष ट्रिब्यूनल के समक्ष १५ जून, १९२६ को प्रारंभ हुआ और १८ जून को समाप्त हो गया। २१ जून, १९२६ को फैसला सुना दिया गया।

फैसले के अनुसार अनंतहरि मित्र एवं प्रमोदरंजन चौधरी को फाँसी की सजा दी गई और अन्य क्रांतिकारियों को विभिन्न अवधि के कारावास की सजाएँ मिलीं। फैसले के विरुद्ध अपील की गई, पर दिए गए दंड यथावत् रहे।

अनंतहरि मित्र और प्रमोदरंजन को २८ सितंबर, १९२६ को फाँसी पर झुला दिया गया। फाँसी के पूर्व रात्रि को वे लोग मस्ती में रात-भर राष्ट्रीय गीत गाते रहे और प्रातःकाल हँसते-गाते फाँसी के फंदों पर झूल गए।

□

★ सेठ अमरचंद बाँठिया

ब्रिगेडियर नेपियर ने ग्वालियर राज्य के गंगाजली कोष के अध्यक्ष सेठ अमरचंद बाँठिया पर आरोप लगाते हुए कहा—

"वैल मिस्टर बाँठिया! तुमपर दोहरे राजद्रोह का आरोप है। क्यों न तुम्हें इस

अपराध के लिए फाँसी का दंड दिया जाए?''

बड़े धैर्य के साथ अमरचंद बाँठिया ने उत्तर दिया—

''मिस्टर नेपियर, यह तो मुझे मालूम ही है कि आप मुझे फाँसी का दंड देंगे, फिर आप न्याय का यह नाटक क्यों कर रहे हैं? क्या आप मुझपर लगाए गए दोहरे राजद्रोह के आरोप का खुलासा करेंगे?''

''तुमपर पहला आरोप तो ग्वालियर राज्य के गंगाजली कोष का अपार धन महारानी लक्ष्मीबाई के सैनिकों को बाँट देने का है। अपने इस कार्य से तुमने अपने ग्वालियर राज्य के प्रति द्रोह किया है। तुम्हारा दूसरा द्रोह कंपनी सरकार के प्रति है, जिसका नाश करने के लिए तुमने विद्रोहियों को धन दिया। इस प्रकार तुम दोहरे राजद्रोह के अपराधी हो।''

सेठ अमरचंद बाँठिया का उत्तर था—

''मेरे प्रति आपके ये दोनों आरोप गलत हैं। पहले आरोप का उत्तर तो यह है कि जिस समय महारानी लक्ष्मीबाई के सैनिकों को धन वितरित किया गया, उस समय ग्वालियर राज्य पर महारानी लक्ष्मीबाई का अधिकार हो गया था और इस नाते मैं उनका सेवक था। मैंने तो महारानी की आज्ञा का पालन करके सेवक-धर्म का निर्वाह किया था। आपके दूसरे आरोप का उत्तर यह है कि आप हमारे देश के दुश्मन हैं और अपने दुश्मन के प्रति द्रोह करना अपने देश के प्रति वफादारी है।''

सेठ अमरचंद बाँठिया का यह करारा उत्तर सुनकर ब्रिगेडियर नेपियर जल-भुनकर रह गया। उसने आदेश दे दिया कि सेठ अमरचंद को सार्वजनिक रूप से फाँसी के फंदे पर लटका दिया जाए और उसकी लाश को उस समय तक लटकाकर रखा जाए, जब तक वह सड़कर बदबू न देने लगे।

आदेश का पालन किया गया। सेठ अमरचंद बाँठिया का मकान ग्वालियर के सर्राफा बाजार के कोने पर था। मकान के सामने नीम का एक विशाल वृक्ष था। उसी नीम के वृक्ष की एक डाल से रस्सी बाँधकर सेठ अमरचंद बाँठिया को फाँसी पर लटका दिया गया। उसके शव को रस्सी के सहारे तीन दिनों तक वहीं लटकते रहने दिया गया। वहाँ फौज का पहरा भी बिठा दिया गया कि कोई लाश को उतार न सके। सेठ के परिवार के लोगों में किसीने भी उस समय तक अन्न और जल ग्रहण नहीं किया, जब तक शव का अंतिम संस्कार नहीं कर दिया गया।

मूल रूप से सेठ अमरचंद बाँठिया राजस्थान के बीकानेर राज्य के निवासी श्वेतांबर जैन थे। व्यापार-व्यवसाय की खोज में वे ग्वालियर पहुँचे थे। अपने गुणों के कारण वे ग्वालियर के नरेश जयाजीराव सिंधिया की नजरों में चढ़ गए और

उनके आग्रह पर वे ग्वालियर में ही बस गए। उनकी सच्चरित्रता और ईमानदारी से प्रभावित होकर सिंधिया नरेश ने उन्हें अपने गंगाजली कोष का कोषाध्यक्ष नियुक्त किया था।

जिस समय महारानी लक्ष्मीबाई की सेना ने ग्वालियर पर अधिकार किया, उनके सैनिकों को कई मास से वेतन नहीं मिला था। तात्या टोपे के संकेत पर सेठ अमरचंद बाँठिया ने वांछित धन नानासाहब पेशवा के भाई रावसाहब को दे दिया। इस धन से सैनिकों का वेतन चुका दिया गया और आवश्यक उपकरण भी खरीदे गए।

सेठ अमरचंद बाँठिया का देशप्रेम ही उसका अपराध माना गया और २२ जून, १८५८ को उसे फाँसी पर लटका दिया गया।

□

★ अमरसिंह

बिहार के क्रांतिकारियों की ओर से अंग्रेजी सेना लगभग निश्चिंत हो चुकी थी। जगदीशपुर के राजा कुँअरसिंह की मृत्यु के पश्चात् अंग्रेजों ने सोचा कि बिहार में अब हम चैन की साँस ले सकेंगे; पर ऐसा हुआ नहीं। कुँअरसिंह के स्थान पर उसीका छोटा भाई अमरसिंह जगदीशपुर का राजा बना और उसने पूरे जोश-खरोश के साथ अंग्रेजों के साथ युद्ध जारी रखा। सच बात तो यह है कि जगदीशपुर का सिंहासन उसे राज्य करने के लिए नहीं, वरन् अपने भाई कुँअरसिंह की आन-बान का निर्वाह करने के लिए ही मिला था।

अमरसिंह को गद्दी पर बैठे अभी केवल चार दिन ही हुए थे कि उसने सुना कि आक्रमण करने के लिए अंग्रेजी फौजों का जमाव आरा नामक स्थान पर हो रहा है। शत्रु आक्रमण करे, इसके पहले ही अमरसिंह ने शत्रु पर आक्रमण कर दिया। आरा में घमासान युद्ध हुआ और अमरसिंह ने अंग्रेजी सेना को पराजित कर दिया।

अंग्रेजी सेना की पराजय का समाचार सुनकर ब्रिगेडियर डगलस तथा जनरल लुगार्ड सेनाओं सहित अमरसिंह पर चढ़ दौड़े। अमरसिंह के पास बहुत छोटी-सी सेना थी। उसके मुकाबले में अंग्रेजों के पास विशाल सेना थी। अमरसिंह ने अपनी सेना को और भी छोटी-छोटी टुकड़ियों में बाँट दिया और उन्हें इधर-उधर छिपा दिया। क्रांतिकारी टुकड़ी एक स्थान पर उपद्रव करती तो अंग्रेजी सेना उपद्रव को दबाने वहाँ पहुँचती; उधर अंग्रेजी सेना द्वारा खाली किए गए स्थान पर क्रांतिकारी

सेना की दूसरी टुकड़ी अधिकार जमा लेती थी। इस प्रकार अंग्रेजी सेना को बुरी तरह छकाया गया। सेनापति लुगार्ड परेशान और निराश होकर, सेवामुक्त होकर इंग्लैंड चला गया।

अमरसिंह ने जब आरा पर आक्रमण करके जगदीशपुर छोड़ा तो अंग्रेजी सेना ने पूरी नाकेबंदी कर ली कि वह दोबारा जगदीशपुर न पहुँच सके। अमरसिंह ने अंग्रेजी सेना को चकमा दिया। उसने अपने गुप्तचरों द्वारा यह अफवाह प्रसारित कर दी कि अमरसिंह आरा में प्रवेश कर गया है और उसने वहाँ पर अधिकार कर लिया है। इधर अंग्रेजी सेना आरा पहुँचने लगी और उधर अमरसिंह जगदीशपुर पहुँच गया।

अंग्रेजी सेना यह चकमा खाकर बुरी तरह बौखला गई। ब्रिगेडियर डगलस ने प्रतिज्ञा की कि वह कुछ ही समय में अमरसिंह को मारकर दिखाएगा। अमरसिंह को मारनेवाले के लिए उसने बड़े-बड़े पुरस्कारों की घोषणा कर दी। इतना ही नहीं, वह सात हजार सैनिकों को साथ लिये जगदीशपुर की घेराबंदी करने लगा। अपनी सेना को सात भागों में बाँटकर उसने जगदीशपुर की ओर बढ़ना प्रारंभ कर दिया। जगह-जगह चौकियाँ बिठा दी गईं कि एक भी व्यक्ति जगदीशपुर के बाहर न जा सके। वह यह सोच रहा था कि उसने शेर को पिंजरे के अंदर बंद कर दिया है और पिंजरे के अंदर ही वह उसका शिकार करेगा।

अमरसिंह ने जब यह सुना तो उसने भी बेदाग निकल जाने का संकल्प कर लिया। जगदीशपुर पर अंग्रेजी सेना के आक्रमण के रूप में छह सेनाएँ छह तरफ से एक साथ बढ़ीं; पर सातवीं सेना को बढ़ने में कुछ विलंब हो गया, वह शेष सेनाओं से एक प्रकार से कट गई। स्थिति का लाभ उठाकर अमरसिंह ने इसी पिछड़ी हुई सेना की तरफ से निकल जाने में सफलता प्राप्त की। ब्रिगेडियर डगलस हाथ मलता रह गया। उसका मान भंग हो चुका था।

अब फिर अंग्रेजी सेना ने और अधिक संगठित व सुसज्जित होकर बिखरे हुए क्रांतिकारियों को घेर लिया। १९ अक्तूबर, १८५८ को अंग्रेजी सेना ने क्रांतिकारियों को पूरी तरह से घेर लिया। चार सौ में से तीन सौ क्रांतिकारी लड़ते-लड़ते खेत रहे। शेष एक सौ क्रांतिकारियों ने इधर-उधर बिखरकर अधिक-से-अधिक अंग्रेज सैनिकों को समाप्त करना प्रारंभ कर दिया। हर क्रांतिकारी शेर की तरह झपट-झपटकर शत्रु सेना पर आक्रमण कर रहा था। मरते-खपते केवल तीन क्रांतिकारी ही शेष बचे। इन तीन में से अमरसिंह स्वयं एक था। ये तीन क्रांतिकारी शत्रु सेना पर झपटते हुए और उसे चीरते हुए साफ निकल गए। एक बार तो हाथी पर बैठे हुए अमरसिंह को पहचानकर शत्रु सेना ने हाथी को चारों ओर से घेरकर बंदी बना

लिया; पर क्षण-भर का भी विलंब न करके अमरसिंह हाथी पर से कूदकर शत्रु को छकाता हुआ निकल गया।

इन क्रांतिकारियों ने हर पर्वत-उपत्यका में, हर जंगल में, एक-एक इंच भूमि पर शत्रु सेना के साथ युद्ध किया; पर न तो कभी समर्पण ही किया और न पराजय स्वीकार की। उन्होंने वीरता, युद्ध-कला और स्वातंत्र्य-प्रेम का कीर्तिमान स्थापित करके दिखा दिया। अमरसिंह कहाँ गया और उसका अंत कैसे हुआ, यह किसीको ज्ञात न हो सका।

जगदीशपुर के रनिवास की डेढ़ सौ स्त्रियों ने जौहर की विचित्र योजना क्रियान्वित की। वे स्वयं ही तोपों के सामने खड़ी हो गईं और अपने हाथों से तोपों में पलीता लगाकर उन्हें दागती हुईं, गोलों की मार से चिंदी-चिंदी होकर बिखर गईं।

भारत इन बिहारी वीरों और वीरांगनाओं पर गर्व करता रहेगा।

□

★ अमरसिंह हरियाणवी

यह अमरसिंह का दुर्भाग्य था कि वह एक अंग्रेज अफसर मि. मोर के दफ्तर में चपरासी का काम करता था। उसे साहब के घर पर भी काफी काम करना पड़ता था। वैसे अमरसिंह ऊँचे सिद्धांतोंवाला था और भारतीय क्रांतिकारियों के प्रति उसकी गहरी सहानुभूति थी। वह हरियाणा के सुनारिया ग्राम का रहनेवाला था।

मि. मोर चरित्र का हलका आदमी था। वह आने-जानेवाली महिलाओं पर फबतियाँ कसा करता था। एक दिन उसने अमरसिंह से अपने ही दफ्तर के एक बाबू की पत्नी के विषय में पूछताछ की। अमरसिंह को यह अच्छा नहीं लगा और उसने साहब को बुरी तरह झिड़क दिया। वह बोला—

"आप हमारे शासक हैं, इसका अर्थ यह तो नहीं कि आप हमारी देवियों को बुरी दृष्टि से देखें। इस तरह के पापियों को हम लोग दंड देते हैं, उन्हें कभी क्षमा नहीं करते।"

साहब ने नाराज होकर उसे नौकरी से निकाल दिया। उसने अमरसिंह को बुरा-भला कहा और सभी भारतीयों के प्रति अपमानजनक शब्द कहे।

अमरसिंह अपने और देशवासियों के अपमान को भूला नहीं। वह अपने गाँव के बल्लू लुहार के पास गया और उससे एक फरसा लिया। रात के समय वह अंग्रेज अफसर के बंगले में पहुँच गया। मि. मोर उस समय सो रहा था। अमरसिंह

ने भारतीय आदर्श के अनुसार सोते हुए व्यक्ति पर प्रहार करना उचित नहीं समझा। उसने अपने साहब को जगाया। मि. मोर ने अमरसिंह को फरसा लिये क्रोध की मुद्रा में देखा तो वह टेबल की दराज में से अपना रिवॉल्वर लेने के लिए लपका। इसके पहले कि वह अपना रिवॉल्वर उठा सके, अमरसिंह ने फरसे के भरपूर वार से उसका काम तमाम कर दिया। उसने साहब की मेम को नहीं मारा; क्योंकि भारतीय आदर्श के अनुसार, नारी पर हाथ नहीं उठाया जाता। फरसा उसने वहीं छोड़ा और आँगन में खड़े नीम के दरख्त पर चढ़कर, उसकी शाखा के सहारे वह बाहर पहुँचकर अपने गाँव में चला गया।

अंग्रेज फौज ने अमरसिंह के गाँव को घेर लिया और उसने पूरे गाँव को तोपों से उड़ा देने का फैसला किया। निरपराध लोगों को दंड न मिले, इस कारण अमरसिंह ने स्वयं उपस्थित होकर आत्मसमर्पण कर दिया। अंग्रेजों ने उसपर कोई मुकदमा नहीं चलाया, पर क्रूरतापूर्वक उसके प्राण ले लिये। उन्होंने उसे एक खंभे से बाँध दिया और उसके ऊपर शिकारी कुत्ते छोड़ दिए। शिकारी कुत्तों ने अमरसिंह को नोच डाला।

भारतीय आदर्शों की रक्षा के लिए अमरसिंह ने अपने प्राण दे दिए।

□

★ अरविंद घोष

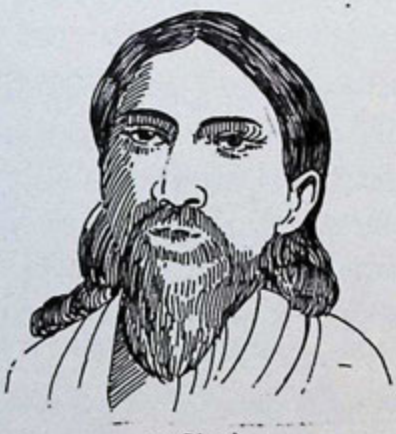

अरविंद घोष

कलकत्ता की बड़ी अदालत में उस दिन अपार भीड़ दिखाई दे रही थी। जिसे देखो वह अदालत की ओर जाता दिखाई दे रहा था। उस दिन अदालत में 'अलीपुर बम केस' के क्रांतिकारियों की ओर से कलकत्ता के प्रसिद्ध वकील चित्तरंजन दास सफाई की बहस करने वाले थे। शासन की ओर से मि. नॉर्टन वकील नियुक्त हुए थे और क्रांतिकारियों को फँसाने में उन्होंने कोई कसर नहीं छोड़ रखी थी। वे तो सभी क्रांतिकारियों को फाँसी से कम सजा दिलाना ही नहीं चाहते थे।

अदालत की कार्यवाही प्रारंभ हुई। अभियुक्त के कठघरे में अरविंद घोष खड़े हुए थे। चित्तरंजन दास ने अभियुक्त अरविंद घोष की ओर से पैरवी करते हुए सरकारी वकील नॉर्टन साहब के उन सभी जालों को छिन्न-भिन्न कर दिया, जो उन्होंने अरविंद को दोषी प्रमाणित करने के लिए जाली गवाही के रूप में तैयार किए थे। चित्तरंजन दास की आश्चर्यजनक विचार-बुद्धि और कानून संबंधी ज्ञान को देखकर दर्शक लोग मुग्ध हो गए।

नॉर्टन साहब ने भी अदालत में अपनी हँसी उड़ती हुई देखकर पैंतरा बदला और उन्होंने प्रकारांतर से यह सिद्ध करना चाहा कि अभियुक्त अरविंद घोष ने ब्रिटिश विद्वेष से प्रेरित होकर नौजवानों को क्रांति और हिंसा के लिए उत्तेजित किया है। उन्होंने एक कार्ड प्रस्तुत किया, जो अरविंद के नाम वारींद्रकुमार का लिखा बताया गया। उस कार्ड में लिखा था—

'अभी मिठाइयाँ बाँटने का समय है।'

नॉर्टन महोदय ने यह सिद्ध करना चाहा कि 'मिठाइयाँ' का मतलब है—'बम'। नॉर्टन महोदय की इस व्याख्या से अदालत में हँसी गूँज गई। असेसरगण इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि पत्र जाली है। स्वयं जज महोदय ने स्वीकार किया कि उस साक्ष्य का कोई मूल्य नहीं है।

अपनी सफाई जारी रखते हुए श्री चित्तरंजन दास ने सरकारी वकील के तर्कों की धज्जियाँ उड़ाते हुए यह प्रमाणित किया कि राजनीति के क्षेत्र में अरविंद ने जो कुछ किया है, वह किसी प्रकार भी गैर कानूनी नहीं कहा जा सकता। उन्होंने अभियुक्त के कठघरे में खड़े अरविंद घोष की ओर इंगित करके न्यायमूर्ति महोदय को संबोधित करते हुए कहा—

"न्यायमूर्ति महोदय!

"मैं यह कहते हुए आत्मविश्वास का अनुभव करता हूँ कि उस समय जब यह विवाद खामोशी में डूब जाएगा, उस समय जब यह शोरगुल और यह आंदोलन समाप्त हो जाएगा, उस समय जब स्वयं यह व्यक्ति इस दुनिया से बिदा हो जाएगा, तब वह देशभक्ति के एक कवि के रूप में याद किया जाएगा और वह मानवता का पुजारी तथा राष्ट्रीयता का मसीहा समझा जाएगा। उस समय जब यह व्यक्ति इस दुनिया में नहीं रहेगा, इसकी वाणी न केवल भारतवर्ष में, वरन् संसार के कोने-कोने में ध्वनित और प्रतिध्वनित होती रहेगी।"

चित्तरंजन दास के इस ओजस्वी, भावुक और भविष्यवाणी रूप वक्तव्य को सभी दर्शक और स्वयं न्यायमूर्ति सी.पी. बीचक्राफ्ट महोदय चिंतन की गहराइयों में डूबकर सुनते रहे। अदालत का निर्णय अरविंद के पक्ष में रहा और निर्दोष करार

देकर उन्हें छोड़ दिया गया।

अदालत की कार्यवाही समाप्त होने पर श्री अरविंद और विशेष रूप से बाबू चित्तरंजन दास पर बधाइयों की वर्षा होने लगी।

अदालत द्वारा निर्दोष घोषित कर मुक्त किए जाने पर एकांतवासी अरविंद घोष चिंतन के अतीत में डूब गया और जीवन की सभी घटनाएँ चलचित्र के समान उसकी आँखों के सामने से गुजरने लगीं।

उसके महत्त्वाकांक्षी पिता डॉ. कृष्णधन घोष उसे अंग्रेजी संस्कार और उच्च शिक्षा दिलाने के लिए स्वयं उसे इंग्लैंड ले गए और अच्छे-से-अच्छे शिक्षकों की देखरेख में उसकी शिक्षा-दीक्षा संपन्न होने लगी। बालक अरविंद ने भी अपनी योग्यता से इंग्लैंड को चमत्कृत कर दिया। उसने कैंब्रिज विश्वविद्यालय की सर्वोच्च परीक्षा 'क्लासिकल ट्राइपोज' प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की। उसने लैटिन, ग्रीक और फ्रेंच भाषाओं का भी असाधारण ज्ञान प्राप्त कर लिया।

महत्त्वाकांक्षी पिता ने अरविंद को आई.सी.एस. की तैयारी के लिए प्रेरित किया। अरविंद अंग्रेजों की गुलामी के बंधन में बँधना नहीं चाहता था। उसने परीक्षा को ठुकराने का एक अच्छा बहाना खोज निकाला। परीक्षा के सभी प्रश्न-पत्रों में बहुत अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होने पर भी वह घुड़सवारी की परीक्षा में जानबूझकर कुछ समय देर से पहुँचा और नियमानुसार घुड़सवारी की परीक्षा में अनुत्तीर्ण घोषित कर दिया गया। वह इस प्रकार आई.सी.एस. के बंधन से बच गया।

अरविंद के सामने प्रश्न उपस्थित हुआ कि वह अपनी आजीविका के लिए क्या करे? उसकी योग्यता से प्रभावित होकर भारत के बड़ौदा नरेश ने उसे १८९३ में अपना निजी सचिव नियुक्त किया और कुछ दिन पश्चात् बड़ौदा कॉलेज के वाइस प्रिंसिपल का भार उसे सौंप दिया।

भावुक और कल्पनाशील अरविंद सोचता था कि उसके जीवन का उद्देश्य केवल पेट भरना ही तो नहीं है। अपने देश की पराधीनता उसके हृदय में काँटे की तरह चुभ रही थी। कांग्रेस की नरम नीति उसे रास नहीं आ रही थी। उसके विचार उग्र होते जा रहे थे और वह देख रहा था कि भारत की आजादी प्रार्थनाओं के प्रभाव से नहीं, अस्त्र-शस्त्रों के बल से अर्जित की जाएगी। बंगाल उस समय क्रांतिकारियों का गढ़ बना हुआ था। अरविंद का संपर्क क्रांतिकारियों के साथ हो गया और अब वह बम व पिस्तौल के खेल रचाने लगा।

अरविंद का लघु भ्राता वारींद्रकुमार घोष भी उसके साथ बड़ौदा में ही रह रहा था। वारींद्र की शिक्षा-दीक्षा अपने बड़े भाई की तरह इंग्लैंड में ही हुई थी; पर वह भी अपने बड़े भाई के पदचिह्नों पर चलकर, क्रांतिकारियों के संपर्क में आकर

उस दल में दीक्षित हो चुका था। एक दिन अरविंद ने वारींद्र की भावनाओं की थाह लेने की दृष्टि से कहा—

"वारींद्र! मैं देख रहा हूँ कि तुम क्रांति के खतरनाक रास्ते पर बहुत आगे बढ़ चुके हो। क्या तुम इसका परिणाम जानते हो?"

"जानता क्यों नहीं हूँ, भैया! मातृभूमि की मुक्ति के लिए यदि जीवन का बलिदान हो तो उसकी इससे बड़ी सार्थकता क्या होगी?"

"यह तो ठीक है, वारींद्र, पर क्या तुमने कभी यह भी सोचा है कि पिताजी तुम्हें क्या बनाना चाहते थे और तुम क्या बनने जा रहे हो?"

"भैया, यह कोई जरूरी तो नहीं है कि मैं पिताजी की अंग्रेजियत के आदर्शों में ढलूँ। और हाँ, भैया! यदि यही प्रश्न मैं आपसे करूँ तो आपके पास इसका क्या उत्तर है? क्या मुझे पता नहीं कि आप भी क्रांतिकारी दल में दीक्षित हो चुके हैं और इस रास्ते पर आप इतने आगे बढ़ गए हैं कि अब आप पीछे नहीं हट सकते।"

"मैं पीछे हटना भी नहीं चाहता, वारींद्र। अब हम दोनों एक ही पथ के पथिक हैं। मैंने तो यह निश्चय कर रखा है कि बहुत शीघ्र ही मैं उप-प्राचार्य का यह पद छोड़कर मातृभूमि का एक सिपाही बन जाऊँगा और सिपाही का जीवन तो तुम जानते ही हो कि वह कर्तव्य व मौत के झूले पर निरंतर झूलता रहता है।"

और अरविंद घोष को अपना प्रतीक्षित अवसर शीघ्र ही मिल गया। विभाजन की पीड़ा से त्रस्त बंगभूमि की पुकार उसने सुनी और वह दासता का नागपाश तोड़कर बंगाल जा पहुँचा। प्रत्यक्ष रूप से तो वह कलकत्ता के निकट यादवपुर के राष्ट्रीय महाविद्यालय का प्रिंसिपल और 'वंदेमातरम्' पत्र का संपादक था, पर परोक्ष रूप से वह सशस्त्र क्रांति का बहुत खतरनाक खेल खेल रहा था। एक प्रकार से वह एक क्रांतिकारी दल का नेतृत्व कर रहा था; बलिदान की भावना से ओत-प्रोत नौजवानों को क्रांति मंत्र से दीक्षित कर उन्हें मातृभूमि की मुक्ति के पथ पर अग्रसर कर रहा था। उसने हेमचंद्र दास नाम के एक युवक को दीक्षा दी और उसे प्रेरित किया कि वह बम बनाना सीखने के लिए यूरोप के देशों में जाए। हेमचंद्र दास अपनी पैतृक संपत्ति का एक अंश बेचकर फ्रांस जा पहुँचा और वहाँ उसने श्यामजी कृष्ण वर्मा एवं विनायक दामोदर सावरकर के संपर्क में आकर तथा फ्रेंच व रूसी विशेषज्ञों की देखरेख में बम बनाना सीख लिया।

बम-निर्माण की कला सीखकर हेमचंद्र दास भारत लौट आया। अरविंद और उसके दल का काम अब तेजी से चल निकला। कलकत्ता के मुरारीपुकुर बगीचे में बम का कारखाना स्थापित हो गया। अत्याचारी अंग्रेज अफसरों से

प्रतिशोध लेने की योजनाएँ बनने लगीं। बंगाल के गवर्नर पर दो बार बम के प्रहार किए गए, पर वे बाल-बाल बच गए। कलकत्ता के चीफ प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट मि. किंग्सफोर्ड की हत्या के प्रयत्न किए गए। मुजफ्फरपुर में खुदीराम बोस और प्रफुल्लचंद्र चाकी ने किंग्सफोर्ड के धोखे में एक वकील कैनेडी के परिवार पर बम-प्रहार कर दिया। इस प्रकरण में खुदीराम बोस और प्रफुल्लचंद्र चाकी दोनों ने अपने जीवन की आहुति दे दी।

खुदीराम बोस एवं प्रफुल्ल चाकी द्वारा किए गए बम-प्रहार के कारण अंग्रेजी हुकूमत के कान खड़े हो गए और उनके जासूस जगह-जगह क्रांतिकारियों को सूँघते फिरने लगे। व्यापक धर-पकड़ के अंतर्गत मुरारीपुकुर के बम कारखाने में अपने साथियों सहित अरविंद घोष भी पुलिस द्वारा धर लिये गए। अब वे सब जेल के सीखचों के अंदर थे।

ब्रिटिश हुकूमत ने क्रांतिकारियों पर 'अलीपुर बम केस' नाम से एक अभियोग चलाया। बहुत दिन तक मुकदमा चलने के पश्चात् ६ मई, १९०९ को सेशन जज मि. सी.पी. बीचक्राफ्ट ने फैसला सुना दिया। फैसले के अनुसार वारींद्र घोष और उल्लासकर दत्त को फाँसी का दंड दिया गया। उपेंद्र, विभूति, हृषीकेश, वीरेंद्र सेन, सुधीर, अविनाश इंद्रनंदी, शैलेंद्र बसु व हेमचंद्र को आजीवन कारावास तथा निर्वासन का दंड दिया गया और कुछ अन्य को विभिन्न अवधि के कारावास के दंड दिए गए। कलकत्ता के प्रसिद्ध वकील बाबू चित्तरंजन दास की चमत्कारपूर्ण वकालत के परिणामस्वरूप अरविंद घोष को निर्दोष करार देकर मुक्त कर दिया गया।

बाद में इस मुकदमे की अपील कलकत्ता हाई कोर्ट के प्रधान न्यायाधीश सर लॉरेंस एच. जेनकींस और न्यायाधीश कॉर्नडफ के इजलास में हुई। अपील के निर्णय के अनुसार, वारींद्र घोष और उल्लासकर दत्त की फाँसी की सजा बदलकर आजीवन कारावास और निर्वासन की सजा कर दी गई। शेष सजाएँ यथावत् रहीं।

मि. बीचक्राफ्ट की अदालत में अपने विषय में कहे गए बाबू चित्तरंजन दास के शब्द अरविंद घोष के कानों में गूँजते रहे—

'उस समय जब यह विवाद खामोशी में डूब जाएगा, उस समय जब यह शोरगुल और यह आंदोलन समाप्त हो जाएगा, उस समय जब स्वयं यह व्यक्ति इस दुनिया से बिदा हो जाएगा, तब वह देशभक्ति के एक कवि के रूप में याद किया जाएगा और वह मानवता का पुजारी तथा राष्ट्रीयता का मसीहा समझा जाएगा। उस समय जब यह व्यक्ति इस दुनिया में नहीं रहेगा, इसकी वाणी न केवल भारतवर्ष में, वरन् संसार के कोने-कोने में ध्वनित और प्रतिध्वनित होती रहेगी।'

और ये शब्द अरविंद के कानों में निरंतर गूँजते रहे तथा अनायास ही उसके

पैर उस ओर बढ़ गए, जिस ओर उसके सामने मानव-कल्याण का पथ था। उसे यह विश्वास हो गया कि देश तो दासता से मुक्त होगा ही, क्यों न मैं उस धरातल को खोज निकालूँ जहाँ से मानव अनवरत ऊँचाइयों की ओर अग्रसर होते हुए अति मानव के स्तर तक पहुँच जाए और ऐसी सुख-शांति का अनुभव करे, जो अभी तक केवल कल्पना की वस्तु है। और इस सारे चिंतन का परिणाम था पांडिचेरी का वह आश्रम, जो आज 'अरविंद आश्रम' के नाम से प्रसिद्ध है और जहाँ संसार के कोने-कोने से खिंचकर लोग विश्व-बंधुत्व की कल्पना साकार करते हुए अकल्पित शांति का अनुभव करते हैं।

इसका कोई महत्त्व नहीं कि अरविंद घोष ने १५ अगस्त, १८७२ को कलकत्ता में जन्म लिया और वह ५ दिसंबर, १९५० को इस दुनिया से बिदा हो गया, महत्त्व इस बात का है कि आज उस योगिराज की वाणी न केवल भारतवर्ष में, वरन् संसार के कोने-कोने में ध्वनित और प्रतिध्वनित हो रही है।

□

★ अल्लूरी सीताराम राजू

अल्लूरी सीताराम राजू को यह पक्का विश्वास हो चुका था कि अहिंसक आंदोलन से भारत को स्वाधीनता मिलने वाली नहीं है। पहले तो वह स्वयं गांधीजी के सिद्धांतों का हिमायती था और लोगों को यह समझाता फिरता था कि हम लोगों को मदिरा-पान नहीं करना चाहिए तथा न्यायालय में जाकर समय व धन नष्ट करने के बजाय अपने झगड़ों का निबटारा पंचायतों में ही कर लेना चाहिए; पर अब वह इन छोटी-मोटी बातों में सिर खपाने के बजाय अंग्रेजों के विरुद्ध किसी बड़े संगठन को स्वरूप देना चाहता था। उसके मन को बड़ा धक्का लगा, जब उसने सुना कि चौरीचौरा में कुछ हिंसक उपद्रव हो जाने के कारण महात्मा गांधी ने आजादी की तरफ़ तेजी से बढ़ता हुआ अपना अहिंसात्मक आंदोलन

अल्लूरी सीताराम राजू

स्वयं ही स्थगित कर दिया।

राजू की आत्मा विद्रोह कर उठी। उसने अपना बैरागी का बाना छोड़ दिया और मंदिरों में धार्मिक उपदेश देना एवं कीर्तन करना बंद कर दिया। उसने प्रदेश की आदिवासी जातियों को एकत्रित कर उन्हें सेना के रूप में परिणत करने का काम प्रारंभ कर दिया। राजू का सैन्य संगठन दिन दूना और रात चौगुना बढ़ने लगा। ग्रामीण क्षेत्रों में वह देवता की तरह पूजा जाता था। अपने लोगों की भलाई और सामाजिक हितों के लिए वह अपनी चिंता किए बिना कार्य करता आया था। लोगों ने उसके राजनीतिक विचारों पर भी विश्वास किया और उसकी सेना में भरती होने लगे।

कलेक्टर के घर में पला हुआ बालक इस प्रकार बागी बन गया। विशाखापत्तनम् के एक गाँव में ४ जुलाई, १८९७ को जनमे इस बालक ने जिस प्रकार अपने ही प्रयास से संस्कृत और अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त किया था, उसी प्रकार वह अपने ही प्रयास से सेना का निर्माण और अस्त्र-शस्त्र का संचालन कर रहा था। अब संपूर्ण रंपा क्षेत्र उसकी क्रांतिकारी गतिविधियों का केंद्र बना हुआ था। समानांतर पहाड़ियोंवाला यह स्थान छापामार युद्ध के लिए बहुत उपयुक्त था। अब उसको अपने क्षेत्र के कुछ अन्य प्रभावशाली व्यक्तियों का सहयोग मिलना भी प्रारंभ हो गया था। गुदेम के दो प्रभावशाली नेता गाम मल्लू डोरे और गाम गौतम डोरे अब उसके लेफ्टिनेंट बन चुके थे। उसकी सेना में डोरे बंधुओं के सम्मिलित हो जाने से उसे काफी बल मिला।

राजू के सामने समस्या थी अपनी सेना के लिए हथियार जुटाने की। यद्यपि उन लोगों के पास तीर-कमान थे, पर इनके बल पर सुसज्जित पुलिस फौज का मुकाबला तो नहीं किया जा सकता था। आग्नेयास्त्र प्राप्त करने के दो ही साधन हो सकते थे—डकैती के धन से उन्हें खरीदना या पुलिस से छीनना। राजू ने इन दोनों साधनों से ही अस्त्र-शस्त्र एकत्रित किए।

सबसे पहला बड़ा हमला राजू ने रंपा क्षेत्र के चिंतापल्ली पुलिस थाने पर किया। इस अभियान में उसके साथ तीन सौ साथी थे। इस थाने पर किए गए हमले से राजू ने बहुत-सी राइफलें और पिस्तौलें लूट लीं। उसके साथियों के पास अब पुलिस जैसे ही अस्त्र थे। दूसरा हमला उसने कृष्णादेवी पैठ के थाने पर किया। यहाँ से भी उसने बहुत हथियार लूटे। थाने लूटने का उसका क्रम निरंतर आगे बढ़ता रहा।

राजू की इन हरकतों से अंग्रेजी शासन के कान खड़े हो गए। अभी तक उसे मामूली डाकू समझा जाता था। अब शासन को मालूम हो गया कि वह सुसज्जित सेना के साथ अंग्रेजी राज्य को उखाड़ने पर उतारू है। उसे समाप्त करने के लिए

'स्कॉट' और 'आयर' नाम के दो अंग्रेज लेफ्टिनेंट नियुक्त किए गए। इन अफसरों की सेना से २४ सितंबर, १९२२ को राजू का मुकाबला हुआ। दोनों ओर से गोलीबारी हुई। इस मुठभेड़ में स्कॉट और आयर दोनों ही मारे गए। कई सैनिक भी खेत रहे।

अपनी इस सफलता से उत्साहित होकर राजू ने कई इश्तिहार उस क्षेत्र में इस आशय के लगाए कि अंग्रेजों को आंध्रभूमि छोड़कर चले जाना चाहिए। अंग्रेज लोग ऐसे जानेवाले थोड़े ही थे। उन्होंने राजू के विरुद्ध अपना अभियान और तेज कर दिया। उसे पकड़ने या मारनेवाले को दस हजार रुपए का पुरस्कार घोषित किया गया। सारे जंगली क्षेत्र में तार और बेतार सेवाएँ प्रारंभ कर दी गईं। राजू की गतिविधियों पर अंकुश लगाने के लिए लाखों रुपए फूँके गए।

राजू भी इस अभियान का मुँहतोड़ उत्तर दे रहा था। उसके विरुद्ध भेद देने के स्थान पर लोगबाग उसकी सेना में भरती हो रहे थे। राजू ने और कई थानों पर हमला करके उन्हें लूट लिया।

राजू की चालाकी और सूझबूझ का एक दृष्टांत बहुत ही आश्चर्यजनक है। उन दिनों भारत के एक क्रांतिकारी की बड़ी धूम थी। पृथ्वीसिंह आजाद नाम का वह क्रांतिकारी सन् १९१५ की गदर पार्टी का सदस्य था और उसे मृत्युदंड सुनाया जा चुका था। बाद में मृत्युदंड के स्थान पर उसे आजीवन कारावास का दंड देकर अंडमान भेज दिया गया था। अंडमान में पृथ्वीसिंह ने इतना उत्पात मचाया कि जेलर उससे तंग आ गया। जेलर की प्रार्थना पर पृथ्वीसिंह को अंडमान से वापस आंध्र प्रदेश की एक जेल में रखने के लिए ले जाया जा रहा था। पृथ्वीसिंह ने वह हौसला दिखाया कि वह बेड़ियों सहित तेज़ भागती हुई ट्रेन से कूदकर फरार हो गया। कुछ समय पश्चात् वह फिर गिरफ्तार हुआ और आंध्र प्रदेश की जेल में रखा गया।

राजू ने ऐलान कर दिया कि मैं अमुक समय जेल पर हमला करके क्रांतिकारी पृथ्वीसिंह को जेल से आजाद करा दूँगा। राजू की शक्ति और उसके संकल्पों से शासन परिचित था। उसने जेल की सुरक्षा के लिए आसपास के कई थानों से पुलिस बुलवा भेजी और राजू को गिरफ्तार करने या उसे समाप्त कर देने की पूरी योजना बना ली गई। इधर राजू ने अपनी सेना को कई दलों में बाँटकर उन सभी थानों पर एक साथ हमले बोल दिए, जहाँ से पुलिस को हटाकर जेल की सुरक्षा के लिए तैनात किया गया था। इन थानों पर हमले करने से राजू के हाथ हथियारों का बहुत बड़ा जखीरा लगा। उसका काम अब और अधिक तेजी से चल निकला।

अब शासन ने 'असम राइफल्स' नाम की पूरी सेना राजू के विरुद्ध लगा दी। ६ मई, १९२४ को राजू के दल का मुकाबला सुसज्जित असम राइफल्स के साथ हुआ।

दोनों ओर से दनादन गोलियाँ चलीं। असम राइफल्स के भी कुछ जवान खेत रहे; पर अधिक हानि राजू के दल की हुई। उसके बारह साथियों ने युद्ध में वीरगति प्राप्त की। अन्य कई घायल भी हुए। स्वयं राजू घायल हुआ, पर वह वहाँ से बच निकला।

अगले दिन ७ मई, १९२४ को राजू घायल अवस्था में गोदावरी नदी में स्नान कर रहा था कि फौज ने उसे घेर लिया। उस समय राजू के पास सीमित युद्ध सामग्री थी। उसके समाप्त होते ही वह गिरफ्तार कर लिया गया। उस फौज की संख्या भी उस समय अधिक नहीं थी। फौजी दल को भय लगा कि कोतवाली ले जाते समय राजू का दल हमला करके कहीं उसे छुड़ा न ले। इस विचार से फौज के गोर्ली नाम के अफसर ने नदी किनारे राजू को एक वृक्ष से बाँधकर उसे गोलियों से भून डाला। एक महान् क्रांतिकारी को उसकी महानता के अनुरूप ही मृत्यु मिली। क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास में यह घटना बेजोड़ है।

□

★ रानी अवंतीबाई

रानी अवंतीबाई रामगढ़ की रानी थीं। उनके पति विक्रमादित्य सिंह को अंग्रेजों ने पागल घोषित कर दिया था। रानी के पति की मृत्यु के पश्चात् अंग्रेजों ने उनके पुत्र अमानसिंह और शेरसिंह को नाबालिग होने के कारण गद्दी का उत्तराधिकारी नहीं माना और रियासत को 'कोर्ट ऑफ वार्ड्स' घोषित करके वहाँ अपना प्रशासक नियुक्त कर दिया। रानी ने उस प्रशासक को निकाल बाहर किया और अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

रामगढ़ की रानी अवंतीबाई के हरकारे उनका संदेश लेकर आसपास के राज्यों में पहुँच गए। जब उन राज्यों के नरेशों ने रानी के पत्र पढ़े तो उन्हें रानी के संकल्प का परिचय मिला। इन नरेशों को भेजे गए पत्रों के साथ रानी ने कुछ चूड़ियाँ भी भेजी थीं। पत्रों की भाषा थी—

'यदि बंदिनी भारत माता के प्रति आप अपना कुछ कर्तव्य समझते हैं तो अंग्रेजों के विरुद्ध तलवार उठाकर युद्ध में कूद पड़िए, अन्यथा ये चूड़ियाँ पहनकर अपने घरों में छिपे रहिए।'

नारीत्व ने पौरुष को ललकारा था। चूड़ीवाले हाथों ने तलवार धारण करनेवाले हाथों को उकसाया था। एक कोमलांगी ने मूँछवालों को उत्प्रेरित किया था। जिन नरेशों के पास रानी की चूड़ियाँ पहुँची थीं, उनके हाथों में तलवारों की मूठें पहुँच गईं।

रानी अवंतीबाई के आह्वान पर मध्य प्रांत में क्रांति की लहर दौड़ गई। शाहपुर के शासक जगतसिंह ने नारायणगंज पर आक्रमण कर दिया। बहादुरसिंह लोधी ने शहरपुरा का मोरचा सँभाल लिया। सलीमनाबाद में जो अंग्रेजी सेना रहती थी, उसके भारतीय सैनिकों ने विद्रोह कर दिया और पाटन पहुँचकर वे सूबेदार बलदेव तिवारी से जा मिले। स्वयं रानी अवंतीबाई और विजयराघवगढ़ के शासक सूरजप्रसाद के नेतृत्व में नर्मदा नदी के संपूर्ण उत्तरी प्रदेश सशस्त्र विद्रोह के लिए एकत्र हो गए।

रानी अवंतीबाई ने व्यूह रचना के रूप में अपनी सेना के साथ मंडला के अंतर्गत खैरी नामक ग्राम के पास अपना मोरचा जमाया। उनका विचार मंडला पर आक्रमण करने का था। मंडला पर रानी के आक्रमण के पूर्व ही अंग्रेज सेनापति वाडिंगटन रानी के साथ युद्ध करने जा पहुँचा। अंग्रेजी सेना के साथ रानी का यह प्रथम युद्ध था। रानी की तलवार बिजली की तरह चमककर शत्रु सेना का संहार कर रही थी। सेनापति वाडिंगटन ने घोड़े पर सवार होकर रानी अवंतीबाई को घेरा। रानी भी घोड़े पर सवार थीं। उन्होंने अपनी तलवार का एक भरपूर हाथ वाडिंगटन के ऊपर दे मारा। जिस समय रानी ने अंग्रेज सेनापति पर अपना हाथ छोड़ा, उसी समय रानी का घोड़ा एक कदम आगे बढ़ गया। परिणाम यह हुआ कि रानी की तलवार वाडिंगटन के घोड़े की गरदन पर पड़ी। रानी का वार इतना जोरदार था कि वाडिंगटन के घोड़े की गरदन कटकर जमीन पर जा गिरी। अपने घोड़े की कटी हुई गरदन देखकर सेनापति वाडिंगटन नीचे कूद पड़ा और रानी को पीठ दिखाकर अपने सैनिकों की भीड़ में खो गया। रानी की तलवार ने कई सैनिकों को मौत की नींद सुला दिया।

वाडिंगटन को अपनी पराजय बुरी तरह कसक रही थी। उसने पुनः तैयारी की और रानी अवंतीबाई को उनकी राजधानी रामगढ़ में ही जा घेरा। वाडिंगटन की विशाल सेना तथा उसकी सामरिक तैयारी के समाचार पाकर रानी ने रामगढ़ खाली कर दिया और वह देवहारगढ़ की पहाड़ियों पर चली गईं।

अपने आक्रमण के क्रम में सेनापति वाडिंगटन ने पहले विजयराघवगढ़ पर अधिकार किया और उसके पश्चात् उसने पाटन, संग्रामपुर, सलीमनाबाद, नारायणगंज तथा घुघरी के कुछ क्षेत्रों पर भी कब्जा कर लिया। जब वह रामगढ़ पहुँचा तो उसने देखा कि रानी अपनी राजधानी को खाली करके चली गई है। वाडिंगटन ने रामगढ़ में आग लगा दी और रानी की तलाश में चल पड़ा।

रानी अवंतीबाई ने छापामार युद्ध का सहारा लेकर, वाडिंगटन के सैन्य शिविर पर कई आक्रमण करके उसकी सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया। अंग्रेजों की सहायता के लिए उत्तर भारत के कुछ राज्यों और रीवा राज्य की सेनाएँ पहुँच गईं।

रानी अवंतीबाई भी अपने पूरे हौसले के साथ शत्रु सेना के साथ लोहा लेती रहीं।

शत्रु सेना ने देवहारगढ़ की पहाड़ी पर रानी को घेर लिया। रानी भी अपनी तलवार को बिजली की भाँति चमकाकर शत्रु सैनिकों को काट-काटकर बिछाती रहीं। उनके सैनिकों की संख्या बहुत कम रह गई थी। उनके साथ उनका एक विश्वासपात्र साथी उमरावसिंह था। रानी ने उससे कहा—

"भैया उमराव, मुझे लगता है कि शत्रु सेना मुझे जीवित पकड़ना चाहती है। मुझे यही उचित प्रतीत होता है कि शत्रु के अपवित्र हाथों में पड़ने के बजाय मैं स्वयं ही अपनी जीवन लीला समाप्त कर लूँ।"

उमरावसिंह का कथन था—

"रानी बहन, पहले अपने भाई को तलवार के जौहर दिखा लेने दीजिए। मेरे पश्चात् आप जो उचित समझें, करें।"

सचमुच ही उमरावसिंह ने प्रलय रूप धारण कर शत्रु सेना को गाजर-मूली की भाँति काटना प्रारंभ कर दिया। शत्रु सेना को काटते-काटते वह काफी आगे बढ़ चुका था और दूसरी ओर रानी अकेली रह गई थीं। जब रानी ने यह समझ लिया कि वह शत्रु के हाथों पड़ने ही वाली हैं तो वह घोड़े से नीचे कूद पड़ीं और अपनी तलवार अपने पेट में घुसेड़ ली तथा मूर्च्छित होकर पड़ी रहीं। रानी को गिरा हुआ देखकर वाडिंगटन ने युद्ध बंद करने की घोषणा कर दी। रानी के पास पहुँचकर वह उन्हें होश में लाने का प्रयत्न करने लगा। कुछ देर के लिए जब रानी को होश आया तो वाडिंगटन ने उन्हें सलाम करते हुए उनके सहायकों के नाम पूछे। रानी ने इतना ही कहा—

"इस युद्ध के लिए मैं अकेली ही जिम्मेदार हूँ।"

इसके पश्चात् उन्होंने 'हरिओम्' का नाद किया और अपनी आँखें हमेशा के लिए बंद कर लीं। २० मार्च, १८५८ को एक वीरांगना अपने देश की आजादी के लिए अपना बलिदान दे गई।

□

★ अवनीनाथ मुकर्जी

ब्रिटिश शासन ने उसे भयानक क्रांतिकारी की संज्ञा दी थी और उसे गिरफ्तार करने के लिए जासूसों का एक पूरा दल उसके पीछे छोड़ रखा था। उसे जासूसों की जासूसी करने की कला आती थी। वह कई बार अपने लिए तैनात जासूसों के साथ सफर भी कर चुका था; पर उन्हें यह पता ही नहीं चल सका कि जिससे वे बातें कर

रहे हैं, यह वही अवनीनाथ मुकर्जी है, जिसे गिरफ्तार करने के लिए ब्रिटिश हुकूमत बेचैन है।

अवनीनाथ मुकर्जी

मध्य प्रदेश के जबलपुर नगर में ३ जून, १८९१ को राय साहब त्रैलोक्यनाथ मुकर्जी के घर जनमे बालक अवनीनाथ के बचपन में ऐसे लक्षण दिखाई नहीं दे रहे थे कि आगे चलकर वह महान् क्रांतिकारी बनेगा। क्रांति के रास्ते पर उसने उस समय कदम रखा, जबकि वस्त्रोद्योग में स्नातक उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् वह इसी कला के उच्च अध्ययन के लिए जापान और फिर जर्मनी पहुँचा।

जर्मनी की स्वतंत्र जलवायु में भारतीय क्रांति अच्छी तरह पनप रही थी। क्रांति के अखाड़े के कई मल्ल उस समय जर्मनी के बर्लिन नगर में थे। अवनीनाथ उनके संपर्क में आया और उसपर क्रांति का रंग चढ़ गया। भारत माता की आजादी के लिए उसने अपना जीवन समर्पित करने का संकल्प कर लिया। जर्मनी के प्रवासी भारतीय क्रांतिकारियों से संपर्क स्थापित करके और भारत में पहुँचाने के लिए हथियारों का प्रबंध करके अवनीनाथ सन् १९१२ में भारत लौट आया।

प्रसिद्ध क्रांतिकारी राजा महेंद्रप्रताप द्वारा स्थापित वृंदावन के प्रेम महाविद्यालय को अवनीनाथ ने कुछ समय के लिए अपना आश्रयस्थल बनाया। प्राध्यापकी तो केवल बहाना थी, वह कुछ दिन ब्रिटिश जासूसों की आँखों से ओझल रहना चाहता था। उचित अवसर हाथ आया देख वह फिर जापान खिसक गया। उसके मन में वहाँ से भारतीय क्रांतिकारियों के लिए हथियार एकत्रित करने की योजना थी।

जहाज में बैठकर अवनीनाथ जापान से भारत के लिए चला। जिस केबिन में वह यात्रा कर रहा था, उसी केबिन में उसका एक सहयात्री उसका मित्र बनने की इच्छा प्रकट करके तरह-तरह की बातें उससे पूछ रहा था। वैसे तो उसके पास कोई आपत्तिजनक सामग्री थी ही नहीं, पर जापान के कुछ शस्त्र विक्रेताओं के पते एक कागज पर लिखे हुए उसके पास थे। एक दिन उसका सहयात्री जासूस जब स्नानगृह में गया तो अवनी ने वह कागज उसकी शायिका के मोटे गद्दे के नीचे दबा दिया। अब वह बेफिक्री के साथ यात्रा करने लगा।

इन लोगों का जहाज जब सिंगापुर पहुँचा तो वहाँ उसे कुछ संदेहजनक सरगर्मी दिखाई दी। केबिन में दवा छिड़कने के बहाने अवनीनाथ और उसके सहयात्री को बाहर किया गया। उसके सहयात्री की शायिका के गद्दे के नीचे से पते लिखा हुआ वह कागज निकला। अवनीनाथ ने सफाई दी कि उस कागज से मेरा कोई संबंध नहीं है और न वह मेरे पास निकला है। उसकी सफाई नहीं मानी गई। इसी बीच समुद्री तार करके जापान से यह पुष्टि कर ली गई कि अवनीनाथ उन ठिकानों पर हथियारों की खरीद के लिए पहुँचा था। बस, फिर क्या था, उसे सिंगापुर में गिरफ्तार करके भारत लाया गया।

इस रहस्य का कोई हल लोगों के हाथ नहीं लग सका कि गिरफ्तारी की दशा में अवनीनाथ पुलिस के चंगुल से कैसे निकल भागा। पुलिस उसे भारत में खोज रही थी, पर वह हॉलैंड जा पहुँचा।

हॉलैंड पहुँचकर अवनीनाथ मुकर्जी 'द्वितीय कम्युनिस्ट अंतरराष्ट्रीय' में भारतीय प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुआ। हॉलैंड में ही उसने सन् १९२० में कुमारी रोसा फिटिंगफ के साथ शादी की।

१९२२ में अवनीनाथ हॉलैंड से बर्लिन जा पहुँचा और अपने पुराने क्रांतिकारी साथियों के साथ भारत की आजादी की योजनाओं में लीन हो गया। उस समय बर्लिन में भारतीय क्रांतिकारियों में से सुरेंद्र कर, भूपेंद्रनाथ दत्त (स्वामी विवेकानंद के भाई) और मोहम्मद बरकतुल्ला प्रमुख थे।

बर्लिन स्थित भारतीय क्रांतिकारियों ने यह आवश्यक समझा कि उनमें से कोई व्यक्ति भारत पहुँचकर विभिन्न प्रांतों में गुप्त संगठनों द्वारा विद्रोह की भूमिका बनाए। इस कार्य के लिए अवनीनाथ मुकर्जी ने स्वयं को प्रस्तुत किया। अपना हुलिया बदलने में उसे इतना कमाल हासिल था कि उसके साथी भी उसे नहीं पहचान सकते थे। हुलिया के साथ-साथ वह अपनी आवाज भी बदल लेता था।

गोपनीय ढंग से अवनीनाथ जर्मनी से भारत पहुँचा और उसने मद्रास, गया, कलकत्ता व ढाका नगरों में कुछ क्रांति संरचना की। अपना काम पूरा करके वह सन् १९२४ में फिर यूरोप के लिए प्रस्थित हो गया। रूस के मास्को नगर में रहकर अवनीनाथ ने भारत के संबंध में कई पुस्तकें लिखीं और आजादी के लिए भारत का दावा प्रस्तुत किया।

रूसी प्रवास में ही २८ अक्तूबर सन् १९३७ को अवनीनाथ मुकर्जी की मृत्यु हो गई। भारत की आजादी का चिंतन करते हुए भारत के एक सपूत ने अपने जीवन की अंतिम साँसें गिनीं।

□

★ अशोक नंदी

अशोक नंदी

कलकत्ता के प्रसिद्ध वकील चित्तरंजन दास ने समस्त भारत में अपनी कानूनी प्रतिभा के कारण ख्याति अर्जित कर ली थी। बड़े-बड़े अंग्रेज बैरिस्टर भी किसी मुकदमे में उनके सहयोगी के रूप में काम करने को अपना सौभाग्य समझते थे और वे लालायित रहते थे कि श्री दास उन्हें अपना सहयोगी बना लें। भला अच्छे-से-अच्छे वकील भी क्या करें, जब अदालत इस बात पर तुल जाए कि वह कोई भी कानूनी व्याख्या न मानकर अपनी धाँधली चलाएगी। ठीक यही बात उस समय चरितार्थ हुई, जब बाबू चित्तरंजन दास 'अलीपुर बम केस' के एक युवक अभियुक्त अशोक नंदी की जमानत मंजूर न करा सके; जबकि वह जमानत का हकदार था।

अशोक नंदी उन्नीस वर्षीय क्रांतिकारी था। देखने में भी वह दुबला-पतला और सुकुमार था; पर ब्रिटिश हुकूमत उसे भयंकर क्रांतिकारी समझ रही थी। न ही उसे मुक्त करने को तैयार थी और न ही वह उसे जमानत पर छोड़ रही थी। अशोक धुन का पक्का क्रांतिकारी था। वह अंग्रेज सरकार से लड़ने के लिए बम बनाता था। वह बम के कारखाने से ही पकड़ा गया था। बम का यह कारखाना मुरारीपुकुर बगीचे में स्थित मानिकतल्लावाला कारखाना न होकर उसीका एक अन्य सहायक कारखाना था। यही कारण था कि पकड़े जाने पर अशोक नंदी पर 'अलीपुर बम केस' के अंतर्गत ही मुकदमा चलाया गया था। उसपर दो मुकदमे चले थे। एक मुकदमा विस्फोटक पदार्थों से संबंधित था और दूसरा ब्रिटिश शासन के विरुद्ध युद्ध करने का था। पहले मुकदमे में अशोक निर्दोष घोषित कर दिया गया था। दूसरे मुकदमे में उसे अंडमान जेल के सात वर्ष के निर्वासन का दंड मिला था। विचाराधीन कैदी की भाँति जेल में रहते हुए अशोक की जो दुर्दशा वहाँ हुई थी, उसके फलस्वरूप उसे जोड़ों के टी.बी. की बीमारी हो गई थी और उसकी बीमारी काफी आगे बढ़ गई थी। उसकी ओर से पैरवी करते हुए बाबू चित्तरंजन दास ने तर्क प्रस्तुत

करते हुए कहा था—

'अभियुक्त एक मुकदमे में साफ बरी हो चुका है और दूसरे मुकदमे के निर्णय की अपील उसने हाई कोर्ट में प्रस्तुत कर दी है। ऐसी स्थिति में जमानत पर रिहा किया जाना उसका हक है, विशेष रूप से जबकि वह एक घातक बीमारी का शिकार है और सरकारी डॉक्टर ने भी उसे 'गंभीर मरीज' का प्रमाण-पत्र प्रदान किया है।'

तर्क न्यायसंगत था और अशोक नंदी का हक था कि वह जमानत पर छोड़ दिया जाए; पर वह नहीं छोड़ा गया। अदालत ने जमानत की अर्जी को अग्राह्य करते हुए तर्क दिया—

'माना कि अभियुक्त अशोक नंदी बीमार है, पर उसे दोमंजिले अस्पताल के हवादार कमरे में रखा गया है और इससे अच्छी व्यवस्था उसे अपने घर पर नहीं मिल सकती, अत: उसकी जमानत की अर्जी मंजूर नहीं की जा सकती।'

जहाँ तर्क नहीं चलता, वहाँ धाँधली चलती है। अशोक नंदी का पिता न्याय के दरवाजे खटखटाकर रह गया, पर उसे न्याय नहीं मिला। उसके वकील बाबू चित्तरंजन दास ने सुझाया—

''अब एक ही तरीका रह गया है और वह यह कि जाकर लेफ्टिनेंट गवर्नर महोदय की सेवा में प्रार्थना-अरदास करो, शायद वे न्यायाधीश महोदय की अपेक्षा नरम निकलें। उनका हृदय पसीज जाए और तुम्हारे पुत्र की जमानत मंजूर हो जाए।''

डूबते को तिनके का सहारा। अशोक के पिता ने ऐसा ही किया। युक्ति सटीक बैठी। बंगाल के गवर्नर महोदय के आदेश से अशोक नंदी की जमानत मंजूर हो गई।

अपील के फलस्वरूप कलकत्ता की उच्च अदालत ने अशोक के मामले में अपना निर्णय सुना दिया। उसने अपील का फैसला २६ नवंबर, १९०९ को सुनाते हुए कहा कि 'अशोक नंदी निर्दोष घोषित किया जाकर मुक्त किया जाता है।'

मुक्ति का निर्णय अशोक नंदी के पास पहुँचे, उसके पहले ही वह इस दुनिया से मुक्त होकर दूसरी दुनिया में पहुँच चुका था। उसके महाप्रयाण के लिए क्या उसके घर की असुविधाएँ जिम्मेदार थीं या वह विलंब, जो उसकी जमानत मंजूर होने में हुआ? जो कुछ भी हो, लोग कहते हैं कि उसके पिता को अपने पुत्र की मृत्यु से संतोष प्राप्त हुआ; क्योंकि वह सात वर्षों तक कालेपानी की यातनाओं से बच गया। क्या इसे सत्य माना जा सकता है?

□

★ मौलवी अहमदुल्ला

वहाबी आंदोलन वैसे तो एक धार्मिक आंदोलन था, लेकिन इस आंदोलन ने राजनीतिक स्वरूप ग्रहण कर लिया था और वह भारत से अंग्रेजी शासन को उखाड़ने की दिशा में अग्रसर हो चला था। वहाबी आंदोलन का प्रादुर्भाव अरब में अकुल वहाब नामक व्यक्ति ने किया था। भारत में वहाबी आंदोलन के नेताओं में रायबरेली के सैयद अहमदशाह और दिल्ली के शाह वली उल्ला थे। सैयद अहमदशाह के पश्चात् बिहार के मौलवी अहमदुल्ला इस संप्रदाय के नेता बने। वे पटना जिले के सादिकपुर के रहनेवाले थे।

मौलवी अहमदुल्ला के नेतृत्व में वहाबी आंदोलन ने स्पष्ट रूप से अंग्रेज विरोधी रुख धारण कर लिया। भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध कोई सेना खड़ी नहीं की जा सकती थी, इस कारण मौलवी अहमदुल्ला ने मुजाहिदीनों की एक फौज सीमा पार इलाके के सित्ताना स्थान पर खड़ी की। उस सेना के लिए वे धन, जन तथा हथियार भारत से ही भेजते थे।

यद्यपि अंग्रेज शासक मौलवी अहमदुल्ला की गतिविधियों की ओर से शंकित थे, पर उनके प्रभाव को देखते हुए वे उनके विरुद्ध कोई कदम नहीं उठा सकते थे। जब सन् १८५७ में अंग्रेजों के विरुद्ध पटना में भी विद्रोह भड़क उठा तो वहाँ के कमिश्नर टेलर ने मौलवी साहब को शांति स्थापना के उपायों पर चर्चा के लिए आमंत्रित किया और वहीं उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। पटना के कमिश्नर टेलर के स्थानांतरण के पश्चात् ही मौलवी साहब को मुक्त किया गया। मुक्त होने के पश्चात् मौलवी अहमदुल्ला ने अंग्रेजों के विरुद्ध बाकायदा युद्ध का संचालन प्रारंभ कर दिया। अंग्रेजों के विरुद्ध मुजाहिदीनों ने तीन स्थानों पर लड़ाइयाँ लड़ीं। पहली लड़ाई सन् १८५८ में शाहीनूनलबीं स्थान पर हुई। दूसरी लड़ाई ३ सितंबर, १८६३ को और तीसरी लड़ाई नवंबर १८६३ में ही कुटलागढ़ की पहाड़ी पर हुई। जब अंग्रेज लड़ाइयों में नहीं जीत सके तो उन्होंने रिश्वत का सहारा लेकर अपना काम बनाया।

सन् १८६५ में मौलवी अहमदुल्ला को बड़ी चालाकी के साथ गिरफ्तार कर लिया गया और उनपर मुकदमा चलाया गया। बहुत लोभ-लालच देकर ही शासन उनके विरुद्ध गवाही देनेवालों को तैयार कर सका। इस मुकदमे में सेशन अदालत ने तो मौलवी साहब को प्राणदंड की सजा सुनाई, लेकिन हाई कोर्ट मे अपील करने पर वह आजीवन कालेपानी की सजा में परिवर्तित हो गई। मौलवी साहब को

कालेपानी की काल कोठरियों में डाल दिया गया।

यद्यपि मौलवी अहमदुल्ला कालेपानी की काल कोठरी में बंद थे, लेकिन वे वहाँ से भी भारत में चलनेवाले वहाबी आंदोलन को निर्देशित करते रहे। वे सीमा पार के गाँव सित्ताना में मुजाहिदीनों की फौज को भी निर्देशित करते रहे। उन्हींके निर्देश पर बंगाल के चीफ जस्टिस पेस्टन नार्मन की हत्या अबदुल्ला नाम के एक वहाबी ने उस समय कर दी, जब वे सीढ़ियों से नीचे उतर रहे थे। इतना ही नहीं, भारत के वाइसराय लॉर्ड मेयो जब सरकारी दौरे पर अंडमान गए तो मौलवी अहमदुल्ला की योजना के अनुसार ही ८ फरवरी, १८७२ को एक वहाबी पठान शेरअली ने लॉर्ड मेयो की उस समय हत्या कर दी, जब वे मोटर बोट पर चढ़ रहे थे।

मौलवी अहमदुल्ला ने पूरे पच्चीस वर्ष तक अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष का संचालन किया। स्वाधीन भारत उस महान् देशभक्त का ऋणी है।

□

★ इंदुभूषण रे

इंदुभूषण रे

अंडमान की सैलुलर जेल में २९ अप्रैल, १९१२ को खतरे की घंटी घनघना उठी। जेल के अहाते में भाग-दौड़ मच गई। जिन कैदियों को बाहर निकाला जा रहा था, उन्हें अपनी-अपनी कोठरियों में तत्काल बंद कर दिया गया। जेल के कर्मचारी और अधिकारी नियंत्रण-कक्ष की ओर यह जानने के लिए भागने लगे कि घटना क्या है और कहाँ घटित हुई है।

भाग-दौड़ के परिणामस्वरूप लोगों को पता चला कि इंदुभूषण नाम के एक क्रांतिकारी कैदी ने आत्महत्या कर ली है और उसका शव एक रस्सी के सहारे अपनी कोठरी में लटक रहा है। अपने प्रातःकालीन परिभ्रमण के क्रम में जेलरक्षक ने उसे लटकते देखा और खतरे की घंटी बजा दी। घटना की सूचना तुरंत जेलर को दी गई। जेलर एक दुष्ट प्रकृति का अंग्रेज था। वह घटनास्थल पर पहुँचा। इंदुभूषण के लटकते हुए शव की ओर उसने तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से देखा और एक गाली बकी। कार्यवाही को आगे बढ़ाने के लिए उसने जेल अधीक्षक के पास घटना की सूचना भिजवाई। जेल के डॉक्टर को बुलाने के लिए उसने संदेश भेजा। डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट को भी बुलवाया गया। बड़ी मुश्किल से जब यह मजमा वहाँ एकत्र हुआ तो लटकते हुए शव को उतारा गया। वह लकड़ी की तरह सख्त हो गया था। यद्यपि इस घटना में मुख्य अपराध जेलर का था; पर अपनी जान बचाने के लिए उसने एक मनगढ़ंत बयान दे दिया, जो सत्य मान लिया गया। जेलर का बयान था—

'अभियुक्त इंदुभूषण रे के व्यवहार से असंतुष्ट होकर उसके साथी कैदियों ने उसे मार डालने की धमकी दी थी। इस धमकी से अभियुक्त का दिमाग विचलित हो गया और अपने साथियों द्वारा निर्ममता से वध किए जाने की अपेक्षा उसने आत्महत्या द्वारा मृत्यु का सरल रास्ता अपना लिया।'

जेलर का यह बयान एकदम असत्य और दुष्टतापूर्ण था। सत्य की खोज करने के लिए इंदुभूषण की जीवन घटनाओं पर दृष्टिपात करना होगा—

इंदुभूषण एक सामान्य बंगाली परिवार का बालक था। उस समय उसकी उम्र केवल अठारह वर्ष की थी। उसके माता-पिता खुलना में रहते थे। प्रारंभ से ही इंदुभूषण आत्मलीन प्रवृत्ति का बालक था। इस कारण उसके माता-पिता को ऐसा लगा जैसे वह वैराग्य की ओर झुक रहा है। पिता ने अपने पुत्र के पैरों में गृहस्थी की बेड़ियाँ डाल देनी चाहीं।

उन्होंने उसे शादी के लिए अत्यधिक विवश किया। शादी से बचने के लिए इंदुभूषण ने गृह-त्याग कर दिया। उसका विचार था कि वह संन्यासी बनकर देश का भ्रमण करके सत्य की खोज करेगा। जब वह कलकत्ता पहुँचा तो उसके एक साथी ने उसे क्रांतिकारी युवक वारींद्रकुमार घोष से मिला दिया। इंदुभूषण वारींद्र के क्रांतिकारी विचारों से प्रभावित हुआ और वह भी उस दल का एक सदस्य बन गया। वह उन लोगों के साथ ३२, मुरारीपुकुर रोड स्थित मानिकतल्ला में रहने लगा। वहाँ उसने 'आनंदमठ' जैसा क्रांति साहित्य पढ़ा और 'गीता' का भी अध्ययन किया। उत्सर्ग की भावना उसके मन में समा गई। दल में वह एक साहसी व्यक्ति माना जाने लगा, जो बलिदान की भावना से उद्यत था। उसे चंद्रनगर के [illegible] बम-प्रहार का काम सौंपा गया।

वारींद्रकुमार घोष और अपने दल के कुछ सदस्यों के साथ इंदुभूषण रे २ मई, १९०८ को गिरफ्तार कर लिया गया। 'अलीपुर बम कांड' में सम्मिलित किया जाकर, अंडमान में दस वर्ष का कारावास का दंड दिया गया।

दिसंबर १९०९ में इंदुभूषण अंडमान पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही उसके जीवन का दुःखांत नाटक प्रारंभ हो गया। रहने के लिए तो उसे सैलुलर जेल की ही कोठरी दी गई, पर काम के लिए उसे जेल के बाहर ले जाया जाता था। जेल अधिकारियों का यह व्यवहार उसे असहनीय और अपमानजनक लगा। कई मील पैदल चलना भी उसे भारी पड़ता था। वह बीमार पड़ गया। उसका इलाज भी जेल के अस्पताल में न कराकर बाहर के अस्पताल में कराया गया, जहाँ उपचार के स्थान पर उसे अपमान ही अधिक मिला। उसकी बीमारी को बहाना समझकर उसके ऊपर और अधिक काम लाद दिया गया। उसकी दशा इतनी अधिक बिगड़ गई कि वह

चलने-फिरने योग्य भी नहीं रहा। किसी प्रकार इंदुभूषण ने अपनी फरियाद जेल के अधिकारियों तक पहुँचाई और उनसे प्रार्थना की कि उसे जेल के अंदर ही काम पर लगाया जाए। इस प्रार्थना का उलटा ही परिणाम निकला। हाथों में हथकड़ी और पैरों में बेड़ियाँ डालकर उसे चलने के लिए विवश किया गया, और उसके सिर पर बोझा भी लादा गया। इस दशा में उसकी कोठरी में पहुँचने पर उसे फिर बाहर का ही काम दिया गया। इंदुभूषण सत्याग्रह कर बैठा और उसने काम करने से इनकार कर दिया।

जेल अधिकारियों ने तंग आकर इंदुभूषण को जेल के अंदर काम करने की सुविधा तो दे दी, पर बदले की भावना से उसके ऊपर काम इतना लाद दिया, जिसका बोझ वह सहन नहीं कर सका। जहरीली झाड़ियों को कूट-कूटकर रस्सी बनाने का काम उसे दिया गया। झाड़ियों को कूटने और उनका जहरीला रस लगने के कारण उसकी दोनों हथेलियों में फफोले पड़ गए। फफोले फूट-फूटकर रिसने लगे और उसे असह्य पीड़ा होने लगी। वह खाना भी नहीं खा सकता था। जब उसके रिसते हुए घावों से नमक-मिर्च युक्त दाल के पानी का स्पर्श होता था तो उसे बिच्छू का डंक लगने जैसी पीड़ा का अनुभव होता था। उसने खाना-पीना भी छोड़ दिया।

इंदुभूषण ने जेल अधिकारियों के समक्ष फिर गुहार मचाई और कहा कि मुझे झाड़ियाँ कूटकर रस्सी बनाने के काम के अतिरिक्त कोई अन्य काम दे दिया जाए। जेलर तो उससे चिढ़ा बैठा ही था, उसने भद्दी गालियों की एक बौछार उसके ऊपर छोड़ी और हाथों से कोल्हू खींचकर तेल निकालने का काम उसे दे दिया। इंदुभूषण पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। फूटे हुए फफोलों से बने, रिसते हुए जख्मों-भरे हाथों से उसे कोल्हू की धुरी खींचनी पड़ती थी। तनिक भी रुकने पर या असावधानी करने पर बेंतों की मार पड़ती थी।

इंदुभूषण ने प्रार्थना की कि उसे कुछ दिन जेल के अस्पताल में रखा जाए, जहाँ उसके हाथों के जख्म ठीक हो सकें। जख्म ठीक हो जाने पर उसने हर तरह के काम करने का वादा किया। उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की गई। उसे दंड देने के लिए उसके द्वारा निकाले जानेवाले तेल की मात्रा बढ़ा दी गई। निरीक्षण के समय जेलर उसे धमकी भी दे गया कि कल यदि तुमने पूरा तेल नहीं निकाला तो तुमपर कोड़े लगाने के लिए जल्लाद बुलाया जाएगा।

इस अपमानजनक और कष्टप्रद जीवन से छुटकारा पाने के लिए इंदुभूषण के सामने एक ही मार्ग था और वह था आत्महत्या का। जेल में आत्महत्या के साधन भी नहीं मिलते। उसे अपनी कोठरी में एक ऐसा हुक तो दिखाई दिया,

जिसके सहारे रस्सी लटकाई जा सकती थी, पर प्रश्न यह था कि रस्सी कहाँ से आए? रात के समय इंदुभूषण ने अपने पहनने के कपड़े—कुरता-पायजामा—फाड़कर और उन्हें बटकर कपड़े की रस्सी तैयार कर ली। इस प्रकार तैयार की गई रस्सी के फंदे से लटककर उसने अपनी इहलीला समाप्त कर ली। तुर्रा यह कि जेलर का ही बयान सही माना गया कि इंदुभूषण ने साथियों द्वारा हत्या किए जाने के भय से आत्महत्या की है।

आजादी की वेदी पर एक और कोमल फूल समर्पित हो गया।

समय के न जाने कितने अंतराल के पश्चात् इंदुभूषण की कष्ट-भरी कहानी देशवासियों के कानों तक पहुँची।

□

★ उदमीराम

दिल्ली से सोनीपत जानेवाली सड़क के मोड़ पर कुछ नौजवान इस प्रतीक्षा में खड़े थे कि यदि उधर से अंग्रेज लोग निकलें तो उनका शिकार किया जाए। वे १८५७ की क्रांति के दिन थे और अंग्रेज लोग अपने परिवारों के साथ जहाँ सुरक्षित स्थान मिलता, वहाँ जाकर शरण लेते थे। सोनीपत में उन लोगों का कैंप लगा हुआ था और बहुधा ही इक्के-दुक्के अंग्रेज परिवार ऊँटगाड़ियों में सवार होकर दिल्ली से सोनीपत जाया करते थे।

इसी सड़क से थोड़ा हटकर लिबासपुर नाम का एक छोटा-सा गाँव था। इस गाँव में जाट लोग रहते थे। उदमीराम इसी गाँव का नौजवान था। वह देखने में सुंदर और शरीर से पुष्ट था। उसने अपने ही जैसे कसरती नौजवानों का एक दल बना रखा था और अंग्रेजों से बदला लेने के लिए जो खेल उन्होंने रचा था, वह यही था कि इक्के-दुक्के अंग्रेजों को पकड़-पकड़कर वे एकांत में ले जाकर उन्हें समाप्त कर दिया करते थे।

एक दिन जब उदमीराम और उसके साथी शिकार की प्रतीक्षा में थे तो एक ऊँटगाड़ी उन्हें आती दिखाई दी। उन्होंने गाड़ी को रोका। उसमें एक अंग्रेज दंपती था। उन लोगों ने अंग्रेज को तो एकांत में ले जाकर समाप्त कर दिया, पर भारतीय आदर्श के अनुसार उस अंग्रेज महिला पर प्रहार नहीं किया। उस अंग्रेज महिला को उन्होंने लिबासपुर गाँव में ले जाकर एक घर के अंदर बंद कर दिया और उसकी देखरेख के लिए एक ब्राह्मणी बाई को नियुक्त कर दिया। अंग्रेज महिला को गाँव में रखने का समाचार इधर-उधर फैलने लगा। पास के ही गाँव राठधना के एक निवासी सीताराम को जब इस घटना का पता चला तो वह युक्ति लगाकर लिबासपुर के उस घर तक पहुँच गया, जिसमें वह अंग्रेज महिला रखी गई थी। अंग्रेज महिला ने उस ब्राह्मणी बाई और सीताराम से कहा कि यदि वे उसे सोनीपत के कैंप तक पहुँचा दें तो वह उन लोगों को बहुत से पुरस्कार दिलाएगी। रात होने पर उन लोगों

ने एक बैलगाड़ी का प्रबंध करके उस अंग्रेज महिला को सोनीपत कैंप पहुँचा दिया।

वे दिन तो अंग्रेजों की पराजय के दिन थे। जब उनका पलड़ा भारी हुआ और दिल्ली तथा आसपास के क्षेत्र पर उनका पुन: अधिकार हो गया तो उस अंग्रेज महिला की सूचना पर अंग्रेजी सेना के एक दल ने लिबासपुर ग्राम को घेर लिया। उदमीराम और उसके साथियों ने सोचा कि समर्पण करके अंग्रेजों के हाथों फाँसी चढ़ने के स्थान पर यह अच्छा होगा कि हम लोग युद्ध करते-करते वीरगति प्राप्त करें। बात पक्की हो गई। उन लोगों के पास बंदूकें आदि तो थीं ही नहीं—सभी लोग ग्रामीण हथियार; जैसे—बल्लम, भाले, फरसे, कुल्हाड़ियाँ और गँड़ासे ले-लेकर अंग्रेजी सेना पर टूट पड़े। जी-जान से युद्ध किया। कुछ सैनिकों को मार गिराने में उन्होंने सफलता भी प्राप्त की; पर ग्रामीण हथियारों से वे सुसज्जित अंग्रेजी सेना के सामने कब तक टिकते! उनमें से भी कुछ लोग मारे गए और शेष गिरफ्तार कर लिये गए।

अंग्रेज सैनिकों ने पूरे गाँव को लूटा और बलपूर्वक महिलाओं के गहने उतारे। कई गाड़ियों में भरकर वे लूट का माल ले गए। अंग्रेजों के भक्त, देशद्रोही सीताराम ने अपराधियों को पहचानने की भूमिका निभाई।

जिन व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया था, उन्हें राई स्थान पर अंग्रेजों के कैंप में लाया गया और कुछ लोगों को पत्थर के नीचे तथा भारी-भारी कोल्हुओं के नीचे दबा-दबाकर मार डाला गया। उदमीराम को एक पीपल के वृक्ष से बाँध दिया गया। जब तक वह जीवित रहा, उसे खाने-पीने को कुछ भी नहीं दिया गया। पैंतीस दिन तड़प-तड़पकर वीर उदमीराम के प्राण निकले।

अंग्रेजों की नृशंसता और एक वीर के बलिदान का यह उदाहरण बेजोड़ है। □

★ उपेंद्रनाथ बंद्योपाध्याय

कलकत्ता की अदालत में क्रांतिकारी उपेंद्रनाथ बंद्योपाध्याय के बयान चल रहे थे—"मेरा नाम उपेंद्रनाथ बंद्योपाध्याय और मेरे पिताजी का नाम रामनाथ बनर्जी है। मैं सन् १८७९ की ६ जून को चंदननगर में पैदा हुआ हूँ और इस समय कलकत्ता में रहता हूँ। मैं जब तक कलकत्ता में रहता हूँ, लड़कों को अर्थशास्त्र और राजनीतिशास्त्र की शिक्षा दिया करता हूँ। मैं उन्हें यह भी बताता हूँ कि देश की स्वतंत्रता कैसे प्राप्त की जा सकती है और उसकी दशा कैसे सुधारी जा सकती है।"

प्रश्न—"स्वतंत्रता कैसे मिलेगी, क्या आप इस बात की भी शिक्षा देते हैं?"

उत्तर—"जी हाँ, मैं इसकी भी शिक्षा देता हूँ।"

प्रश्न—"स्वतंत्रता-प्राप्ति के उपाय आप क्या बताते हैं?"

उत्तर—"मैं यही कहता हूँ कि अंग्रेजों से युद्ध करके ही हम स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं। मैं यह भी बताता हूँ कि देश-भर में हमें गुप्त समितियाँ स्थापित करनी होंगी, हथियार जुटाने होंगे और अवसर मिलते ही विद्रोह का बिगुल बजाकर युद्ध की घोषणा करनी होगी।"

प्रश्न—"यह सब स्वीकार करते हुए क्या आप अपने दल का कुछ बुरा नहीं कर रहे हैं?"

उत्तर—"नहीं, मैं दल का भला ही कर रहा हूँ। जो बातें मैं बता रहा हूँ, वे तो आपको ज्ञात हैं ही। मेरी स्वीकारोक्ति से निर्दोष लोग कष्ट पाने से बच जाएँगे। यदि मैं यह सब स्वीकार नहीं करूँ तो न जाने आप कितने-कितने निर्दोष लोगों को गिरफ्तार करेंगे और उन्हें न जाने कितनी-कितनी तरह की यातनाएँ देंगे!"

अदालत ने उपेंद्रनाथ की बात सुनी, समझी और उसकी छानबीन की। कुछ दिन न्याय का नाटक चला और अंत में सन् १९०७ में 'अलीपुर बम केस' में आजन्म द्वीपांतरवास का दंड सुना दिया गया।

उपेंद्रनाथ को समाजसेवा और राजनीतिक जीवन की प्रेरणा स्वामी विवेकानंद से मिली। उन्होंने स्वामीजी का साहित्य पढ़ा था और एक बार स्वामीजी से उन्होंने भेंट भी की थी। विचारों का जो आदान-प्रदान दोनों के बीच हुआ था, वह इस प्रकार है—

उपेंद्र—"स्वामीजी! मैं यह तय नहीं कर पा रहा हूँ कि राष्ट्र की सेवा किस प्रकार करूँ! आप ही कृपा करके मुझे राष्ट्रसेवा का कोई मार्ग सुझाइए।"

स्वामीजी—"राष्ट्रसेवा का संकल्प भी राष्ट्रसेवा है। राष्ट्रसेवा के लिए साधनसंपन्न होना सबसे बड़ी आवश्यकता है। साधनों के अंतर्गत बाह्य उपकरण भी आते हैं और शारीरिक तथा आत्मिक बल भी।"

उपेंद्र—"बल-संवर्द्धन की बात तो आपने ठीक कही है, पर क्या बल-प्रयोग अनुचित नहीं माना जाएगा?"

स्वामीजी—"सोद्देश्य के लिए बल-प्रयोग अनुचित नहीं होता। राष्ट्र की मुक्ति के प्रयास सोद्देश्य के अंतर्गत आते हैं।"

उपेंद्र—"राष्ट्र की मुक्ति के लिए आप हम नौजवानों को क्या संदेश देना चाहेंगे?"

स्वामीजी—''नौजवानों से मेरा तो यही कहना है कि वे उपाधियाँ जुटाने के स्थान पर शक्ति का अर्जन करें और कार्यक्षेत्र में कूद पड़ें। नौजवानों को चाहिए कि वे वादों और विवादों को छोड़कर, भारत माता को ईश्वर मानकर उसकी पूजा करें। उन्हें काम करते जाना है, फल तो अंततोगत्वा मिलेगा ही।''

उपेंद्र के लिए स्वामी विवेकानंद का यह प्रेरणा मंत्र पर्याप्त था। वह कर्म में जुट गया। चंद्रनगर के एक विद्यालय में वह अध्यापक का कार्य करने लगा और युवा विद्यार्थियों के दिलों में क्रांति व विद्रोह का बीज बोने लगा। उपेंद्रनाथ ने देशाटन भी किया। वह जहाँ भी जाता, युवकों में उग्र राष्ट्रीय चेतना भरने का प्रयत्न करता और उसकी वाणी का प्रभाव भी पड़ता था। कुछ दिन पश्चात् अध्यापन का कार्य छोड़कर उपेंद्र कलकत्ता जा पहुँचा। वहाँ श्रीअरविंद के पत्र 'वंदेमातरम्' का संपादन कार्य किया। वारींद्रकुमार घोष के पत्र 'युगांतर' का संपादन-भार भी उसने कुछ समय तक सँभाला। उसकी लेखनी में बल था। अब वह क्रांतिकारी दल का एक नियमित सदस्य था।

कलकत्ता के मानिकतल्ला में अरविंद घोष का पैतृक मकान था। वही क्रांतिकारियों का अड्डा बना। अपने उस जीवन की एक झलक उपेंद्रनाथ के इन शब्दों में मिलती है—

'तब वहाँ चार-पाँच से अधिक लड़के नहीं थे। सभी लड़के अपना घर-बार छोड़कर आए थे। फिर भी उन लड़कों को कुछ मिले या न मिले, दोनों समय मुट्ठी-भर भात तो मिलना ही चाहिए। हम लोगों के खाने में ज्यादा खर्च भी नहीं होता था। दाल में ही दो-चार आलू डालकर सब्जी की कमी पूरी कर ली जाती थी। सबसे बड़ी सुविधा यह थी कि वारींद्र उस समय ब्रह्मचारी थे और मछली या प्याज का छिलका तक बगीचे में घुस नहीं सकता था। मिर्च और मसाले खाने की मनाही थी।'

यह जीवन था उपेंद्र और उनके क्रांतिकारी साथियों का। देश की मुक्ति के लिए वे त्याग और तपस्या का पथ अपनाए हुए थे।

अपने दल के साथ उपेंद्र ने क्रांति के क्षेत्र में बहुत सक्रिय योगदान दिया। आखिर एक दिन पुलिस के शिकंजे में उसे फँसना ही पड़ा। 'अलीपुर बम केस' के नाम से फिर न्याय का नाटक रचा गया, जिसमें बयान देते हुए उपेंद्र ने स्पष्ट स्वीकारोक्ति की। फलस्वरूप आजीवन द्वीपांतरवास का दंड उपेंद्र को प्राप्त हुआ। बारह वर्ष कालेपानी का द्वीपांतरवास भुगतने के पश्चात् फरवरी १९२० में छूटकर उपेंद्र अपने घर पहुँचा। देश के लिए उसने जो सेवाएँ कीं, वे वर्णनातीत हैं।

उपेंद्र की लेखनी ने देश को प्रेरक और स्थायी साहित्य दिया है।

□

★ उल्लासकर दत्त ★ जितेंद्रनाथ राय

उल्लासकर दत्त

अलीपुर बम केस के एक क्रांतिकारी अभियुक्त उल्लासकर दत्त का मुकदमा सेशन जज मि. सी.पी. बीचक्राफ्ट की अदालत में चल रहा था। उस दिन उल्लासकर दत्त ने अपना संक्षिप्त परिचयात्मक बयान दिया और सरकारी वकील मि. नॉर्टन ने प्रश्नोत्तर के माध्यम से उससे कुछ जानकारी प्राप्त की। दत्त का बयान था—

"मेरा नाम उल्लासकर दत्त है। मेरे पिता का नाम द्विजदास दत्त है। मैं जाति का वैद्य हूँ और हमारे यहाँ गायें पालने का व्यवसाय होता है। मेरा निवास-स्थान ब्राह्मण थाने के अंतर्गत कालीकच्छ नाम का एक ग्राम है। मेरा वर्तमान निवास हावड़ा जिले का शिवपुर ग्राम है।"

प्रश्न—"आप क्रांतिकारी दल में किस सूत्र से सम्मिलित हुए हैं?"

उत्तर—"मैंने 'युगांतर' पत्र में पढ़ा था कि एक गुप्त समिति के संगठन का आयोजन चल रहा है। उसे पढ़कर मैंने वारींद्र घोष का पता लगाया और उनके सूत्र से मैं दल में सम्मिलित हो गया।"

प्रश्न—"दल में सम्मिलित होने से पहले आप क्या काम करते थे?"

उत्तर—"दल में सम्मिलित होने से पहले मैं विस्फोटक पदार्थों के निर्माण के प्रयोग किया करता था। चंद्रनगर में जो बम फेंका गया था, मैं उस समय घटना-स्थल पर उपस्थित था। खड़गपुर की बम विस्फोट की घटना के समय मैं नहीं था। वहाँ वारींद्र, विभूति और प्रफुल्ल चाकी गए थे। वे अपने साथ एक 'माइन' ले गए थे।"

प्रश्न—"वह 'माइन' किसने बनाया था?"

उत्तर—"वह मैंने बनाया था।"

प्रश्न—"आपने वह 'माइन' कहाँ बनाया था?"

उत्तर—"मैंने वह 'माइन' गोआबगान इलाके के एक कमरे में बनाया था। वह मकान हमने किराए पर लिया था। गली का नाम मुझे ठीक तरह से याद नहीं है।"

प्रश्न—''आपका बनाया हुआ 'माइन' किस प्रकार का था?''

उत्तर—''वह ढले हुए लोहे के आधार में डायनामाइट से भरा हुआ माइन था। उसमें पाँच पौंड डायनामाइट भरा था। वह फ्यूज, पिकरिक एसिड और क्लोरेट ऑफ पोटाश से बनाया गया था।''

प्रश्न—''यह जानते हुए भी कि बयान देकर आप खुद फँसते जा रहे हैं, आप यह स्वीकारोक्ति किस उद्देश्य से कर रहे हैं?''

उत्तर—''मेरा उद्देश्य यही है कि यदि फँसना ही है तो मैं स्वयं फँसूँ और अन्य निर्दोष व्यक्ति फँसने से बच जाएँ।''

उपर्युक्त बयान उल्लासकर दत्त ने मि. सी.पी. बीचक्राफ्ट की अदालत में दिया। बयान में उसने बताया कि वह वारींद्र घोष द्वारा 'युगांतर' में प्रकाशित एक टिप्पणी से आकर्षित होकर क्रांतिकारी दल में सम्मिलित हुआ। उसने क्रांति का पथ क्यों चुना, इसके पीछे एक घटना है—

सन् १९०४ में कलकत्ता में गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर का एक भाषण आयोजित था। भाषण का विषय था—'स्वदेशी समाज'। वे दिन राष्ट्रीय चेतना के दिन थे। भाषण सुनने के लिए अपार जन-समूह एकत्र हो गया। भीड़ को नियंत्रण में लाने के लिए पुलिस ने बल-प्रयोग किया। ब्रिटिश हुकूमत के सिपाही निरपराध लोगों पर अंधाधुंध लाठियाँ बरसाने लगे। कुछ महिलाओं और बच्चों को भी चोटें आईं। नौजवान उल्लासकर दत्त यह सहन नहीं कर सका। वह प्रतिरोध कर बैठा—

''शर्म नहीं आती तुम लोगों को, जो इन निर्दोष और निरपराध लोगों पर जंगलियों की तरह टूट रहे हो! महिलाओं और बच्चों पर लाठियाँ बरसाते हुए तो तुम्हें शर्म से डूब मरना चाहिए।''

एक उत्तेजित सिपाही ने ललकारते हुए कहा—

''अगर महिलाओं और बच्चों का इतना खयाल है तो मर्द के बच्चे! सामने क्यों नहीं आ जाता?''

और सचमुच ही उल्लासकर दत्त सीना तानकर सिपाही के सामने जा कूदा। तीख पर चढ़ा हुआ सिपाही और वह भी ब्रिटिश हुकूमत का। वह लाठी का एक प्रहार उल्लासकर दत्त पर कर बैठा। उल्लासकर ने उसकी लाठी पकड़ ली। यह दृश्य देख अन्य सिपाही दौड़ पड़े और वे सबके सब उल्लासकर पर टूट पड़े। उसकी पिटाई भी हुई और वह थाने पर भी ले जाया गया। उसके विरुद्ध रिपोर्ट दर्ज कर दी गई।

डॉ. सुरेंद्र मोहनदास उन दिनों कलकत्ता के एक प्रसिद्ध समाजसेवी डॉक्टर थे। उन्होंने न केवल उल्लासकर दत्त को जमानत पर छुड़ाया, वरन् उसे अपने घर

रखकर उसका उपचार भी किया।

इस घटना के कुछ दिन पश्चात् ही 'बारिसाल प्रादेशिक सम्मेलन' हुआ। वहाँ भी उल्लासकर दत्त ने पुलिस की इस प्रकार की ज्यादतियाँ देखीं। उसका विद्रोह उस सरकार के प्रति जाग्रत हुआ, जिसकी नौकरशाही के ये सब पुरजे थे। कुछ दिन तक उल्लासकर दत्त बंबई के 'विक्टोरिया टेक्नीकल इंस्टीट्यूट' में अध्ययन कर चुका था। रासायनिक पदार्थों का उसे ज्ञान था। उस ज्ञान के आधार पर वह कलकत्ता में अपने घर के एक कमरे में ही कुछ प्रयोग करने लगा। वह बम बनाने का प्रयत्न कर रहा था। उसके अध्यापक पिता यही सोचते रहे कि उनका पुत्र अपने छोड़े हुए अभ्यास को आगे बढ़ा रहा है।

उन्हीं दिनों कलकत्ता में रहकर वारींद्र घोष अपने 'युगांतर' पत्र के माध्यम से विप्लव का प्रयास कर रहे थे। उल्लासकर दत्त ने वारींद्र घोष से परिचय स्थापित कर लिया और वह उनके क्रांतिकारी दल का सदस्य हो गया। अब मुरारीपुकुर के बगीचेवाले मकान में बम बनाने का एक कारखाना स्थापित कर दिया गया। उल्लासकर दत्त बम बनाने के अपने प्रयोग में सफल हो गया।

दल ने यह आवश्यक समझा कि उल्लासकर दत्त द्वारा जो बम बनाए गए हैं, उनका परीक्षण कर लिया जाए। बम का परीक्षण करने वे लोग देवघर के दिघीरिया पर्वत पर गए। परीक्षण के लिए जानेवालों में वारींद्र घोष, उल्लासकर दत्त और विभूति सरकार थे। उनके साथ रंगपुर विप्लव केंद्र के एक सदस्य प्रफुल्लचंद्र चक्रवर्ती भी थे। बम विस्फोट का दायित्व प्रफुल्लचंद्र चक्रवर्ती ने अपने ऊपर लिया। उन्होंने बम की पिन खींचकर उसे पहाड़ी के नीचे दूर फेंका। उसे फेंकते ही सब लोग एक चट्टान की ओट में छिप गए। नीचे गिरते ही भारी आवाज के साथ बम का विस्फोट हुआ और एक चट्टान का टुकड़ा उड़कर ऊपर की ओर आया, जहाँ वे सब छिपे हुए थे। वह शिलाखंड प्रफुल्लचंद्र चक्रवर्ती और उल्लासकर दत्त के ऊपर आकर गिरा। प्रफुल्ल उसके आघात से इतने अधिक घायल हुए कि घटनास्थल पर ही उनकी मृत्यु हो गई। उल्लासकर दत्त भी घायल हुए; पर उनकी दशा गंभीर नहीं थी। साँझ का अँधेरा घिर आया था। प्रफुल्लचंद्र चक्रवर्ती का शव लाना संभव नहीं था। उसे वहीं छोड़ा गया। घायल उल्लासकर दत्त को कंधों पर लादकर उसके साथी लोग उसे घर ले गए। थोड़े दिन के उपचार से वह स्वस्थ हो गया।

अपने बनाए हुए बम के सफल, किंतु महँगे परीक्षण के उपरांत उल्लासकर दत्त का उत्साह और अधिक बढ़ गया। इसी बीच बम बनाने का नियमित शिक्षण प्राप्त कर दल के एक सदस्य हेमचंद्र दास फ्रांस से लौट आए। अब उनके साथ मिलकर उल्लासकर दत्त बम निर्माण में जुट गए। ब्रिटिश सरकार के कुछ अफसरों

पर उनके बम आजमाए भी गए, जिनका उल्लेख दत्त ने अपने बयान में किया।

बम की सार्थकता सिद्ध हो चुकी थी। क्रांतिकारियों ने निश्चय किया कि बंगाल के छोटे लाट सर एंड्रू फ्रेजर को बम का निशाना बनाकर उसे अत्याचारों का पुरस्कार दिया जाए। इस अभियान में वारींद्रकुमार घोष, उल्लासकर दत्त और नरेंद्र गोस्वामी (बाद में सरकारी गवाह) सम्मिलित हुए। यह प्रयास सन् १९०७ के अक्तूबर मास में किया गया। चंदननगर पहुँचने पर यह निश्चय किया गया कि जिस ट्रेन से लाट साहब की सवारी निकलेगी, उसके रेलपथ पर उल्लासकर दत्त जाकर बम रखें। छोटे लाट एंड्रू फ्रेजर स्पेशल ट्रेन द्वारा राँची जा रहे थे। निश्चित स्थान पर और निश्चित समय पर उल्लासकर दत्त रेलवे लाइन पर बम रखना ही चाहते थे कि कुछ व्यक्तियों की चहल-पहल दिखाई दी। उल्लासकर दत्त का अब यह प्रयत्न था कि वे कुछ और आगे बढ़कर दूसरे स्थान पर बम रखें; पर इसी बीच ट्रेन उस मार्ग से गुजर गई और साहब बच गए।

इस घटना के कुछ दिन पश्चात् दूसरा प्रयत्न भी किया गया और रेलवे लाइन के नीचे उल्लासकर ने बम रख भी दिया; पर लाट साहब ने उस दिन जाने का अपना कार्यक्रम ही निरस्त कर दिया।

क्रांतिकारी लोग इस बात पर तुले हुए थे कि छोटे लाट को समाप्त करके ही रहा जाए और छोटे साहब थे, जिनका भाग्य उन्हें बचा रहा था। ६ दिसंबर, १९०७ को उनकी हत्या का तीसरा प्रयत्न भी किया गया। खड़गपुर के एक महाराष्ट्रीयन रेलवे कर्मचारी द्वारा क्रांतिकारियों को पता चला कि छोटे साहब खड़गपुर पहुँच रहे हैं। यह रेलवे कर्मचारी महाराष्ट्र के एक क्रांतिकारी का रिश्तेदार था। छोटे साहब को बम से उड़ाने के लिए क्रांतिकारी लोग भी खड़गपुर जा पहुँचे। इस दल में वारींद्रकुमार घोष, विभूति सरकार और प्रफुल्ल चाकी गए थे। उल्लासकर दत्त इस अभियान में सम्मिलित नहीं हुए थे। पर विस्फोट के लिए उनके द्वारा तैयार किया गया 'माइन' ही काम में लाया गया था।

क्रांतिकारी पार्टी खड़गपुर से एक अन्य ट्रेन द्वारा नारायणगढ़ के लिए प्रस्थित हुई। रात के नौ बजे तक कहीं छिपकर वे लोग उचित अवसर की प्रतीक्षा करते रहे। उनके पास ढक्कनदार लोहे के खोल के अंदर पाँच पौंड डायनामाइट का बारूदवाला एक 'माइन' था। उस माइन में पिकरिक एसिड और क्लोरेट ऑफ पोटाश से बनाया नया फ्यूज लगाया गया था। सुनसान वातावरण की प्रतीक्षा में कुछ समय एक घनी झाड़ी की ओट में बैठकर बिताया गया। साथ में ले जाई गई मिठाइयाँ भी मिल-बाँटकर क्रांतिकारियों ने खाईं। रात्रि के लगभग ग्यारह बजे रेलवे लाइन के नीचे 'माइन' लगाया गया। माइन लगाने के बाद ही वारींद्रकुमार

घोष आखिरी गाड़ी से कलकत्ता लौट गया और शेष दो साथी—विभूति सरकार एवं प्रफुल्ल चाकी—वहाँ रह गए। ट्रेन आने के कुछ समय पहले उन दोनों ने माइन तथा फ्यूज का संबंध स्थापित किया, और लगभग डेढ़ मील दूर चले गए। कुछ समय पश्चात् उन्हें भयानक धमाका सुनाई दिया। विस्फोट के परिणामस्वरूप ट्रेन के कुछ डिब्बे क्षतिग्रस्त हो गए, पर छोटे साहब बाल-बाल बच गए। तीसरी बार भी भाग्य ने उनका साथ दिया।

क्रांतिकारियों ने हिम्मत नहीं हारी। चौथा प्रयत्न उन्होंने पिस्तौल के माध्यम से किया। ७ नवंबर, १९०८ को जितेंद्रनाथ राय नाम के कॉलेज के एक छात्र ने एक आमसभा में छोटे लाट पर पिस्तौल से हमला किया। बार-बार घोड़ा दबाने पर भी गोली नहीं निकली। पिस्तौल जाम हो गई थी। परिस्थिति का लाभ उठाकर छोटे लाट के पास बैठे बर्दवान नरेश सर विजयचंद्र महताब ने झपटकर हमलावर को पकड़ लिया। मुकदमा चलने पर जितेंद्रनाथ राय को दस साल का दंड दिया गया। चौथी बार भी भाग्य ने छोटे लाट का साथ दिया। इसके पश्चात् उनपर कोई प्रयत्न नहीं किया गया।

क्रांतिकारियों के प्रयत्न निष्फल हो रहे थे और अब बारी थी सरकार की। ब्रिटिश हुकूमत ने पुलिस के कान खींचे और पुलिस ने सभी ओर अपने जाल बिछा दिए। आखिर क्रांतिकारी लोग उसके जाल में उलझ गए। मुरारीपुकुर स्थित बम के कारखाने पर छापा मारा गया और वहाँ से कई क्रांतिकारियों को एक साथ गिरफ्तार कर लिया गया। अदालत के निर्णय के अनुसार उल्लासकर दत्त को फाँसी की सजा सुनाई गई। हाई कोर्ट में अपील करने पर फाँसी की सजा आजीवन कारावास में परिवर्तित हो गई।

उल्लासकर दत्त को अन्य क्रांतिकारी साथियों के साथ अंडमान की सैलुलर जेल में भेज दिया गया।

निरंतर बारह वर्षों तक कालेपानी की यातनाएँ सहन करने के पश्चात् उल्लासकर दत्त सन् १९२० में छूटकर भारत आए। अपने जेल जीवन की यातनाओं का वर्णन आपने स्वलिखित पुस्तक में किया है, जिसका नाम है—'जेल की गाथा'।

□

★ सरदार ऊधमसिंह

सरदार ऊधमसिंह

लंदन के एक न्यायालय 'ओल्ड वेली क्रिमिनल कोर्ट' में खचाखच भरी हुई दर्शक दीर्घाओं के लोग उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे उस नरसिंह को देखने के लिए, जिसने इंग्लैंड की ही भूमि पर दिन-दहाड़े एक उच्च अंग्रेज अफसर का खून बहाकर भारत के खून का बदला चुका लिया।

न्याय मंदिर के काष्ठ कक्ष में खड़े हुए एक भीमकाय व्यक्ति ने जब विजेता की भाँति चारों ओर दृष्टि दौड़ाई तो दर्शकों में कानाफूसी प्रारंभ हो गई—

"अरे! यह तो काजल के पहाड़ जैसा लगता है।"

"इसे देखकर हिंदुस्तान के शेर देखने की इच्छा नहीं रह जाती।"

"यह हत्यारा तो बिलकुल नहीं लगता।"

"मौत के पुरस्कार के प्रति आश्वस्त होकर भी यह कितना प्रसन्न है!"

ऐसे ही जाने कितने-कितने विचार अधर-कूप से निकलकर कर्ण-खाइयों में कूदते रहते, यदि न्याय देवता अपनी चौकी पर गदा का प्रहार करके 'ऑर्डर! ऑर्डर!' का गर्जना घोष न करते।

जीवन और मृत्यु की ओर तटस्थ भाव दिखाते हुए अपराधी की ओर देखकर न्यायाधीश ने पूछा—

"मिस्टर ऊधमसिंह! तुम्हें कुछ कहना है?"

उत्तर मिला—

''जी हाँ, महोदय! मुझे ऊधमसिंह के नाम से नहीं, राम मोहम्मद सिंह आजाद के नाम से पुकारिए।''

''किस नाम से?''

''सॉरी सर! मुझे आप राम मोहम्मद सिंह डिसूजा के नाम से पुकारिए।''

''लेकिन सरकारी वकील ने तो तुम्हारा नाम ऊधमसिंह बताया है।''

''यदि सरकारी वकील का ही कहना मानना है तो फिर किसीसे कुछ पूछने की आवश्यकता ही क्या रह जाती है!''

''तुम सिख हो या मुसलमान?''

''जी, मैं हिंदुस्तानी हूँ।''

''फिर तुम्हारे इस नाम का क्या रहस्य है?''

''जी, नाम का रहस्य यही है कि हिंदू का 'राम' मुसलमान का 'मोहम्मद' सिख का 'सिंह' और ईसाई का 'डिसूजा' मेरे नाम में सम्मिलित हैं। हिंदुस्तानियों की एकता के प्रतीक के रूप में ही तो मैंने अपना नाम 'राम मोहम्मद सिंह डिसूजा' रखा है।''

''तो यह नाम तुम्हारा रखा हुआ है। तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हारा क्या नाम रखा है?''

''वही, जो सरकारी वकील ने आपको बताया।''

''तो हम तुम्हें ऊधमसिंह के नाम से ही पुकारेंगे।''

''जैसी आपकी मरजी।''

''अच्छा मिस्टर ऊधमसिंह! अपनी सफाई के लिए तुम्हें कुछ कहना है?''

''मुझे यही कहना है कि माइकेल ओ डायर को मैंने मारा है और न्याय का नाटक लंबा न चलाकर जल्दी फाँसी का हार मेरे गले में डाला जाए।''

'एवमस्तु' जैसा कुछ लिखकर न्यायाधीश महोदय ने अपना काम पूरा कर दिया।

१२ जून, १९४० को भारत माता के उस वीर पुत्र ने इंग्लैंड की भूमि पर हँसते-हँसते फाँसी का फंदा चूमकर भारत के सम्मान को बहुत ऊँचा उठा दिया।

न्यायालय में अपना नाम राम मोहम्मद सिंह डिसूजा बतानेवाले नर केसरी का वास्तविक नाम ऊधमसिंह था। वीरभूमि पंजाब के इस बेटे के दिल में सैकड़ों भाइयों की हत्या के प्रतिशोध की आग निरंतर बीस वर्ष ग्यारह महीने तक जलती रही।

१३ अप्रैल, १९१९ को अमृतसर के जलियाँवाला बाग में सभा कर रहे हजारों निहत्थे लोगों पर जनरल डायर की सेना ने बेशुमार गोलियाँ बरसाईं। लोग

होले जैसे भून डाले गए। शासकीय विज्ञप्ति के अनुसार तीन सौ उन्नासी व्यक्ति (अशासकीय अनुमान से एक हजार के ऊपर) जान से मारे गए और एक हजार दो सौ व्यक्ति घायल हुए। घायलों को रात-भर तड़पने के लिए वहीं छोड़ दिया गया। पानी-पानी चिल्लाते रहने पर भी न तो उन्हें एक बूँद पानी दिया गया और न ही उनसे किसीको मिलने दिया गया।

इस हत्याकांड का खलनायक जनरल डायर था और गोली चलाने का आदेश देनेवाला अधिकारी पंजाब का तत्कालीन गवर्नर माइकेल ओ डायर था। रिटायर होकर इंग्लैंड पहुँचने पर नरमेध रचानेवाले इस व्यक्ति का नागरिक अभिनंदन किया गया और चंदा करके बीस हजार पौंड की राशि उसे भेंट की गई।

इंग्लैंड को लगा जैसे हिंदुस्तान सबकुछ भूल गया। पर उसकी यह भूल थी। इस हत्या का बदला लेने का संकल्प एक ऐसे बालक ने किया, जो हत्याकांड का प्रत्यक्षदर्शी था और उस समय उसकी उम्र केवल बारह वर्ष की थी। वह बालक ऊधमसिंह था। बड़े होने पर बदला लेने के विचार से वह इंजीनियरिंग की शिक्षा प्राप्त करने इंग्लैंड जा पहुँचा।

और एक दिन हजारों लोगों के रक्त से रंजित हत्यारा माइकेल ओ डायर १३ मार्च, १९४० को अपने घर से यह कहता हुआ निकला—

''अच्छा मैं जाता हूँ। सायंकाल पाँच बजे की चाय के समय तक घर लौट आऊँगा।''

माइकेल ओ डायर घर से चलकर सभाभवन पहुँचा, जहाँ 'रॉयल सेंट्रल एशियन सोसायटी' और 'ईस्ट इंडिया एसोसिएशन' के तत्त्वावधान में 'अफगानिस्तान' विषय पर एक भाषण का आयोजन किया गया था। सभापति का आसन लॉर्ड जेटलैंड ने ग्रहण किया था। कार्यवाही की समाप्ति पर भीड़ को चीरता हुआ एक भारतीय नौजवान अग्रिम पंक्ति तक जा पहुँचा और अपनी पिस्तौल से दनादन गोलियाँ छोड़ने लगा। उसकी पाँच गोलियों ने माइकेल ओ डायर के पंचतत्त्वमय शरीर को ठंडा कर दिया।

लोगों में भगदड़ मच गई और वे एक-दूसरे पर गिरने लगे। 'हट जाओ! हट जाओ!' चिल्लाता हुआ ऊधमसिंह दरवाजे की ओर भागा। भगदड़ में वह स्वयं भी गिर गया और दबोच लिया गया।

जैसाकि होता आया है, न्याय का नाटक हुआ और ऊधमसिंह को मृत्युदंड सुना दिया गया। एक वक्तव्य देते हुए ऊधमसिंह ने कहा था—

''मैंने माइकेल ओ डायर को इसलिए मारा, क्योंकि उससे मुझे विरोध था। माइकेल ओ डायर मृत्युदंड का ही अधिकारी था। न मुझे कोई चिंता है और न मौत

का डर। बुढ़ापे तक जीवित रहने से क्या लाभ! देश के लिए यदि कोई जवानी में मरता है तो यह अच्छी बात है। मैं भी यही कर रहा हूँ। अपनी मातृभूमि के लिए मैं अपने जीवन की भेंट दे रहा हूँ।''

वह वीर पुत्र अपने जीवन की भेंट देकर यह दिखा गया कि राष्ट्र के अपमान का बदला लेने के लिए हम दुश्मन का उसके घर तक पीछा करते हैं और बदला चुकाकर ही दम लेते हैं।

□

★ कन्हाईलाल दत्त ★ सत्येंद्रनाथ बसु

कन्हाईलाल दत्त

सत्यंद्रनाथ बसु

कलकत्ता के सेशन कोर्ट में दो क्रांतिकारी जीवन और मृत्यु के झूले पर झूल रहे थे। इस समय वे जीवित थे, पर उन्हें ज्ञात था कि एक देशद्रोही को मौत के घाट उतार देने के अपराध में उन्हें मृत्युदंड अवश्य ही मिलेगा। ये क्रांतिकारी थे कन्हाईलाल दत्त और सत्येंद्रनाथ बसु। जिस गद्दार को उन्होंने मृत्युदंड दिया था, उसका नाम नरेंद्र गोस्वामी था। नरेंद्र गोस्वामी का अपराध यह था कि इन क्रांतिकारियों का साथ छोड़कर वह सरकारी गवाह बन गया था और उसने कल्पित एवं मनगढ़ंत बयान देकर निरपराध तथा असंबद्ध लोगों को फँसाने में भी कोई कसर नहीं छोड़ी थी। कन्हाईलाल दत्त व सत्येंद्रनाथ बसु ने बड़ी ही सावधानी और सूझबूझ के साथ उस गद्दार का शिकार करने की योजना क्रियान्वित की थी।

अलीपुर बम केस में कन्हाईलाल दत्त, सत्येंद्रनाथ बसु और नरेंद्र गोस्वामी गिरफ्तार हुए थे। उनके कुछ और साथी गिरफ्तार नहीं हो सके थे। पुलिस चाहती थी कि अन्य क्रांतिकारी भी गिरफ्तार किए जाएँ; पर उनके पते-ठिकाने पुलिस को

मालूम नहीं थे। आखिर नरेंद्र गोस्वामी को मुखबिर बना लेने में पुलिस को सफलता मिली। नरेंद्र ने अपने साथियों के पते-ठिकाने पुलिस को बता दिए। पुलिस के झूठे पढ़ाने-सिखाने पर नरेंद्र ने कुछ ऐसे व्यक्तियों के नाम भी ले दिए, जिनका उस मामले में दूर का भी संबंध नहीं था और जो सर्वथा निरपराध थे। कन्हाईलाल और सत्येंद्रनाथ ने जब अपने ही साथी नरेंद्र का यह व्यवहार देखा तो उनके मन उसके प्रति घृणा से भर गए। उन्होंने निश्चय कर डाला कि नरेंद्र गोस्वामी को मृत्युदंड दिया जाए। पुलिस ने नरेंद्र की सुरक्षा की दृष्टि से उसे सामान्य वार्ड से हटाकर यूरोपियन वार्ड में रख दिया था। वहाँ वह एक प्रकार से स्वतंत्र था। इतना होने पर भी वह सुरक्षित नहीं रह सका और कन्हाईलाल दत्त तथा सत्येंद्रनाथ बसु द्वारा तैयार किए गए मृत्यु-जाल में वह उलझ ही गया। गद्दार के लिए मृत्यु-जाल इस प्रकार बुना गया—अस्वस्थता के कारण कन्हाईलाल दत्त को पहले ही अस्पताल में भरती किया जा चुका था। दुबले-पतले शरीरवाला नौजवान सत्येंद्रनाथ बसु भी गंभीर उदरपीड़ा का बहाना करके, अस्पताल पहुँचकर अपने साथी कन्हाईलाल से जा मिला। उन दोनों में कुछ मंत्रणा हुई। कुछ व्यवस्था भी हुई।

यूरोपियन वार्ड में नरेंद्र गोस्वामी को यह समाचार मिला कि सत्येंद्रनाथ क्रांतिकारी गतिविधियों से ऊब गया है और वह भी सरकारी गवाह बनना चाहता है। सत्येंद्रनाथ ने नरेंद्र से मंत्रणा करने की इच्छा भी प्रकट की थी। नरेंद्र के लिए यह एक शुभ समाचार था। उसने सोचा, एक से दो भले। उसने जेल अधीक्षक से आज्ञा माँगी और जेल के एक अधिकारी हिगिंस के साथ अस्पताल जा पहुँचा, जहाँ सत्येंद्रनाथ उसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

वह ३१ अगस्त, १९०८ का दिन था। सुबह के लगभग सात बजे होंगे। सत्येंद्रनाथ बसु अस्पताल की पहली मंजिल के बरामदे में खड़ा नरेंद्र गोस्वामी की प्रतीक्षा कर रहा था। एक अंग्रेज अधिकारी के साथ नरेंद्र गोस्वामी को आता देखा तो वह बरामदे से हटकर अंदर के कमरे में चला गया। हिगिंस के साथ नरेंद्र जीना चढ़ ऊपर के बरामदे में पहुँच गया। गोपनीय मंत्रणा के लिए एकांत पाने की दृष्टि से हिगिंस को नीचे प्रतीक्षा करने के लिए कहा गया और नरेंद्र गोस्वामी सत्येंद्रनाथ से मिलने के लिए अंदर के प्रकोष्ठ की तरफ बढ़ चला। नरेंद्र गोस्वामी ने देखा कि दूसरी ओर से वहाँ कन्हाईलाल भी पहुँच रहा है। कन्हाईलाल की उपस्थिति उसे अटपटी लगी; क्योंकि उसका पलंग किसी दूसरे वार्ड में था। सत्येंद्रनाथ और कन्हाईलाल दोनों ही नरेंद्र के निकट पहुँच गए और बातें करने की सुविधा के लिए वे बाहर के खुले बरामदे में जा पहुँचे।

खुले बरामदे में उन तीनों की मंत्रणा चलते हुए अभी कुछ ही मिनट बीते थे

कि गोलियाँ चलने की आवाज हुई। नरेंद्र गोस्वामी का हाथ जख्मी हो चुका था। नरेंद्र गोस्वामी भागता-भागता चिल्लाता जा रहा था—"मुझे बचाओ! मुझे बचाओ! ये लोग मुझे जिंदा नहीं छोड़ेंगे।"

नरेंद्र गोस्वामी की चीख-चिल्लाहट सुनकर हिगिंस उसकी सहायता के लिए दौड़ पड़ा। उसने नरेंद्र को ओषधि कक्ष में धकेल दिया और आक्रामकों का रास्ता रोकने का प्रयत्न किया। हिगिंस कन्हाईलाल के साथ गुत्थमगुत्था हो गया और उसकी पिस्तौल छीनने या गोलियाँ चलवाकर उसे खाली कर देने का प्रयत्न किया। इस प्रयत्न में स्वयं उसका एक हाथ जख्मी हो गया। हिगिंस और कन्हाईलाल को उलझा हुआ देखकर नरेंद्र गोस्वामी ने जीने से उतरकर भाग जाने का प्रयत्न किया। उसे ऐसा करते देखकर कन्हाईलाल और सत्येंद्रनाथ दोनों ने ही उसका पीछा किया। नरेंद्र भागता जा रहा था और दोनों ही क्रांतिकारी उसपर गोलियाँ छोड़ते जा रहे थे।

इसी बीच एक दूसरा अंग्रेज अधिकारी लिंटन उसकी सहायता के लिए कूद पड़ा और उसने भागते हुए सत्येंद्रनाथ को टँगड़ी मारकर गिरा दिया तथा कन्हाईलाल को अपने हाथों में जकड़ लिया। कन्हाईलाल ने अपनी पिस्तौल की नाल उसकी खोपड़ी में दे मारी और जोर लगाकर उसके बंधन को शिथिल कर दिया। उसकी पिस्तौल में केवल एक ही गोली बची थी। उसने अपना हाथ मुक्त कर ही लिया था और उसका शिकार भी दूर नहीं था। पूरे आत्मविश्वास के साथ उसने आखिरी गोली नरेंद्र गोस्वामी के ऊपर दाग दी। इस बार निशाना अचूक पड़ा। चक्कर खाकर नरेंद्र गोस्वामी भूमि पर गिर पड़ा। उसके शरीर का आधा भाग भूमि पर था और आधा भाग गटर की तरफ लुढ़क गया था।

कन्हाईलाल और सत्येंद्रनाथ का काम बन चुका था। उन्होंने न किसी और को निशाना बनाने का प्रयत्न किया और न भागने का। वे स्वेच्छा से गिरफ्तार हो गए।

दोनों क्रांतिकारियों पर मुकदमा चला। कन्हाईलाल ने किसी वकील की सहायता लेने से भी इनकार कर दिया। उसने अपना अपराध बिना हिचक स्वीकार कर लिया। उसे फाँसी का दंड सुना दिया गया। ज्यूरी के बहुमत ने सत्येंद्रनाथ को अपराधी नहीं माना। उसका मामला ऊँची अदालत में भेज दिया गया। उसे भी फाँसी का दंड सुना दिया गया।

कन्हाईलाल दत्त ने फाँसी का दंड सुना तो उसे लगा जैसे उसे वांछित पुरस्कार मिला हो। आत्मिक प्रसन्नता उसके मुखमंडल पर फूटी पड़ रही थी। खिले हुए कमल के समान उसका मुख सबको मोहित कर रहा था। दंड सुनने के

पश्चात् फाँसी के दिन के समय तक उसका वजन सोलह पौंड बढ़ चुका था। उसने मृत्यु को जीत लिया था, केवल एक औपचारिकता-भर शेष थी।

फाँसी की औपचारिकता का निर्वाह अलीपुर केंद्रीय कारागार में १० नवंबर, १९०८ को हुआ। अपने जीवन की अंतिम रात कन्हाई इतनी बेफिक्री के साथ सोया कि सुबह उसे जगाना पड़ा। प्रातःकालीन कार्यों से निवृत्त होकर वह सधे हुए कदमों से मृत्यु-मंच की ओर बढ़ चला। पूरे आत्मविश्वास के साथ सीढ़ियाँ पार करके वह तख्ते पर जा चढ़ा। गले में फंदा डाला गया। चेहरे को काले टोप से ढक दिया गया। संकेत मिलते ही कुंदा खींचा गया और कन्हाई का शरीर एक झटके के साथ फाँसी के फंदे पर झूल गया।

शहीद का अंतिम संस्कार बड़ी धूमधाम के साथ किया गया। लोगों की अपार भीड़ उसकी महायात्रा के साथ थी। सुगंधित चंदन का ढेर-का-ढेर उसके दाह के लिए प्रयुक्त हुआ। चिता भस्म ठंडी होने तक लोग उस स्थल को छोड़कर नहीं गए। उसके अवशेष चुटकी-चुटकी करके लोगों में बँट गए। अवशेषयुक्त तावीज लोगों के गलों को सुशोभित कर रहे थे। उसका पार्थिव शरीर संसार में नहीं था, पर उसकी स्मृति देशवासियों की आत्मा को आलोकित कर रही थी।

सत्येंद्रनाथ बसु को फाँसी पर २१ नवंबर, १९०८ को झुलाया गया। उसका अंतिम संस्कार जेल के अंदर ही किया गया। कन्हाईलाल के उदाहरण से शासन ने सबक लिया और उसका शव उसके परिवारवालों को नहीं दिया गया। शासन अपने लिए खतरा मोल लेना नहीं चाहता था।

दो अनमोल जीवन देश के लिए अर्पित हो गए। वे भावी पीढ़ियों के लिए एक संदेश छोड़ गए—'एक बार हम अपने शत्रु को भले ही छोड़ दें, पर देशद्रोही को हम किसी भी मूल्य पर नहीं छोड़ सकते।'

□

★ ठाकुर किशोरसिंह ★ रघुनाथ राव

हिंडोरिया के ठाकुर किशोरसिंह और उनकी पत्नी के बीच वार्त्तालाप चल रहा था। चर्चा का विषय यह था कि क्या ठाकुर किशोरसिंह को अंग्रेजों के विरुद्ध हथियार उठाने चाहिए या नहीं। चर्चा का आरंभ करते हुए ठकुराइन ने कहा—

"हमारे क्षेत्र के सभी जागीरदारों ने अंग्रेजों के विरुद्ध हथियार उठाकर न केवल अपने शौर्य का प्रदर्शन किया है, अपितु मातृभूमि के प्रति अपने कर्तव्यों का

पालन भी किया है। केवल आप ही हैं, जो अभी तक तटस्थ रहे हैं।''

अपनी पत्नी के मंतव्य को समझते हुए ठाकुर किशोरसिंह ने कहा—

''मेरे तटस्थ रहने का सबसे बड़ा कारण यह रहा है कि अभी तक सहयोग के लिए मुझे किसीने आमंत्रित ही नहीं किया।''

इस कथन का विरोध करते हुए ठकुराइन ने कहा—

''विवाहोत्सवों या इसी प्रकार के व्यक्तिगत आयोजनों में तो निमंत्रण भेजने की प्रथा होती है, लेकिन सार्वजनिक हित के कार्यों में तो प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ओर से ही सहयोग देना चाहिए। आप अपनी तटस्थता अभी भी भंग कर सकते हैं। आपको अकेले ही अंग्रेजी सेना से जूझ पड़ना चाहिए।''

ठाकुर किशोरसिंह ने यही किया। उन्होंने अपनी सेना को संगठित करके अपने जिले दमोह के मुख्यालय पर स्थित अंग्रेजी सेना पर आक्रमण कर दिया। दमोह वर्तमान में मध्य प्रदेश का एक जिला है। उस समय वह कंपनी सरकार के अंतर्गत था। ठाकुर किशोरसिंह की सेना ने १० जुलाई, १८५७ को अंग्रेजी सेना को परास्त करके दमोह पर अधिकार कर लिया। दमोह के डिप्टी कमिश्नर को भागकर नरसिंहपुर में शरण लेनी पड़ी।

एक छोटे से जागीरदार के हाथों पराजित होना अंग्रेजी सेना के लिए बड़ी शर्मनाक घटना थी। इस पराजय का बदला लेने के लिए बहुत बड़ी सेना खड़ी की गई और २५ जुलाई, १८५७ को आक्रमण करके अंग्रेजी सेना ने दमोह को वापस अपने अधिकार में लेने में सफलता प्राप्त की। अंग्रेजी सेना ने अब ठाकुर किशोरसिंह की जागीर हिंडोरिया पर आक्रमण किया। ठाकुर किशोरसिंह अंग्रेजों के हाथ नहीं लग सके। वे जंगल में निकल गए। वह नरसिंह जीवन-भर जंगल में ही रहा। अंग्रेजों से संधि करने की बात कभी उसके मन में नहीं आई।

ठाकुर किशोरसिंह के सहयोगी और किशनगंज के सरदार रघुनाथ राव ने अंग्रेजी सेना के साथ युद्ध जारी रखा। अंततोगत्वा वे गिरफ्तार कर लिये गए और अंग्रेजों ने उन्हें फाँसी के फंदे पर झुला दिया।

□

★ वीर कुँअरसिंह

भारतीय स्वाधीनता संग्राम में अपरिमेय पौरुष और अलौकिक वीरता के कीर्तिमान स्थापित करनेवाला महान् योद्धा कुँअरसिंह तब बिहार के जगदीशपुर

वीर कुँअरसिंह

राज्य का राजा रहा होगा, पर आज तो वह समस्त वीर जाति का हृदय-सम्राट् है। वह कुँअरसिंह था, जिसने मातृभूमि की आजादी के लिए अस्सी वर्ष की अवस्था में अंग्रेजों के विरुद्ध तलवार चलाकर सिद्ध कर दिया कि मातृभूमि की पुकार पर भारत के वृद्धों में भी जवानी लौटकर आ जाती है।

वीर कुँअरसिंह छापामार युद्ध, अर्थात् वृकयुद्ध कला में पूर्णरूप से निष्णात थे। १८५७ के स्वातंत्र्य युद्ध में उन्होंने तलवार की जिस धार पर अंग्रेजी सेना को उतारा, उसकी चमक आज भी इतिहास के पृष्ठों को चौंधिया देती है। वीर कुँअरसिंह के रण-कौशल का आकलन करते हुए वीर सावरकर ने अपने ग्रंथ '१८५७ का भारतीय स्वातंत्र्य समर' में लिखा है—

'१८५७ की क्रांति में अपनी युद्ध-पद्धति और रण-कौशल में उसकी बराबरी का कोई वीर नहीं था। छत्रपति शिवाजी के पश्चात् वृकयुद्ध (गुरिल्ला वारफेयर) के महत्त्व को सर्वप्रथम उसीने सिद्ध किया था। वीर शिवाजी की भाँति वृकयुद्ध के दाँवपेंचों का पूर्ण जानकार कुँअरसिंह ही एकमात्र वीर था। यही नहीं, '५७ की क्रांति में तात्या टोपे और कुँअरसिंह ने वृकयुद्ध के जो काम किए हैं, यदि उनकी तुलना की जाए तो पहला स्थान कुँअरसिंह को ही देना पड़ेगा। यह मानते हुए भी कि तात्या टोपे वृकयुद्ध के विध्वंसक तथा विधायक दोनों पक्षों का उपयोग करने में सिद्धहस्त था। शत्रु को नई सेना खड़ी करने तथा अपनी सेना को नष्ट करने का किंचित् मात्र भी अवसर तात्या टोपे नहीं देता था; किंतु कुँअरसिंह अपने विपक्षी को ये दोनों कार्य न करने देने के साथ-साथ शत्रु को बुरी तरह हराता था और उसकी सेना का सफाया करता था।'

वीर कुँअरसिंह की चालों को अंग्रेज सेनानायक समझ नहीं पाते थे। कभी वह उन्हें पीछे धकेलता, कभी छकाता, कभी स्वयं पीछे हटता और कभी अवसर पाकर पार्श्व से हमला कर देता तथा कभी शत्रु सेना के अधिकाधिक जमाववाले स्थान पर अचानक सीधा हमला करता और शत्रु पंक्तियों को चीरता हुआ निकल जाता था। कभी झाड़ियों में से उसके वीर शत्रु सेना पर सरसराती अग्निवर्षा प्रारंभ कर देते। दुश्मन की सेना के सामने कट मरने या भाग खड़े होने के अतिरिक्त कोई

अन्य विकल्प रहा ही नहीं करता था।

कुँअरसिंह की सेना को गंगा पार जाना था; अंग्रेजी सेना निरंतर उसका पीछा कर रही थी। कुँअरसिंह ने बड़ी चतुराई से यह अफवाह फैला दी कि वह बलिया के निकट हाथियों पर अपनी सेना पार कराएगा। अंग्रेज सेनापति डगलस बहुत बड़ी सेना लेकर बलिया के निकट गंगा तट पर पहुँचकर कुँअरसिंह की प्रतीक्षा करने लगा। उधर डगलस की सेना बलिया के निकट कुँअरसिंह की घात में थी, इधर कुँअरसिंह ने बलिया से सात मील दूर शिवराजपुर नामक स्थान पर नावों पर चढ़ाकर अपनी सेना को गंगा पार करा दिया। जब डगलस को इस चकमे का पता चला तो वह भागता हुआ शिवराजपुर पहुँचा। उस समय तक कुँअरसिंह की पूरी सेना गंगा पार कर चुकी थी। केवल एक अंतिम नाव रह गई थी, जिसपर स्वयं कुँअरसिंह सवार था। डगलस की सेना ने उसपर गोलीवर्षा प्रारंभ कर दी। एक गोली कुँअरसिंह के बाएँ हाथ की कलाई को तोड़ती हुई निकल गई। कुँअरसिंह ने सोचा कि हाथ तो बेकार हो ही गया है, गोली का जहर फैलने का अँदेशा है। अत: उसने तलवार खींचकर अपने ही सीधे हाथ से अपने बाएँ हाथ को कोहनी के पास से काटकर गंगा मैया को अर्पित करते हुए कहा—

"गंगा मैया! अपने प्यारे पुत्र की यह अकिंचन भेंट स्वीकार करो।"

यह थी कुँअरसिंह की अनुपम वीरता और बलिदान भावना।

कई युद्धों में अंग्रेजी सेना को परास्त कर वीर कुँअरसिंह ने २३ अप्रैल, १८५८ को अपने राज्य जगदीशपुर के राजप्रासाद में प्रवेश किया। विजय का आनंद उस वीर के भाग्य में अधिक नहीं था। २६ अप्रैल, १८५८ को वह वीर संसार से बिदा होकर अपनी अमर कीर्ति की गाथा छोड़ गया।

□

★ खुदीराम बोस ★ प्रफुल्लकुमार चाकी

खुदीराम बोस

प्रफुल्लकुमार चाकी

यह कलकत्ता के चीफ प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट मि. किंग्सफोर्ड का सौभाग्य था कि उनकी मृत्यु टल गई। उन्हें समाप्त करने के लिए पुस्तक बम की योजना विफल हो गई। एक बड़ी पुस्तक का आंतरिक भाग काटकर उसमें बम रखा गया था और यह पुस्तक अच्छी तरह से पैक करके किंग्सफोर्ड साहब के पास पहुँचाई गई थी। रस्सी के खोलते ही कमानी के सहारे आवरण पृष्ठ उछलता और बम का विस्फोट हो जाता। किंग्सफोर्ड महोदय ने किसी अन्य समय खोलने के लिए पुस्तक वैसी-की-वैसी ही अलमारी के अंदर रख दी। इस तरह उनकी मृत्यु टल गई।

क्रांतिकारी लोग तो मि. किंग्सफोर्ड को समाप्त करने पर तुले हुए थे। उन्होंने बम का सीधा प्रहार करके उन्हें समाप्त कर देने का निश्चय कर डाला। वे क्रांतिकारियों को कठोर दंड देने के लिए बदनाम थे।

इसी बीच किंग्सफोर्ड का तबादला कलकत्ता से मुजफ्फरपुर हो गया। वे जिला जज बनाए गए थे। क्रांतिकारियों ने तो उनसे बदला लेने का संकल्प कर ही

लिया था। दो तरुण क्रांतिकारी—खुदीराम बोस और प्रफुल्लकुमार चाकी (ये प्रफुल्लकुमार चक्रवर्ती के नाम से भी जाने जाते हैं) मि. किंग्सफोर्ड की हत्या करने मुजफ्फरपुर पहुँच गए। वहाँ वे एक धर्मशाला में आठ दिन तक टिके रहे और जज साहब की गतिविधियों का अध्ययन करते रहे।

जिस बंगले में मि. किंग्सफोर्ड रहते थे, उसीके पास यूरोपियन लोगों का एक क्लब था, जहाँ संध्या समय एकत्र होकर वे लोग आमोद-प्रमोद करते थे। एक दिन खुदीराम बोस और प्रफुल्लकुमार चाकी ने निश्चय किया कि आज किंग्सफोर्ड को समाप्त किया जाए। वह ३० अप्रैल, १९०८ का दिन था। क्लब में सभी लोग आमोद-प्रमोद में व्यस्त थे। श्रीमती एवं श्री किंग्सफोर्ड तथा श्रीमती कैनेडी और कुमारी कैनेडी मिलकर ताश खेल रहे थे। श्री पी.कैनेडी वहाँ के प्रसिद्ध अंग्रेज वकील थे। दोनों परिवारों के पास एक ही रंग की बग्घियाँ थीं, जो एक-एक घोड़े द्वारा खींची जाती थीं। क्रांतिकारियों ने इस भेद को अच्छी तरह समझा नहीं था कि दोनों की बग्घियाँ एक ही रंग की हैं।

रात्रि के लगभग साढ़े आठ बजे उन लोगों ने ताश खेलना बंद किया। श्रीमती व कुमारी कैनेडी अपनी बग्घी में बैठकर पहले रवाना हुईं। क्रांतिकारियों ने उसे किंग्सफोर्ड की बग्घी समझकर बम प्रहार की तैयारी कर डाली। उन्होंने अपनी-अपनी पिस्तौलें भी इसलिए सँभाल लीं कि यदि बम का विस्फोट नहीं हुआ तो उनको गोलियों से भून डालेंगे। वे पास ही के बगीचे के वृक्षों की छाया में छिपे हुए थे। इसके पहले भी उन्हें एक बार अवसर मिला था जब जज साहब को मार सकते थे, पर उस समय साहब कई लोगों से घिरे हुए थे और क्रांतिकारी लोग अकारण इतना नरसंहार नहीं करना चाहते थे।

ज्यों ही कैनेडी परिवार की बग्घी जज साहब के बंगले के पास पहुँची, दोनों क्रांतिकारी कूदकर सड़क पर पहुँच गए और खुदीराम बोस ने बग्घी पर बम का प्रहार कर दिया। बम फटते ही इतने जोर का धमाका हुआ कि सारा शहर हिल गया। बग्घी की खपच्चियाँ उड़ गईं। सफल प्रहार हुआ देखकर दोनों क्रांतिकारी भाग निकले। उन्हें विश्वास हो गया था कि वे मि. किंग्सफोर्ड को मारने में सफल हो गए। उन्हें क्या पता था कि मि. किंग्सफोर्ड के स्थान पर श्रीमती तथा कुमारी कैनेडी ने अपना बलिदान दे दिया।

खुदीराम बोस द्वारा फेंका गया बम भारत में विस्फोटित होनेवाला पहला बम था। इस बम विस्फोट ने सारे भारत में खलबली मचा दी। भारत में दूसरे बम का विस्फोट सन् १९१२ में दिल्ली में वाइसराय लॉर्ड हॉर्डिंग्ज के ऊपर किया गया था, जिससे सारे संसार में खलबली मच गई थी। तब भारत के क्रांतिकारियों को

दुनिया जान गई थी।

कैनेडी परिवार की बग्घी पर हुए बम विस्फोट का धमाका सुनते ही बंगले की सुरक्षा के लिए तैनात सिपाहियों ने दोनों क्रांतिकारियों को भागते हुए देख लिया। वे पीछा कर सकें, इसके पहले ही दोनों क्रांतिकारी नौ दो ग्यारह हो चुके थे। सिपाहियों ने तत्काल पुलिस को सूचना दी। चारों तरफ से शहर घेर लिया गया। दोनों क्रांतिकारी तो तब तक रफू-चक्कर हो चुके थे। बम प्रहार के फलस्वरूप कुमारी कैनेडी की तत्काल मृत्यु हो गई और श्रीमती कैनेडी की मृत्यु अस्पताल में हुई। बग्घी चालक बुरी तरह घायल हो गया था। घोड़ा भी घायल हुआ था।

कुछ दूर तक तो दोनों क्रांतिकारी एक साथ ही भागे, फिर उन दोनों ने अलग-अलग दिशाओं में भागना प्रारंभ कर दिया। प्रफुल्लकुमार चाकी समस्तीपुर की ओर भागा और खुदीराम बोस एक ही रात में पच्चीस मील भागकर सुबह तक बेनीगाँव जा पहुँचा। वह रात-भर बिना कुछ खाए-पिए भागता ही रहा था। वह बहुत थक गया था। स्टेशन के सामने ही एक दुकान से उसने कुछ मुरमुरे खरीदे और बैठकर उन्हें खाने लगा। कैनेडी परिवार की हत्या के समाचार रात-भर में दूर तक फैल चुके थे। बेनीगाँव में भी पुलिस सतर्क थी। दो-तीन सिपाही खुदीराम बोस के आसपास ही चक्कर लगा रहे थे। सिपाहियों ने आपस में बात की—"कल रात किसीने बग्घी में श्रीमती तथा कुमारी कैनेडी की हत्या कर दी।"

इस कथन को सुनकर खुदीराम के मुँह से अचानक निकल गया—

"तो क्या मि. किंग्सफोर्ड बच गए?"

सिपाहियों को खुदीराम बोस पर पक्का संदेह हो गया। जैसे ही वह स्टेशन की ओर बढ़ा, तीन सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया। जिस समय वह पकड़ा गया, उस समय उसके पास दो रिवॉल्वर और काफी कारतूस थे; पर पकड़े जाने के कारण वह उनका उपयोग न कर सका। उसे पकड़कर मुजफ्फरपुर भेजा गया। उसे देखने के लिए अपार जनसमूह एकत्र हो गया। उसके चेहरे पर भय या विषाद की एक भी रेखा नहीं थी। उसने इतना ही कहा कि हम लोग तो मि. किंग्सफोर्ड को मारने आए थे, पर धोखे से हत्या कैनेडी परिवार की हो गई, इसका हमें खेद है।

उधर बम प्रहार के पश्चात् प्रफुल्लकुमार चाकी समस्तीपुर की ओर भागा। वह अगले दिन १ मई को समस्तीपुर पहुँच गया। वहाँ उसने कपड़े बदले और नए जूते पहने। भागते समय उन दोनों के जूते मुजफ्फरपुर में ही रह गए थे। इंटर क्लास का टिकट लेकर प्रफुल्लकुमार मुकामा जाने के लिए समस्तीपुर से गाड़ी में बैठा। दुर्भाग्यवश उसी डिब्बे में पुलिस दारोगा नंदलाल बनर्जी बैठा हुआ था। छुट्टी मनाकर थाने पर उपस्थित होने के लिए सिंहभूमि जा रहा था। उसे प्रफुल्लकुमार पर

बम कांड का अभियुक्त होने का संदेह हुआ। उसने चाकी को बातों में उलझाया। अगले स्टेशन पर चाकी उतरकर दूसरे डिब्बे में बैठ गया। इसी बीच दारोगा ने प्रफुल्लकुमार चाकी के हुलिये की सूचना तार द्वारा मुजफ्फरपुर भेजी और वहाँ से आदेश चाहा। अगले स्टेशन पर उसे तार से ही सूचना मिली कि संदिग्ध व्यक्ति को गिरफ्तार कर लिया जाए। दारोगा फिर प्रफुल्लकुमार चाकी के पास पहुँचा और उसे गिरफ्तार करना चाहा। प्रफुल्लकुमार भागा। प्लेटफॉर्म पर दो-तीन सिपाहियों ने उसका पीछा किया; पर बलिष्ठ शरीर का होने के कारण उसने उन्हें धक्का दिया और रेलवे लाइन की ओर भागा। उधर भी सिपाही तैनात थे। वह घिर गया। एक सिपाही पर उसने अपनी ब्राउनिंग पिस्तौल से गोली चलाई; पर निशाना चूक गया। इस बीच अन्य सिपाहियों ने उसे धर दबोचा। किसी प्रकार उसने अपने हाथ को मुक्त करके अपने ही ऊपर पिस्तौल से दो फायर किए। एक गोली उसकी ठुड्डी में लगी और दूसरी कंधे की हड्डी में। तत्काल उसकी मृत्यु हो गई।

क्रांतिकारी लोगों का आत्मबलिदान आत्महत्या के अंतर्गत नहीं आता। वे आत्मबलिदान केवल इसलिए करते थे कि कहीं उनकी असावधानी से अन्य क्रांतिकारियों के रहस्य पुलिस के हाथ न लग जाएँ। ये रहस्य कभी-कभी सोते-सोते में बड़बड़ाहट के माध्यम से निकल जाते थे। कभी-कभी कुछ कमजोर दिल के क्रांतिकारी पुलिस की यातनाओं से त्रस्त होकर कोई भेद बता देते थे। अपने दल की भलाई की दृष्टि से ही वे लोग आत्मबलिदान का रास्ता अपनाते थे।

इसी प्रकार की भावना से प्रेरित होकर प्रफुल्लकुमार चाकी ने भी आत्मबलिदान का रास्ता अपनाया था। कलकत्ता की अदालत में ८ जून, १९०८ से खुदीराम बोस का मामला चला। १३ जून को ही मुकदमे का फैसला सुना दिया गया। उसे प्राणदंड दिया गया था। ६ जुलाई को हाई कोर्ट में अपील की गई, पर प्राणदंड का निर्णय अपरिवर्तित रहा।

११ अगस्त, १९०८ को सुबह छह बजे खुदीराम बोस को फाँसी के फंदे पर झुलाया जाने वाला था। रात को उसके पास जेलर पहुँचा। जेलर को खुदीराम के प्रति पुत्रवत् स्नेह हो गया था। वह फाँसी के पूर्व की रात को चार रसीले आम लेकर उसके पास पहुँचा और बोला—

"खुदीराम, ये आम मैं तुम्हारे लिए लाया हूँ। तुम इन्हें चूस लो। मेरा यह छोटा उपहार स्वीकार करो। मुझे यही संतोष होगा कि मरनेवाले को मैंने स्वल्प आनंद प्रदान तो किया।"

खुदीराम ने जेलर से वे आम लेकर अपनी कोठरी में रख लिये और कह दिया कि थोड़ी देर बाद मैं अवश्य इन आमों को चूस लूँगा। जेलर आत्मसंतोष की

भावना लिये हुए चला गया।

११ अगस्त को सुबह जेलर फाँसी के लिए खुदीराम बोस को लेने पहुँच गया। खुदीराम तो पहले से ही तैयार था। जेलर ने देखा कि उसके द्वारा दिए गए आम वैसे-के-वैसे रखे हुए हैं। उसने खुदीराम से पूछा—

"क्यों खुदीराम! तुमने ये आम चूसे नहीं। तुमने मेरा उपहार स्वीकार क्यों नहीं किया?"

खुदीराम ने बहुत भोलेपन से उत्तर दिया—

"अरे साहब! जरा सोचिए तो कि सुबह ही जिसको फाँसी के फंदे पर झूलना हो, क्या उसे खाना-पीना सुहाएगा?"

जेलर ने कहा—

"खैर, कोई बात नहीं, मैं ये आम खुद उठाए लेता हूँ और अब इन्हें तुम्हारा उपहार समझकर मैं चूस लूँगा।"

यह कहकर जेलर ने वे चारों आम उठा लिये। उठाते ही आम पिचक गए। खुदीराम बोस जोर से ठहाका मारकर हँसा और काफी देर तक हँसता रहा। उसने जेलर साहब को बुद्धू बनाया था। वास्तव में उसने उन आमों का रस चूस लिया था और हवा भरकर उन्हें फुलाकर रख दिया था। जेलर महोदय उसकी मस्ती को देखकर मुग्ध और आश्चर्यचकित हुए बिना न रह सके। वे सोच रहे थे कि कुछ समय पश्चात् मृत्यु जिसको अपना ग्रास बना लेगी, वह अट्टहास करके किस प्रकार मृत्यु की उपेक्षा कर रहा है। यह जिंदादिली भारतीय क्रांतिकारियों के ही अनुरूप है।

११ अगस्त, १९०८ को प्रातः छह बजे खुदीराम बोस को फाँसी के तख्ते पर खड़ा कर दिया गया। एक हाथ में 'गीता' की पुस्तक लेकर खुदीराम ने मुसकराकर सबका अभिवादन किया और 'वंदेमातरम्' का जयघोष करते हुए फाँसी के फंदे पर झूल गया। उस समय उसकी उम्र केवल अठारह वर्ष की थी।

मृत्यु के उपरांत खुदीराम बोस की सौंदर्यमयी आभा देखने योग्य थी। उसकी अधखुली आँखों से मदहोशी बिखरती हुई मालूम पड़ती थी। उसके भोले चेहरे पर घुँघराली लटों ने घिरकर और भी शोभा-वृद्धि कर दी थी।

गंडक नदी के किनारे खुदीराम बोस का अंतिम संस्कार किया गया। अपार जनसमूह अंतिम संस्कार में सम्मिलित हुआ। लोगों ने चंदन काष्ठ व सुगंधित पदार्थ चिता-ज्वाल को अर्पित किए और चिता के शांत हो जाने तक वहाँ जमे रहे। वे चुटकी-चुटकी राख उठा ले गए और उसे सोने, चाँदी तथा हाथीदाँत की डिब्बियों में बंद करके रखा। कुछ ने तावीजों में वह राख रखकर तावीज बच्चों के गलों में

पहनाए और दुआ माँगी कि ये बच्चे भी खुदीराम बोस जैसे देशभक्त एवं बलिदानी बनें।

किंग्सफोर्ड दोबारा भी बच गया। पहली बार के प्रयास का पुस्तक बम का पार्सल कई महीनों बाद खोला गया तो उसका मसाला खराब हो चुका था। जज साहब भय के मारे बीमार पड़ गए।

दारोगा नंदलाल बनर्जी को क्रांतिकारियों ने गोली से उड़ा दिया।

□

★ गणेश दामोदर सावरकर

गणेश दामोदर सावरकर

कालापानी के कारागार की एक कर्मशाला में उस नौजवान क्रांतिकारी ने तेल-घानी का जुआ अपनी दोनों भुजाओं पर रखा और उसे ठेलता हुआ वह चक्राकार मार्ग पर चल पड़ा। कोल्हू में बैल के स्थान पर जुता हुआ वह नौजवान चलता जा रहा था और एक सूराख में से रिस-रिसकर गरी का तेल एक टब में गिरता जा रहा था। दिन-भर में उसे तीस पौंड तेल निकालकर देना था। तनिक भी असावधानी होने पर या काम पूरा न करने पर पहरेदार के बेंत उसके शरीर की खाल उधेड़ देने के लिए लालायित रहते थे; पर अभी उस बेंत को यह सौभाग्य नहीं मिल पाया था, क्योंकि वह क्रांतिकारी पानीदार था और समय से पूर्व ही वह तीस पौंड तेल निकाल देता था। फिर कुछ देर सुस्ताने की स्थिति में बैठकर चिंतन में डूब जाता था, मानो वह कोई कविता कर रहा हो।

हाँ, सचमुच ही वह युवक कवि था। उसका नाम गणेश दामोदर सावरकर था और उत्तेजक कविताएँ लिखने के अपराध में ही उसे कालेपानी के आजन्म कारावास का उपहार मिला था। सुनने में यह अवश्य ही विचित्र-सा लगेगा कि न तो उसने किसीकी हत्या की थी और न अन्य कोई जघन्य अपराध, फिर भी उसे आजन्म कारावास का दंड दिया गया था। उसका अपराध यही था कि उसने अपनी मातृभाषा मराठी में देशभक्तिपूर्ण कविताएँ लिखी थीं और ब्रिटिश हुकूमत ने उसपर इलजाम लगाया था कि उसने अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध युद्ध छेड़ने

का अपराध किया है।

गणेश सावरकर को इस बात का गर्व था कि उसने अपने छोटे भाई विनायक दामोदर सावरकर के छोड़े हुए कार्य को पूरा करने में जेल का उपहार पाया है। अपने छोटे भाई विनायक सावरकर के लंदन चले जाने पर उसके द्वारा स्थापित 'मित्रमेला' संस्था का काम गणेश सावरकर ने अपने सुयोग्य हाथों में लिया था और कालांतर में उस संस्था को उसने 'अभिनव भारत' नाम से संगठित करके उसे युवकों का प्रेरणास्रोत बना दिया था। देशभक्ति की ज्वलंत भावनाओं से दीप्त नौजवान इस संस्था के सदस्य बनकर मातृभूमि की सेवा की शपथ लेते और अपने प्राणों का बलिदान देने के लिए तैयार रहते थे। गणेश सावरकर का अपराध यही था कि वह प्रसिद्ध क्रांतिकारी विनायक दामोदर सावरकर का बड़ा भाई था और राष्ट्रीय कविताएँ लिखकर नई पीढ़ी को अंग्रेजी हुकूमत के विरुद्ध भड़काता था। इसी अपराध के फलस्वरूप ही गणेश ने कालेपानी की काल कोठरियों का उपहार पाया था।

गणेश सावरकर ने अपने कर्तव्य में कोई त्रुटि नहीं की। उसका शरीर तिल-तिल करके घुल रहा था, पर वह तीस पौंड तेल प्रतिदिन निकालकर दे देता था। वह ब्रिटिश हुकूमत थी, जो उसका तेल निकालने पर तुली हुई थी। आखिरकार वह बीमार पड़ गया और उसके बचने की कोई आशा नहीं रही। उसकी बीमारी का समाचार जब देशवासियों को मिला तो एक तीव्र आंदोलन उठ खड़ा हुआ और ब्रिटिश हुकूमत को विवश होकर उसे सन् १९२२ में छोड़ना पड़ा।

उसके लघु भ्राता डॉक्टर नारायणराव सावरकर की सेवा-शुश्रूषा ने उसे नव जीवन प्रदान किया और इसके उपलक्ष्य में गणेश ने देश को अमूल्य साहित्यिक कृतियाँ प्रदान कीं। १३ जून, १८७९ को जनमे इस क्रांतिकारी ने १६ मार्च, १९४६ को देश की आजादी का चिंतन करते हुए अंतिम साँस ली।

□

★ गुलाबराव ★ चिमनलाल
★ महाराणा बख्तावरसिंह ★ बशीर उल्ला खाँ

इंदौर के सियागंज स्थित छावनी मैदान में अमझेरा के विद्रोही नरेश महाराणा बख्तावरसिंह को फाँसी दिए जाने की तैयारियाँ पूरी हो चुकी थीं। छावनी के इलाके

महाराणा बख्तावरसिंह

में नागरिकों का आवागमन वैसे ही कम होता है और उस दिन तो खास तौर से छावनी की पूरी सीमा पर फौजी गश्त कायम कर दी गई थी कि कोई भी नागरिक उस तरफ झाँककर भी न देख सके। यह प्रबंध जनता को उस ओर जाने से रोकने के लिए नहीं, वरन् इसलिए किया गया था कि महाराणा बख्तावरसिंह को फाँसी से बचाने के लिए उनकी कोई सहायक फौज हमला न कर दे। सरकार के कानों में यह भनक पड़ चुकी थी कि भील लोगों की एक टुकड़ी इंदौर के आसपास देखी गई है।

महाराणा बख्तावरसिंह के साथ उनके साथियों में से दीवान गुलाबराव, चिमनलाल और बशीर उल्ला खाँ को फाँसी दी जाने वाली थी। फाँसी के पूर्व थोड़ा विवाद खड़ा हो गया। फाँसी सभी को एक साथ नहीं, एक के बाद दूसरे को दी जाने वाली थी। महाराणा के साथियों की इच्छा थी कि वे अपने महाराणा को फंदे पर लटकता हुआ न देखें, अत: उन्हें पहले फाँसी दे दी जाए। महाराणा का कथन था कि राजा होने के नाते फाँसी का हक पहले मेरा है, फिर किसी दूसरे का। आखिर शासन ने यही तय किया कि महाराणा को सबसे अंत में फाँसी दी जाए, जिससे वे अपने साथियों को मरते देखकर उस वेदना का दंड भी भोगें।

एक के बाद एक, महाराणा बख्तावरसिंह के साथियों को फाँसी के फंदे पर झुला दिया गया। जब महाराणा को मृत्यु-मंच पर खड़ा किया गया तो सूर्योदय हो चुका था। महाराणा का मुखमंडल भी बलिदान की सर्वोच्च भावना से दीप्त होकर चमक रहा था। अपनी मातृभूमि के लिए प्राण-विसर्जन का हर्ष उनके चेहरे पर व्याप्त था। एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं। एक पृथ्वी पर दो सूर्य भी एक साथ नहीं रह सकते। संसार के भौतिक धरातल को प्रकाशित करनेवाले सूर्य का उदय हो चुका था और लोगों के दिलों में स्वाधीनता का प्रकाश फैलानेवाले सूर्य— महाराणा बख्तावरसिंह को अस्ताचलगामी होना था।

इधर मातृभूमि की वंदना में महाराणा के हाथ जुड़े और उधर उनका शरीर फाँसी के फंदे पर झूलने लगा। एक देशभक्त को अपनी प्यारी मातृभूमि की आजादी के प्रयत्नों का सर्वोच्च पुरस्कार मिल गया।

मध्य प्रदेश के धार जिले के अंतर्गत अमझेरा इस समय आदिवासी-बहुल

प्रदेश का एक छोटा-सा नगर है; पर उस समय उसे एक राज्य की राजधानी होने का गौरव प्राप्त था। उस समय वहाँ के शासक थे वीर शिरोमणि महाराणा बख्तावरसिंह, जो वीरों और विद्वानों दोनों का समान रूप से आदर करते थे।

महाराणा बख्तावरसिंह के पूर्वज मूल रूप से जोधपुर (राजस्थान) के राठौर वंशीय राजा थे। मुगल सम्राट् जहाँगीर ने प्रसन्न होकर उनके वंशजों को अमझेरा का शासक बनाया था। पहले अमझेरा राज्य बहुत बड़ा था, जिसमें भोपावर और दत्तीगाँव भी सम्मिलित थे। कालांतर में अमझेरा, भोपावर और दत्तीगाँव पृथक्-पृथक् राज्य हो गए। सन् १८५७ के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के समय अमझेरा के शासक थे महाराणा बख्तावरसिंह। इनके पिता का नाम राव अजीतसिंह और माता का नाम रानी इंद्रकुँवर था।

महाराणा बख्तावरसिंह की शिक्षा-दीक्षा भी अच्छी हुई थी और शस्त्र-संचालन का प्रशिक्षण भी उन्हें मिला था। उन्होंने सतत अभ्यास से इस कौशल में और अधिक निपुणता प्राप्त की। महाराणा बख्तावरसिंह की अपने समकालीन धार तथा इंदौर के शासकों से अच्छी मित्रता थी और अंग्रेजों ने इन लोगों के मंतव्यों की गंध पाकर ही इनकी गतिविधियों पर निगरानी रखने के लिए इनके राज्यों में अपनी फौजी छावनियाँ स्थापित की थीं तथा पॉलिटिकल एजेंट नियुक्त किए थे। इंदौर के ए.जी.जी. लेफ्टिनेंट एच.एम. डूरंड ने अमझेरा राज्य पर निगरानी रखने के लिए निकटवर्ती भोपावर एवं सरदारपुर में फौजी छावनियों की स्थापना की थी। भोपावर में नियुक्त पॉलिटिकल एजेंट कैप्टेन एचिसन का मुख्य काम यही था कि वह अमझेरा राज्य पर निगरानी रखे और महाराणा बख्तावरसिंह की गतिविधियों की सूचना देता रहे।

महाराणा बख्तावरसिंह और इंदौर के महाराजा तुकोजीराव होलकर द्वितीय को यह सूचना थी कि देश में शीघ्र ही स्वाधीनता संग्राम का बिगुल बजने वाला है। अधीर होकर वे उस समय की प्रतीक्षा कर रहे थे, जब देश के स्वाधीनता संग्राम में उन्हें अपनी तलवार के जौहर दिखाने को मिलेंगे। आखिर वह घड़ी आ ही गई। विद्रोह का पहला विस्फोट बैरकपुर में मंगल पांडे ने किया और वह आग मेरठ तथा दिल्ली तक जा पहुँची। देखते-ही-देखते स्वाधीनता संग्राम की लपटें देश-भर में फैलने लगीं।

इंदौर के महाराजा तुकोजीराव होलकर ने रेजीडेंसी पर हमला बोल दिया। इस हमले से लेफ्टिनेंट डूरंड हक्का-बक्का रह गया। आक्रमण इतना आकस्मिक और जोरदार था कि डूरंड से भागते ही बना। भागकर वह होशंगाबाद पहुँच गया। उस समय होशंगाबाद में अंग्रेजी छावनी थी।

अमझेरा के शासक महाराणा बख्तावरसिंह भला कब चुप बैठने वाले थे! उन्होंने यह उचित समझा कि उनकी गतिविधियों पर निगरानी रखने के लिए भोपावर में जो पॉलिटिकल एजेंट रखा गया है, उसपर आक्रमण करके जासूसी के उस अड्डे को समाप्त किया जाए। उन्हें स्वयं अमझेरा में विद्रोहाग्नि भड़कानी थी, इसलिए उन्होंने संदला के श्री भवानीसिंह तथा अपने दीवान गुलाबराव के नेतृत्व में एक सशस्त्र सेना भोपावर पर आक्रमण करने के लिए भेज दी। महाराणा ने अपनी सेना में पहले से ही अफगान, मकरानी और विलायती सैनिक रख छोड़े थे।

महाराणा बख्तावरसिंह द्वारा भेजी गई सेना ने रात्रि के समय भोपावर पर आक्रमण किया। उस समय भोपावर में जो अंग्रेजी सेना थी, वह मालव भीलों की थी। इस सेना के अधिकांश सैनिक क्रांतिकारी सेना के साथ मिल गए। भोपावर के नागरिकों ने भी क्रांतिकारी सेना का साथ दिया। एजेंसी को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया। परिणाम यह हुआ कि अंग्रेज अधिकारियों को अपने परिवारों और बचे-खुचे सैनिकों के साथ झाबुआ की ओर भागना पड़ा।

अमझेरा में भी क्रांति का बिगुल बज उठा। महाराणा के नेतृत्व में उनकी सेना और नागरिकों ने मिलकर वहाँ की अंग्रेजी एजेंसी पर आक्रमण कर दिया। एक नागरिक मोहनलाल ने अंग्रेजी झंडा उतारकर अपनी रियासत का झंडा लगा दिया। महाराणा ने अमझेरा राज्य से कंपनी के शासन की समाप्ति की घोषणा कर दी।

भोपावर के पॉलिटिकल एजेंट कैप्टेन एचिसन, जो झाबुआ की तरफ भागे थे, अंततोगत्वा इंदौर पहुँच गए और इंदौर में अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। जब इंदौर के विद्रोहियों पर काबू पा लिया गया तो होशंगाबाद से लेफ्टिनेंट ड्रूरंड फिर इंदौर पहुँच गए और यह तय हुआ कि कैप्टेन एचिसन फिर भोपावर पर अधिकार करें।

२४ जुलाई, १८५७ को अपने साथ भारी सेना ले जाकर कैप्टेन एचिसन ने भोपावर पर फिर अधिकार कर लिया और क्रांतिकारी सेना के दीवान गुलाबराव, कामदार भवानीसिंह और कामदार चिमनलाल को कैद करके उन्हें जेल में डाल दिया।

भोपावर और इंदौर में अपनी शक्ति सुदृढ़ कर लेने पर भी अंग्रेजों की हिम्मत अमझेरा पर दृष्टि डालने की नहीं हुई। महाराणा बख्तावरसिंह ने स्वयं ही यह विचार किया कि भोपावर एजेंसी पर फिर धावा बोलकर उसे नष्ट किया जाए।

१० अक्तूबर, १८५७ को महाराणा बख्तावरसिंह की सेना ने भोपावर पर हमला बोल दिया। पहले की भाँति वहाँ की रक्षा के लिए नियुक्त सेना के कुछ सैनिक क्रांतिकारी सेना के साथ मिल गए और कुछ भाग गए। भोपावर फिर

क्रांतिकारी सेना के हाथों में आ गया।

भोपावर पर अधिकार कर लेने के पश्चात् क्रांतिकारी सेना अब सरदारपुर की तरफ बढ़ी, जहाँ अंग्रेजों की काफी बड़ी सेना थी। सरदारपुर के सूबेदार को भोपावर पर हुए आक्रमण की सूचना मिल गई थी और उसे सरदारपुर पर आक्रमण की आशंका भी थी। इसलिए उसने मुकाबला करने की तैयारी कर ली थी।

क्रांतिकारी सेना ने जब सरदारपुर पर आक्रमण किया तो सरदारपुर की सेना ने क्रांतिकारियों पर तोपों से गोले बरसाना प्रारंभ कर दिया। क्रांतिकारी सेना के पास तोपें नहीं थीं। वह अंग्रेजी सेना की तोपों की मार के आगे नहीं ठहर सकी। फिर भी उसने आक्रमण का घेरा उठाया नहीं। महाराणा बख्तावरसिंह की सेना ने सूझबूझ से काम लिया। उन्होंने अपनी सेना की एक छोटी टुकड़ी वहीं रहने दी, जिधर से आक्रमण किया गया था। सरदारपुर की सेना उस टुकड़ी पर गोले बरसाती रही। उधर महाराणा की सेना ने अपनी सेना का मुख्य भाग नदी की तरफ भेज दिया, जिधर से दूसरा मोरचा खोलना था। नदी के उस पार स्थित नगर राजगढ़ व धार के नागरिकों ने क्रांतिकारी सेना का साथ दिया और नदी की ओर से सरदारपुर पर भयानक आक्रमण हो गया। घमासान युद्ध हुआ। दोनों ओर से बहुत बड़ी संख्या में लोग हताहत हुए। अंततोगत्वा विजय क्रांतिकारी सेना को मिली। सरदारपुर पर क्रांतिकारी सेना ने अधिकार कर लिया।

लूटे गए तोप-गोला आदि सामान को लेकर विजयी क्रांतिकारी सेना ने धार की ओर कूच किया। महाराणा बख्तावरसिंह पहले ही धार पहुँच चुके थे। उन्होंने तथा धार नरेश श्री भीमाराव भोंसले ने विजयी क्रांतिकारी सेना का जोरदार स्वागत किया।

क्रांतिकारी सेना के हौसले बुलंद थे। अब उसने महू, मानपुर और मंडलेश्वर में स्थित अंग्रेजी छावनियों पर आक्रमण का निश्चय कर डाला। इस आक्रमण का नेतृत्व स्वयं महाराणा बख्तावरसिंह को करना था। उन्होंने अपनी सेना को तीन भागों में विभक्त किया और आक्रमण के लिए कूच कर दिया।

अंग्रेजी छावनियों में जब इस आक्रमण के समाचार पहुँचे तो वहाँ खलबली मच गई। अंग्रेजों ने यह अनुमान लगा लिया कि वे युद्ध में महाराणा की सेना से नहीं जीत पाएँगे। उन्होंने चालाकी से काम लिया। लेफ्टिनेंट डूरंड ने महाराणा के पास समाचार भेजा कि हम लोग अमझेरा को एक स्वतंत्र राज्य मान लेंगे और अब वहाँ पॉलिटिकल एजेंट नियुक्त नहीं किया जाएगा। उसने यह भी कहलवाया कि आप महू पहुँचकर संधि की विस्तृत शर्तें स्वयं ही तय कर लीजिए।

महाराणा बख्तावरसिंह इस अंग्रेजी जाल में फँस गए। वे अपने दस योद्धाओं

के साथ लालगढ़ किले से संधिवार्त्ता के लिए महू जा पहुँचे। महू में डूरंड ने उनका शानदार स्वागत किया और उनके सम्मान में कार्यक्रम चलते रहे। एक दिन महाराणा अपने साथियों के साथ नदी-स्नान के लिए गए। अपने हथियार किनारे पर रखकर जब वे लोग नदी में स्नान करने लगे तो अंग्रेजी सेना के छिपे हुए सैनिकों ने उनके हथियारों पर कब्जा कर लिया और महाराणा तथा उनके निहत्थे साथियों को गिरफ्तार कर लिया। अमझेरा का सिंह अब अंग्रेजों के कब्जे में था।

न्याय का नाटक रचा गया और २१ दिसंबर, १८५७ को महाराणा बख्तावरसिंह और उनके कुछ साथियों को मृत्युदंड सुना दिया गया।

महाराणा और उनके दल को इंदौर पहुँचाया गया, जहाँ १० फरवरी, १८५८ को उन्हें सियागंज स्थित छावनी मैदान में फाँसी पर झुला दिया गया। स्वाधीनता का वह पुजारी अपनी मातृभूमि के लिए अपने जीवन की बलि दे गया।

□

★ गौतम डोरे ★ मल्लू डोरे

भारत माता की स्वाधीनता का अमर पुजारी, अन्याय व उत्पीड़न का घोर शत्रु अल्लूरी सीताराम राजू बलिदान की वेदी पर अपने प्राणों की आहुति दे चुका था। ब्रिटिश शासन ने सोचा होगा कि बागियों से अब मुक्ति मिली, पर ऐसा नहीं हुआ। राजू के दोनों ही विश्वासपात्र लेफ्टिनेंट गौतम डोरे एवं मल्लू डोरे सक्रिय हो उठे और अपने साथी राजू की आन निभाने का उत्तरदायित्व उन्होंने अपने ऊपर ले लिया।

उस दिन जब गौतम डोरे एक गाँव में पहुँचा तो गाँव के एक आदिवासी ने उसे बताया कि उसकी खोज में पुलिस का एक दल कुछ समय पूर्व ही वहाँ पहुँचा था। सभी गाँववालों से पुलिस दल के मुखिया ने पूछताछ की थी, पर गाँव में से किसीने कोई भेद नहीं दिया। ग्रामीण आदिवासी ने गौतम को परामर्श दिया कि कुछ दिन के लिए या तो वे लोग कहीं और चले जाएँ या अपनी क्रांतिकारी गतिविधियाँ बंद रखें। गौतम के दल को यह परामर्श पसंद आया और लगभग एक माह तक उन्होंने कोई वारदात नहीं की। पुलिस ने समझा कि क्रांतिकारियों का दल भाग खड़ा हुआ है।

पुलिस ने भी उस क्षेत्र को छोड़ने से पहले अंतिम तलाश संपन्न करनी चाही। ७ जून, १९२४ को पुलिस का विशाल दल तीन समूहों में बँट गया और

प्रत्येक समूह ने क्रांतिकारियों के छिपने की सभी संभावित जगहों की तलाशी लेनी आरंभ कर दी। पुलिस के एक समूह को नदी के बेहड़ों में सात-आठ क्रांतिकारियों का दल दिखाई दिया। पुलिस को देखते ही वह दल छिपने का प्रयत्न करने लगा। पुलिस के उस समूह ने क्रांतिकारी दल पर गोलियाँ चलाईं। गोलियों की आवाज सुनकर पुलिस के शेष दो समूह भी वहाँ पहुँच गए और गोलियाँ दागने में वे भी सम्मिलित हो गए। गौतम डोरे ने पुलिस के तीनों समूहों का डटकर मुकाबला किया। उसके ऊपर तीन तरफ से गोलियाँ चल रही थीं और वह पुलिस के तीनों समूहों पर गोलियाँ दागकर उन्हें पीछे धकेल रहा था। अंत में बहुसंख्यक और सुसज्जित पुलिस दल के सामने गौतम का दल अधिक समय तक मुकाबला नहीं कर सका। उसके कुछ साथी मारे गए तथा वह स्वयं गंभीर रूप से घायल हुआ और कुछ समय पश्चात् ही उसकी जीवन लीला समाप्त हो गई। भारत माता की स्वाधीनता के लिए उसने मृत्यु का वरण किया।

अब गौतम का भाई मल्लू डोरे अकेला रह गया था। घायल हो जाने के कारण वह किसी दूरस्थ स्थान तक नहीं जा सका। एक दिन वह पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया। उसपर मुकदमा चला और १९ जून, १९२४ को उसे फाँसी पर लटका दिया गया।

इस प्रकार अल्लूरी सीताराम राजू द्वारा प्रारंभ किए गए 'फितूरी विद्रोह' का दमन कर दिया गया। लगभग सभी आंदोलनकारियों ने वीरता के साथ मृत्यु का वरण कर शहीद का पद अर्जित किया।

□

★ चंपक रमन पिल्लई

चंपक रमन पिल्लई

भारत के एक क्रांतिकारी डॉ. चंपक रमन पिल्लई ने हिटलर का विरोध तब किया, जब जर्मनी के राजनीतिक आकाश में उसका उदय बड़ी तेजी के साथ हो रहा था और उसके पराक्रम की धूप से यूरोप के बड़े-बड़े नेता झुलस रहे थे। जर्मनी के अन्य नेता भी हिटलर की धाक मानने लगे थे और उसका विरोध करने का साहस किसीमें भी नहीं था। डॉ. पिल्लई ने भारत के संबंध में हिटलर का विरोध करते हुए कहा—

"मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि आप जैसा महान् नेता भी अपने दिल में इतने ओछे विचार रखता होगा। आर्य रक्त हममें भी है और आपमें भी। आप खून को महत्त्व न देकर गोरी चमड़ी को महत्त्व दे रहे हैं। हम लोग रंग से काले भले ही हों, पर दिल से काले नहीं होते।"

इस काँटे की चुभन से हिटलर तड़पकर बोल उठा—

"देखिए मि. पिल्लई! आप खुल्लम-खुल्ला हम लोगों को दिल का काला बता रहे हैं।"

पिल्लई का उत्तर था—

"हाँ, बता रहा हूँ और वह भी आपके मुँह के सामने और आप लोगों के बीच जर्मनी में रहकर। भारतीय लोग मौत के भय से भी सत्य को प्रकट करने से चूकते नहीं हैं।"

इतना कहकर डॉ. चंपक रमन पिल्लई हिटलर के पास से चले गए। चोट खाए हुए नाग की तरह हिटलर फुफकारता रहा। वह पिल्लई को कैसे छोड़ता!

कुछ दिनों बाद ही दुनिया को सुनने को मिला कि (२३ मई, १९३४ को) बर्लिन में भारतीय क्रांतिकारी डॉ. चंपक रमन पिल्लई की मृत्यु हो गई। यह मृत्यु स्वाभाविक न होकर सुनियोजित थी। डॉ. पिल्लई को नाजियों द्वारा जहर दे दिया गया। यह वही जहर तो था, जो उनके दिल में था!

प्रश्न उठता है कि पिल्लई कौन था?

चंपक रमन पिल्लई भारत का एक होनहार छात्र था, जिसकी प्रतिभा से प्रभावित होकर जंतु विज्ञान विशेषज्ञ श्री स्कर्टलैंड ने उसकी यूरोप में शिक्षा प्राप्त करने की सिफारिश भारत सरकार से की थी।

पिल्लई का जन्म भारत में केरल के त्रिवेंद्रम नगर में १५ सितंबर, १८९१ में हुआ था। अपने बाल्यकाल में पिल्लई उत्तम कोटि का खिलाड़ी था। बाद में वह विश्व राजनीति का खिलाड़ी बन बैठा। भारत में रहते हुए भी छात्र पिल्लई ने ब्रिटिश विरोधी आंदोलनों में भाग लिया और पुलिस का कोपभाजन बना। उसे पुलिस की हिरासत में भी रहना पड़ा था।

सत्रह वर्ष की आयु में ही पिल्लई उच्च अध्ययन के लिए सितंबर १९०८ में यूरोप के लिए प्रस्थित हो गए और कोलंबो होते हुए इटली जा पहुँचे। इटली के नेपल्स नगर में उन्होंने एक विद्यालय में अध्ययन प्रारंभ किया। विदेशी भाषाएँ सीखने में उनकी प्रतिभा प्रकट हुई और बारह भाषाओं पर उनका अच्छा अधिकार हो गया। कुछ समय तक वे फ्रांस और स्विट्जरलैंड में भी रहे। जर्मनी पहुँचकर बर्लिन में उन्होंने अपने अध्ययन के क्रम को और आगे बढ़ाया। बर्लिन विश्वविद्यालय से पिल्लई ने तीन विषयों में डॉक्टरेट की उपाधियाँ अर्जित कीं। ये विषय थे— इंजीनियरिंग, राजनीति विज्ञान और अर्थशास्त्र।

इंजीनियरिंग के क्षेत्र में पिल्लई की प्रतिभा का लोहा जर्मन लोग भी मानने लगे और वहाँ के बड़े-बड़े उद्योगपति उनके परामर्श की इच्छा रखने लगे। स्वयं जर्मन सरकार ने उन्हें परामर्शदाता इंजीनियर के रूप में नियुक्त किया।

यूरोप के आकाश में प्रथम विश्वयुद्ध के बादल घिर गए। डॉ. चंपक रमन पिल्लई ने इसे भारत की आजादी के लिए स्वर्ण अवसर समझा। अब उन्होंने अपने आपको पूरी तरह से भारत की आजादी के लिए समर्पित कर दिया। जर्मनी में अपने जैसे कई और दीवाने भी उन्हें मिल गए। सन् १९१४ में उन्होंने बर्लिन में भारतीय राष्ट्रीय दल की स्थापना की। इस दल में लाला हरदयाल, तारकनाथ दास, मोहम्मद बरकतुल्ला, सी.के. चक्रवर्ती, वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय, नंबियार, राजा महेंद्रप्रताप

और हरंबलाल गुप्ता जैसे उज्ज्वल रत्न भी थे।

भारतीय क्रांतिकारियों के इस दल ने जर्मन सरकार को प्रेरित किया कि वह भारत की आजादी के लिए सक्रिय कदम उठाए। परिणामस्वरूप भारतीयों की बर्लिन कमेटी की स्थापना हुई, जो भारत की आजादी की योजनाओं को क्रियान्वित करने में जुट गई।

डॉ. चंपक रमन पिल्लई ने नाविक बेड़े में सम्मिलित होकर समुद्री युद्धों में दक्षता प्राप्त कर ली। उन दिनों जर्मनी की 'एमडन' नाम की पनडुब्बी का यूरोप में बहुत आतंक था। पिल्लई को इस युद्धपोत में द्वितीय कमांडर बनने का सौभाग्य मिला। इस युद्धपोत द्वारा उन्होंने कई ब्रिटिश जहाजों को डुबोया। ब्रिटिश सैनिक ठिकानों पर बमवर्षा के लिए वे भारत के दक्षिण-पूर्वी तट तक पहुँच गए।

डॉ. पिल्लई की योजना थी कि अंडमान द्वीप समूह पर अधिकार कर लिया जाए। उस द्वीप पर अधिकार करके वे कालेपानी की सजा पा रहे वीर सावरकर को मुक्त कराना चाहते थे। उनकी यह योजना सफल नहीं हो सकी, क्योंकि ११ नवंबर, १९१४ को 'एमडन' पनडुब्बी को नष्ट कर दिया गया।

'एमडन' के नष्ट हो जाने पर पिल्लई एक नाव द्वारा भारत के किनारे जा लगे। मछुए के रूप में एक मछेरे परिवार में रहकर उन्होंने स्वयं को गिरफ्तार होने से बचाया। वे मद्रास जा पहुँचे और कोचीन के महाराज से भी उन्होंने भेंट की। युद्ध के दिन थे ही। गोपनीय ढंग से वे अंग्रेजों के विरुद्ध बगावत भड़काने लगे। उनकी गिरफ्तारी के लिए ब्रिटिश सरकार ने एक लाख रुपए का पुरस्कार घोषित किया।

अंग्रेज जासूसों की आँखों में धूल झोंककर डॉ. चंपक रमन पिल्लई अफगानिस्तान जा पहुँचे और वहाँ राजा महेंद्रप्रताप द्वारा स्थापित 'आजाद हिंद सरकार' में उन्हें विदेश मंत्री नियुक्त किया गया।

अफगानिस्तान में भारत की आजादी के प्रयत्न विफल हो जाने पर डॉ. पिल्लई फिर जर्मनी पहुँच गए और पहले से भी अधिक सम्मान व महत्त्व उन्होंने अर्जित किया। वे 'जर्मन राष्ट्रवादी दल' के सदस्य चुने गए। किसी भी विदेशी को दिया गया यह एक महान् गौरव था।

डॉ. पिल्लई विचारों से बहुत उदार और प्रगतिशील थे। कोई भी व्यक्ति जाति से महान् होता है, वे यह नहीं मानते थे। उनका मत था कि कर्म ही मनुष्य को महान् बनाते हैं। दलित और शोषित व्यक्तियों की मुक्ति के लिए भी वे प्रयास करते रहे। उन्होंने प्रसिद्ध अमेरिकी लेखक कर्नल एडविन एमर्सन के सहयोग से 'दलित वर्ग की लीग' की स्थापना भी की। वे उपनिवेशवाद के विरुद्ध थे।

अफ्रीका पहुँचकर डॉ. पिल्लई ने गांधीजी से भेंट की तथा अन्य अफ्रीकी नेताओं से मिले।

यूरोप में जब प्रथम महायुद्ध समाप्त हो गया तो वारसा की प्रसिद्ध संधि हुई। डॉ. पिल्लई ने इस संधि का घोर विरोध किया और अपनी एक आठ सूत्री योजना प्रस्तुत कर दी। इन आठ सूत्रों में एक सूत्र यह भी था कि ब्रिटिश पंजे से भारत को मुक्त किया जाए। डॉ. पिल्लई की इस आठ सूत्री योजना ने यूरोप में तहलका मचा दिया।

जर्मनी चाहता था कि डॉ. पिल्लई की सेवाओं के उपलक्ष्य में उन्हें पुरस्कृत किया जाए। जब यह विचार उन्हें मालूम हुआ तो उन्होंने धनराशि के रूप में कोई भी पुरस्कार लेने से इनकार कर दिया। सेवा के बदले में मेवा ग्रहण क़रने के पक्ष में वे नहीं थे।

डॉ. पिल्लई के मन में अपने देश के प्रति बड़ा अनुराग था। उसका महत्त्व बढ़ाने के लिए वे कोई भी अवसर हाथ से नहीं छोड़ते थे। जब लिपजिग में सन् १९२४ में अंतरराष्ट्रीय मेला लगा तो डॉ. पिल्लई ने भारत की बनी हुई वस्तुओं के प्रदर्शन का आयोजन कर डाला।

अपने जर्मनी प्रवास में भारत से वहाँ पहुँचनेवाले व्यक्तियों से भेंट करके वे भारत मुक्ति की योजनाओं पर विचार किया करते थे। इस क्रम में पं. मोतीलाल नेहरू, पं. जवाहरलाल नेहरू और विट्ठलभाई पटेल से उनकी अंतरंग वार्त्ताएँ हुई थीं। सन् १९३३ में जब अपना इलाज कराने के लिए सुभाषचंद्र बोस विएना पहुँचे तो पिल्लई ने उनके सामने अपना हृदय खोलकर रख दिया। देश के दो दीवानों की वह ऐतिहासिक भेंट थी।

डॉ. पिल्लई के पास वैभव व ऐश्वर्य की कमी नहीं थी और कई यूरोपियन महिलाओं ने उनके आसपास चक्कर लगाए; पर उन्होंने शादी की तो लक्ष्मीबाई नाम की एक भारतीय महाराष्ट्रियन महिला के साथ। दोनों का अच्छा साथ रहा; पर उनका दांपत्य जीवन अधिक समय तक नहीं चल सका। जैसाकि प्रारंभ में ही कहा जा चुका है कि हिटलर से खटक जाने के कारण डॉ. पिल्लई को नाजियों का कोपभाजन होना पड़ा। जर्मनी में उनकी सारी संपत्ति जब्त कर ली गई और उन्हें जहर दे दिया गया। एक दिन नाजियों ने उनपर खुला आक्रमण करके उनकी इतनी पिटाई की कि वे मूर्च्छित हो गए।

डॉ. पिल्लई के शरीर में विष फैल गया था। जर्मनी में उनको इलाज की सुविधा नहीं दी गई। अपने इलाज के लिए उन्हें प्रशिया जाना पड़ा; पर वहाँ भी नाजियों के प्रभाव से उनके इलाज को महत्त्व नहीं दिया गया। प्रशिया के सरकारी

अस्पताल में ही संदिग्ध अवस्था में भारत के महान् क्रांतिकारी योद्धा डॉ. चंपक रमन पिल्लई का २३ मई, १९३४ को देहांत हो गया। वे भारत की आजादी के लिए शहीद हो गए।

डॉ. पिल्लई की अंतिम इच्छा थी कि उनकी चिता-भस्म स्वाधीन भारत के प्रथम सैनिक पोत द्वारा उनके गृह नगर त्रिवेंद्रम (केरल) में प्रवाहित की जाए। १७ सितंबर, १९६६ को उनका अस्थिकलश नौसेनाध्यक्ष एम. नंदा ने बंबई के महापौर एस.आर. पटकर से प्राप्त कर प्रथम सैनिक पोत आई.एन.एस. दिल्ली के द्वारा कोचीन के लिए प्रस्थान किया। कलश के साथ श्रीमती लक्ष्मी पिल्लई थीं। कोचीन में डॉ. पिल्लई के अस्थिकलश का भारी स्वागत किया गया। वहाँ से वह अस्थिकलश त्रिवेंद्रम ले जाया गया और विधिवत् संस्कार के साथ उसका जलप्रवाह किया गया।

डॉ. चंपक रमन पिल्लई एक मौन साधक और बलिदानी थे। उनका बलिदान देश के बहुत काम आया है।

□

★ चारुचंद्र बोस

१० फरवरी, १९०९ का दिन अलीपुर के सरकारी वकील आशुतोष विश्वास के लिए मुक्ति का दिवस बन गया। उसे देशद्रोही के नारकीय जीवन से मुक्ति मिली।

सरकारी वकील आशुतोष विश्वास क्रांतिकारियों की आँखों में किरकिरी जैसा खटक रहा था। क्रांतिकारियों को गिरफ्तार कराने, उनके विरुद्ध झूठे साक्ष्य प्रस्तुत करने और उन्हें कठोर-से-कठोर दंड दिलाने में उसे हार्दिक आनंद मिलता था। आशुतोष की अंग्रेज भक्ति के कारण भारत मुक्ति की योजनाएँ विफल होती जा रही थीं। ब्रिटिश सरकार की दृष्टि में वह काम का आदमी था, पर क्रांतिकारियों की दृष्टि में वह एक काँटा था, जिसे रास्ते से हटाया जाना आवश्यक था।

देशद्रोही आशुतोष अपने संकटों के प्रति सजग भी था। वह ऐसे प्रत्येक व्यक्ति से दूर रहता, जो उसे उठाकर पटक सकता हो। अँधेरे में वह कभी घर से बाहर नहीं निकलता था और अपरिचित व्यक्तियों से कभी सीधा संपर्क नहीं रखता था। सतर्कता के कवच में स्वयं को सुरक्षित समझकर वह क्रांतिकारियों को फाँसने

के लिए नित नए जाल तैयार करता रहता था। उसे क्या पता था कि उसकी मौत ऐसे बलिष्ठ व्यक्ति के हाथों लिखी थी, जिसे देखकर भय के स्थान पर करुणा और सहानुभूति का ही उद्रेक होता था।

चारुचंद्र बोस एक दुबला-पतला और बीमार जैसा दिखाई पड़नेवाला लड़का था; जो जन्म से ही अपंग था। उसके दाहिने हाथ में हथेली और उँगलियाँ नहीं थीं। जब वह चलता तो लगता कि अब गिरा, तब गिरा। प्रकृति की प्रतिकूलता के साथ ही सांसारिक स्थितियाँ भी उससे बदला ले रही थीं। उसके सिर पर किसीकी छाया नहीं थी। अपने एक हाथ से ही वह मेहनत-मजदूरी करता और अपना पेट भरता था। कई छापेखानों में काम करके उसने अपनी जीविका का उपार्जन किया था। यदि चारुचंद्र के पास कोई धन था तो वह मातृभूमि की भक्ति का था। उसके दुबले-पतले शरीर के अंदर एक शेर का दिल था। उसके मन में यह बात समा गई कि यदि मैं देशद्रोही आशुतोष विश्वास को क्रांतिकारियों के रास्ते से हटा सका तो मातृभूमि की बड़ी सेवा कर सकूँगा।

विचारों का कौमार्य संकल्पों के यौवन में परिणत हो गया। चारुचंद्र कहीं से एक पिस्तौल लाया और निर्जन वन में पहुँचकर उसे चलाने तथा निशानेबाजी का अभ्यास करने लगा। वह दिन आ ही गया, जब वह अपने साहस, संकल्प और निशानेबाजी की परीक्षा देने अलीपुर के न्यायालय में जा पहुँचा।

आशुतोष विश्वास ने न्यायालय से निकलकर प्रांगण में प्रवेश किया ही था कि एक सनसनाती हुई गोली उसके शरीर के अंदर प्रवेश कर गई। उसने मुड़कर देखा तो साक्षात् काल के रूप में सुकुमार चारुचंद्र उसके सम्मुख था। 'अरे बाप रे!' कहकर आशुतोष विश्वास अपनी पूरी शक्ति लगाकर भागा; पर शेर ने एक ही छलाँग में अपने शिकार को दबोच लिया। इस बार चारुचंद्र ने आशुतोष विश्वास के शरीर से पिस्तौल सटाकर उसपर गोली चला दी। गोली इस पार से उस पार निकल गई।

चारुचंद्र की वीरता और सूझबूझ उसकी पिस्तौल चलाने की क्रिया में ही थी। अपने पंजेविहीन रुंड जैसे हाथ से उसने पिस्तौल रस्सी के सहारे कसकर बाँध रखी थी। अपने दूसरे हाथ से वह पिस्तौल का घोड़ा दबा रहा था। इतने निकट से लगी हुई गोलियों ने देशद्रोही आशुतोष को 'चकरघिन्नी' बना दिया। बरामदे में चक्राकार घूमता हुआ वह धड़ाम से गिर पड़ा। क्रांतिकारियों के रास्ते से एक तीखा काँटा हट गया था।

अब चारुचंद्र की बारी थी। एक सिपाही ने पीछे से लपककर उसे बाँहों में कस लिया। इतना होने पर भी चारुचंद्र ने अपने हाथ को मुक्त करके सिपाही पर

गोली दागी; पर उसका निशाना चूक गया। एक अन्य सिपाही ने शीघ्र पहुँचकर अपने साथी सिपाही की सहायता की और दोनों ने मिलकर चारुचंद्र को वश में कर लिया। लातों और घूँसों से उसे बुरी तरह मारा गया; पर कोई भी उसकी विजय की मुसकान नहीं छीन सका।

अदालत में चारुचंद्र बोस पर मुकदमा चलाया गया। उसने बचने का कोई प्रयत्न नहीं किया। बड़ी ही स्थितप्रज्ञ दशा में वह अदालत की कार्यवाही देखता और सुनता रहा; जैसे वह स्वयं अभियुक्त नहीं, कोई दर्शक मात्र हो।

चारुचंद्र को फाँसी का दंड सुनाया गया। जब उसे फाँसी के तख्ते पर ले जाया गया तो उसने विजयमाल के समान फाँसी का फंदा गले में पहन लिया। उसके चेहरे पर एक भी शिकन नहीं थी। अलीपुर केंद्रीय कारागार में उसे १९ मार्च, १९०९ को फाँसी दी गई।

उसने सिद्ध कर दिया कि चंद्रकिरण भी लौह भस्म कर सकती है।

□

★ चिदंबरम् पिल्लै ★ पद्मनाभ आयंगार ★ सुब्रह्मण्यम शिव

"भाइयो! मैं आपसे यह कहने के लिए खड़ा हुआ हूँ कि यदि हम लोग संगठित नहीं हुए तो ये अंग्रेज लोग हमारा शोषण करते रहेंगे, हमारे दम पर ये लोग मजे उड़ाते रहेंगे, हमारे देश का सारा धन ये लोग विलायत भेजते रहेंगे और हमें भूखों मरने के लिए, कुलीगिरी करने के लिए तथा अपनी गुलामी करवाने के लिए विवश करते रहेंगे। हमारा कर्तव्य है कि हम उन सभी वस्तुओं का बहिष्कार करें, जिनके माध्यम से ये लोग हमारा शोषण कर रहे हैं। हमें अंग्रेजी वस्तुओं का बहिष्कार करके स्वदेशी वस्तुओं को अपनाना चाहिए। क्या आपको मालूम नहीं है

चिदंबरम् पिल्लै

कि इनकी 'ब्रिटिश इंडिया नेवीगेशन कंपनी' हम लोगों से कितना अंधाधुंध किराया वसूल करती है और कोई मानवीय सुविधाएँ न देकर अपने जहाजों में हमें भेड़-बकरियों की तरह ठूँस देती है। हम लोगों का कर्तव्य है कि इनको मुँहतोड़ उत्तर देने के लिए हम भी जहाज यात्रियों के लिए कोई कंपनी बनाएँ और संकल्प करें कि हम अपनी कंपनी के जहाजों से ही यात्रा करेंगे।''

यह ओजस्वी भाषण था दक्षिण भारत के ट्यूटीकोरिन नगर के प्रसिद्ध वकील चिदंबरम् पिल्लै का। भाषण का प्रभाव लोगों पर जादू जैसा हुआ। जो धनिक व्यापारी थे, उन्होंने अपनी कंपनी बनाने की दिशा में प्रयत्न किया और जो सामान्य जन थे, उन्होंने हर अंग्रेजी वस्तु के बहिष्कार का संकल्प किया। परिणाम यह निकला कि ट्यूटीकोरिन में 'स्वदेशी स्टीम नेवीगेशन कंपनी' की स्थापना हो गई और ब्रिटिश इंडिया नेवीगेशन कंपनी का बहिष्कार होने लगा।

ट्यूटीकोरिन की अंग्रेजी हुकूमत भला यह कैसे सहन कर सकती थी कि देशी लोग उसके मुकाबले में खड़े हों और मिलनेवाले लाभों से उन्हें वंचित करें। अंग्रेजों का जातिवाद भड़क उठा। वे संगठित हो गए। उनका नेतृत्व किया वहाँ के अंग्रेज मजिस्ट्रेट मि. वालर ने। अंग्रेजों ने अपने जहाजों का किराया इतना कम कर दिया कि सभी लोग उनकी ओर आकृष्ट हों। इतना होने पर भी भारतीय लोग महँगा किराया देकर भारतीय जहाजों में ही यात्रा करते थे। अंग्रेजों ने बात-बात में कानूनी अड़ंगेबाजी प्रारंभ कर दी। इसपर भी भारतीय विचलित नहीं हुए।

चिदंबरम् पिल्लै का दिमाग बहुत तेज चलता था। जब उन्होंने देखा कि अंग्रेज लोग हमारे कदम-कदम पर अड़ंगे डाल रहे हैं तो उन्होंने उनके विरुद्ध एक नया मोरचा खोलने का निश्चय किया।

ट्यूटीकोरिन में अंग्रेजों का एक कारखाना था, जिसके द्वारा उन्हें काफी मुनाफा हो रहा था। चिदंबरम् पिल्लै ने उस कारखाने के भारतीय मजदूरों को भड़काकर एक आंदोलन प्रारंभ करा दिया। इस काम में पिल्लै के सहयोगी हुए स्थानीय प्रभावशाली नेता श्री सुब्रह्मण्यम शिव तथा श्री पद्मनाभ आयंगार। मजदूरों ने माँग की कि हमारा वेतन बढ़ाया जाए, हमें मुनाफे में से हिस्सा दिया जाए और हमारी रहन-सहन की सुविधाओं में सुधार किया जाए। मजदूर आंदोलन उग्र-से-उग्रतर होता गया और कारखाने के मालिकों को झुकना ही पड़ा तथा उन्हें मजदूरों की माँगें मंजूर करनी पड़ीं।

उन्हीं दिनों फरवरी १९०८ में बंगाल के विद्रोही नेता विपिनचंद्र पाल जेल से रिहा कर दिए गए। सारे देश ने उनकी रिहाई की खुशियाँ मनाईं। ट्यूटीकोरिन में

भी जुलूस एवं आमसभाओं के रूप में खुशियाँ मनाई गईं और राष्ट्रीय नेता विपिनचंद्र पाल के नाम पर नि:शुल्क विद्यालय तथा चिकित्सालय खोले गए। राष्ट्रीय नारों से नगर की गली-गली गूँजने लगी।

दूसरे मोरचे पर भी उनकी विजय तथा भारतीय राष्ट्रीयता के अभ्युदय से अंग्रेज लोग जल-भुन उठे। उन्होंने सोचा कि यदि यह वातावरण फैलने दिया गया तो समस्त दक्षिण भारत में अंग्रेज विरोधी लहर उठ खड़ी होगी और अंग्रेजी साम्राज्य की ईंटें खिसकने लगेंगी। स्वदेशी आंदोलन का दमन करने के लिए उन्होंने नेताओं को दंडित करने का रास्ता अपनाया। मजिस्ट्रेट महोदय ने श्री पिल्लै और उनके साथी नेताओं को लिखित सूचनाएँ दीं कि आप लोग आंदोलन से अपना हाथ खींच लें, अन्यथा आप लोगों को गिरफ्तार कर लिया जाएगा।

एक सच्चा क्रांतिकारी इन धमकियों से क्यों दबता! श्री पिल्लै और उनके साथियों ने भी लिखित उत्तर दे दिए कि अभी तक हमारे कदम स्वदेशी आंदोलन की तरफ ही बढ़ रहे थे, अब वे भारत की आजादी की दिशा में बढ़ेंगे। ब्रिटिश शासन ने इस स्थिति को अपना अपमान समझा और मजिस्ट्रेट महोदय ने नेताओं की गिरफ्तारी की आज्ञा दे दी। तीनों नेताओं को गिरफ्तार करके उनपर मुकदमे चलाए गए। श्री पिल्लै को चालीस वर्ष (दो मामलों में बीस-बीस वर्ष) के कारावास की और श्री सुब्रह्मण्यम शिव को दस वर्ष कालेपानी की सजा दी गई।

इस फैसले के विरुद्ध जनता में विरोध और आक्रोश का ज्वार उमड़ पड़ा। स्थान-स्थान पर शासन विरोधी दंगे हो गए। अंग्रेज अफसरों की हत्या के प्रयत्न किए गए और सरकारी कार्यालयों में आग लगाई गई। वैधानिक रूप से निबटने के लिए फैसले के विरुद्ध उच्च अदालत में अपील की गई। आंदोलन का प्रभाव पड़ा और उच्च अदालत ने दोनों की सजा घटाकर छह-छह वर्षों की कर दी।

इस आंदोलन के परिणामस्वरूप चिदंबरम् पिल्लै एक राष्ट्रीय क्रांतिकारी नेता के रूप में उभरे। उनपर सभी भाषाओं में लोकगीत लिखे गए, जिन्हें लोग आंदोलन के अवसर पर उत्साह के साथ गाते थे।

□

★ रानी चेन्नम्मा

एक दिन कित्तूर के राजमहल में बड़ी चहल-पहल दिखाई दी। कित्तूर कर्नाटक के अंतर्गत एक छोटा-सा राज्य था। छोटा राज्य होते हुए भी वहाँ सुव्यवस्था

थी और वहाँ के राजा मल्लसर्ज कलाप्रेमी और विद्वानों का आदर करनेवाले थे। उस दिन महाराज ने अपने राजमहल में श्रीरंगपट्टण के सुविख्यात संगीताचार्य सदाशिव शास्त्री के संगीत का आयोजन कराया था।

संगीताचार्य शास्त्रीजी ने अपनी कला से राजा तथा प्रजा सभी को मोहित कर लिया। महाराज मल्लसर्ज ने परिधान और पारितोषिक अर्पित कर संगीताचार्य का सम्मान किया। इतना ही नहीं, उन्होंने शास्त्रीजी से अनुरोध किया कि वे उनकी छोटी रानी चेन्नम्मा को संगीत की शिक्षा दें। शास्त्रीजी ने महाराज का अनुरोध स्वीकार कर रानी चेन्नम्मा को संगीत की शिक्षा देना प्रारंभ कर दिया। संगीत के साथ रानी को शास्त्रीजी से राज-काज की शिक्षा भी मिलती जा रही थी।

महाराज मल्लसर्ज की दो रानियाँ थीं—रुद्रम्मा और चेन्नम्मा। चेन्नम्मा के रूप और गुणों से आकर्षित होकर महाराज ने उसे अपनी छोटी रानी बनाया था। चेन्नम्मा का जन्म कित्तूर के काकतीय राजवंश में हुआ था। चेन्नम्मा को राजघरानों जैसी ही शिक्षा-दीक्षा प्राप्त हुई थी। उसने कन्नड़, उर्दू, मराठी और संस्कृत भाषाओं में निपुणता प्राप्त की थी। वह घुड़सवारी, आखेट और शस्त्र-संचालन में भी पारंगत थी।

थोड़े ही दिनों में कित्तूर के राजवंश पर विपत्ति के बादल मँडराने लगे। पूना के पेशवा से मतभेद हो जाने के कारण पेशवा ने छल से महाराज मल्लसर्ज को कैद करा लिया। महाराज अधिक दिन तक जीवित नहीं रह सके। रानी चेन्नम्मा को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई थी; पर छोटी उम्र में ही उसकी मृत्यु हो चुकी थी। रानी चेन्नम्मा ने बड़ी रानी रुद्रम्मा के पुत्र शिवलिंग रुद्रसर्ज को अपना पुत्र माना और उसके द्वारा राज्य का संचालन कराया। दुर्भाग्य से कुछ समय पश्चात् शिवलिंग रुद्रसर्ज गंभीर रूप से बीमार पड़े और उनके बचने की आशा नहीं रही। राजा शिवलिंग रुद्रसर्ज इस बात को लेकर दुःखी थे कि उनके पश्चात् उनका उत्तराधिकारी कौन होगा। उन्हें पुत्र गोद लेने का परामर्श दिया गया। उन्होंने अपने एक स्वजन के पुत्र को गोद लेने का विचार किया। राज्य के दीवान मल्लप्पा शेट्टी को यह विचार पसंद नहीं आया। राज्य के प्रति उसकी बुरी नीयत थी। मल्लप्पा शेट्टी ने कहा कि किसीको गोद लेने के लिए धारवाड़ के कलेक्टर मि. थैकरे की अनुमति लेनी होगी। रानी चेन्नम्मा दीवान की अड़ंगेबाजी से कुपित हो गई। वह कहने लगी कि अंग्रेज कौन होते हैं हमारे घरेलू मामलों में दखल देनेवाले! उन्होंने तुरंत मास्त मरडीगौड़ा के पुत्र को बुलाया और गोधूलि वेला में शिवलिंग रुद्रसर्ज ने उस बालक को दत्तकपुत्र के रूप में स्वीकार कर लिया। उनका नाम 'गुरुलिंग मल्लसर्ज' रखा गया। कुछ दिन पश्चात् शिवलिंग रुद्रसर्ज का देहावसान हो गया। अब राजकाज का भार रानी

चेन्नम्मा पर आ पड़ा।

दीवान मल्लप्पा शेट्टी ने इस पूरे कांड में रानी चेन्नम्मा को दोषी समझा। वह राज्य को स्वयं हड़पने की घात में था; पर रानी के आगे उसकी एक न चल पाती थी। उसने कुपित होकर पुत्र गोद लेने की खबर धारवाड़ के कलेक्टर मि. थैकरे के पास भेज दी।

अंग्रेज लोग तो इस ताक में थे ही कि कोई देशी रियासत उन्हें हड़पने को मिले। उनकी ललचाई हुई आँखें राज्य के धन-दौलत पर पहले से ही लगी हुई थीं। वे उन सभी राज्यों को हड़प लेने की ताक में रहते थे, जिनका कोई जन्मजात उत्तराधिकारी नहीं होता था। तत्कालीन गवर्नर लॉर्ड डलहौजी की हड़प नीति सभी को विदित थी।

अत: धारवाड़ के कलेक्टर मि. थैकरे ने गोद लिये हुए पुत्र गुरुलिंग मल्लसर्ज को कित्तूर राज्य का उत्तराधिकारी मानने से इनकार कर दिया। वह राज्य को हड़पने की योजना बनाने लगा। उसने रानी चेन्नम्मा को आदेश दिया कि वह संरक्षिका का पद छोड़कर सभी अधिकार राज्य के दीवान मल्लप्पा शेट्टी को सौंप दे। रानी ने यह आदेश मानने से इनकार कर दिया। उसने कहा कि वह कित्तूर की स्वाधीनता की रक्षा जी-जान से करेगी।

थैकरे ने रानी के पास कई संदेश भेजे और धमकियाँ भी दीं, पर वह टस-से-मस न हुई। वह जानती थी कि वह बाहर और भीतर दोनों ओर से शत्रुओं से घिरी है। उसके दोनों दीवान मल्लप्पा शेट्टी और वेंकटराव अंग्रेजों से मिले हुए थे। उन्हें थैकरे से राज्य का कुछ भाग पाने का आश्वासन भी मिल चुका था।

रानी चेन्नम्मा आसन्न संकट से भलीभाँति परिचित थी। उसने युद्ध की तैयारियाँ प्रारंभ कर दी थीं। उसने अपनी समस्त प्रजा का आह्वान किया कि वह अंग्रेजों के साथ युद्ध के लिए तैयार रहें। कित्तूर की प्रजा जी-जान से अपनी रानी के साथ थी। मल्लप्पा शेट्टी और वेंकटराव जैसे देशद्रोही यदि उसके विरुद्ध थे तो गुरु सिद्दप्पा जैसे योग्य दीवान और बालण्णा, रायण्णा, जगवीर एवं चेन्नवासप्पा जैसे योद्धा भी उसके पक्ष में थे।

सारा कित्तूर राज्य युद्ध की तैयारियों में लग गया। सभी लोग अपनी-अपनी बंदूकें और तलवारें तैयार करने लगे। हिंदू और मुसलमान दोनों ही रानी का साथ दे रहे थे। मुसलमान मसजिद के पास युद्धाभ्यास करते थे, जिसके जीर्णोद्धार के लिए रानी चेन्नम्मा ने दस हजार रुपए देने की उदारता दिखाई थी। युद्ध की तैयारियों का निरीक्षण रानी स्वयं कर रही थी।

इधर देशद्रोही मल्लप्पा शेट्टी और वेंकटराव भी अपनी गतिविधियों में सक्रिय थे। उनसे रानी द्वारा की जानेवाली तैयारियों की सूचना पाकर अंग्रेजी सेना भी किले के चारों तरफ लग गई थी। इसी बीच मल्लप्पा शेट्टी ने एक और कुचक्र की रचना की। मल्लप्पा शेट्टी एवं वेंकटराव राज्य प्राप्ति के मार्ग में रानी चेन्नम्मा और दीवान गुरु सिद्दप्पा को बाधा समझ रहे थे। उन्होंने रानी को समाप्त कराने के लिए पाकशाला की नौकरानी महांतव्वा के माध्यम से रानी को विष देने की योजना बनाई। रानी को खीर में विष दिया जाने वाला था। रानी को अपनी शुभेच्छु कलावती द्वारा यह भेद मालूम हो गया और उसने खीर खाने से इनकार कर खीर के साथ नौकरानी महांतव्वा को दीवान गुरु सिद्दप्पा के पास भिजवा दिया। नौकरानी के यह कहने पर कि खीर में विष नहीं है, दीवानजी ने सत्य के प्रमाण के लिए उससे खीर खाने को कहा। उसने थोड़ी ही खीर खाई होगी कि वह तड़प-तड़पकर मर गई।

उसी रात चेन्नम्मा ने सभी सैनिकों को तैयार रहने का आदेश दिया। उसने सैनिकों को समझाया—"यह संग्राम केवल कित्तूर के लिए नहीं है, यह हमारी पुण्य भूमि भारत के लिए है।"

अंग्रेजी सेना ने कित्तूर को घेर ही रखा था। २३ सितंबर, १८२४ को रानी ने वीर वेश धारण किया और थैकरे की सेना पर आक्रमण कर दिया। किले का फाटक खुलवाकर मर्दाने वेश में रानी चेन्नम्मा सिंहनी की भाँति अंग्रेजी सेना पर झपट पड़ी। घमासान युद्ध हुआ। कित्तूर के योद्धा अपनी रानी को साथ पाकर भयंकर युद्ध कर रहे थे। वे मरने-मारने पर उतारू थे। इस युद्ध में थैकरे को मार गिराया गया। रानी की तलवार शत्रुओं को काट-काटकर बिछा रही थी। सारा मैदान लाशों से पट गया था। अपने नेता के मरते ही अंग्रेजी सेना भाग खड़ी हुई। बहुत से सैनिक और अफसर बंदी बना लिये गए। थैकरे के शिविर के अफसर स्टीवेंसन और इलियत भी बंदी बना लिये गए। देशद्रोही मल्लप्पा शेट्टी और वेंकटराव को भी कैद कर लिया गया। मंत्रिपरिषद् के परामर्श के अनुसार, दोनों देशद्रोहियों को मृत्युदंड दे दिया गया। बाद में रानी ने अंग्रेज अफसरों को छोड़ दिया।

स्वाधीनता की लहर कित्तूर के आसपास के राज्यों में भी फैल गई। इस लहर को दबाने के लिए अंग्रेजों ने ३ दिसंबर, १८२४ को फिर कित्तूर पर धावा बोल दिया। उन्हें मद्रास और बंबई से भी कुमुक मँगानी पड़ी। इस नए आक्रमण की बागडोर डीकस के हाथों में थी। अंग्रेजों की सेना सभी प्रकार से शक्तिशाली और सुसज्जित थी। कित्तूर के देशभक्तों का मनोबल भी ऊँचा था। उन्होंने फिर अंग्रेजी सेना के छक्के छुड़ा दिए और उसे पराजित करके भगा दिया।

अंग्रेजों को अपनी हार बुरी तरह खटक रही थी। उन्होंने दिसंबर में ही तीसरी बार कित्तूर पर आक्रमण किया। अपने राज्य की बची-खुची शक्ति एकत्रित कर रानी ने फिर अंग्रेजी सेना का सामना किया। इस बार अंग्रेजों ने फिर अपनी भेद नीति का जाल बिछाया और कित्तूर के कुछ लोगों को अपने पक्ष में कर लिया। कित्तूर का किलेदार शिववासप्पा अंग्रेजों से मिल गया। वह देशद्रोही मल्लप्पा शेट्टी का विश्वासपात्र था। उसने रानी के बारूद में सूखा गोबर मिलवा दिया और किले के कई भेद अंग्रेजों को दे दिए। इन सभी कारणों से इस बार युद्ध में रानी की पराजय हुई। उसे कैद कर लिया गया। उसने भारतीय नारी एवं रानी—दोनों की ही गरिमा का परिचय दिया और अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार करने से इनकार कर दिया। उसकी गिरफ्तारी के पश्चात् भी उसके सरदारों ने युद्ध जारी रखा; पर वे धीरे-धीरे या तो मारे गए या कैद कर लिये गए। अंग्रेजों ने रायण्णा, जगवीर, नागरकट्टी, चेन्नवासप्पा तथा बालण्णा को फाँसी पर झुला दिया। 'कित्तूर की जय हो! रानी चेन्नम्मा की जय हो!' के नारे लगाते हुए वे लोग फाँसी के फंदे पर झूल गए।

उधर बैंगलहोल की कैद में बंद रानी चेन्नम्मा को अपने वीरों के फाँसी पर चढ़ने के समाचार मिले तो वह इस आघात को बरदाश्त न कर सकी। ये वीर ही उसके लिए सबकुछ थे। इन वीरों के प्रति संवेदनास्वरूप आत्मबल से उसने अपने प्राण त्याग दिए।

धन्य है वह वीर रानी चेन्नम्मा, जिसने आजादी के लिए शक्तिशाली अंग्रेजों से युद्ध किया, जेल की यातनाएँ सहीं और आजादी की वेदी पर अपने प्राणों की बलि दे गई।

□

★ कुँअर चैनसिंह ★ बहादुर खाँ ★ हिम्मत खाँ

मध्य प्रदेश का नगर नरसिंहगढ़ पहले एक स्वतंत्र राज्य था। यहाँ के राजा अपनी राजपूती आन-बान के लिए मशहूर थे। प्रकृति ने इस नगर को सुषमा और अपार वन संपदा प्रदान की है। नगर के चारों ओर ऊँची-ऊँची और हरी-भरी पहाड़ियाँ हैं, जिनमें से एक पर राजप्रासाद अभी भी अपनी विगत गौरव-गरिमा की कहानी कहता रहता है। पहाड़ियों की तलहटी में स्थित सुरम्य सरोवर एक विशाल दर्पण की भाँति सुशोभित है, जिसमें हरी-भरी पहाड़ियाँ अपने रूप को निहारा

करती हैं। वर्षा के दिनों में पहाड़ियों से बहती हुई जलधाराएँ दर्शकों का मन मोह लेती हैं। नाचते हुए मयूरवृंदों की शोभा का कहना ही क्या है! इसी राज्य के एक कुँअर चैनसिंह ने कभी, अपनी वीरता और देशभक्ति से भारतीय इतिहास को गौरवान्वित किया है।

नरसिंहगढ़ के निकट ही सीहोर नगर है, जो इस समय भोपाल संभाग का एक जिला है। कंपनी सरकार के समय सीहोर में अंग्रेजी छावनी थी, जिसके अंग्रेज अफसर का नाम मैडॉक था। मैडॉक को पता चला कि नरसिंहगढ़ का कुँअर चैनसिंह अपने राज्य के दो मंत्रियों को मौत के घाट उतार चुका है और वह अंग्रेजों के विरुद्ध बगावत की तैयारी कर रहा है। सूचना गलत नहीं थी। कुँअर चैनसिंह ने यह सबकुछ किया था।

अंग्रेजों की कुदृष्टि नरसिंहगढ़ राज्य पर पड़ रही थी। वे उस राज्य के महामंत्री आनंदराम बख्शी द्वारा राज्य की गोपनीय जानकारियाँ प्राप्त करते रहते थे। कुँअर चैनसिंह को इस विश्वासघात का पता लगा और अपने पिता के विरोध के बावजूद उसने आनंदराम बख्शी को मौत के घाट उतार दिया। इसी प्रकार की एक सूचना राज्य के एक अन्य मंत्री रूपराम बोहरा ने भी अंग्रेजों को दी। उसने बताया कि कंपनी सरकार को खत्म करने के लिए राजे-रजवाड़ों की एक सभा आयोजित की गई थी, जिसमें कुँअर चैनसिंह भी सम्मिलित था। जब चैनसिंह को इस विश्वासघात का पता चला तो उसने अपने राज्य के मंत्री रूपराम को भी मौत के घाट उतार दिया।

मृतक मंत्रियों के परिवार के लोगों ने इन हत्याकांडों की शिकायत कलकत्ता स्थित गवर्नर जनरल के पास की। गवर्नर जनरल ने मामले की तहकीकात करने के लिए सीहोर के अफसर मैडॉक को लिखा। मैडॉक ने कुँअर चैनसिंह को मिलने के लिए बुलाया। चैनसिंह ने सीहोर जाने से इनकार कर दिया। कुछ समय पश्चात् मैडॉक ने एक अन्य स्थान बैरसिया में अपना कैंप लगाया और वहाँ कुँअर चैनसिंह को मिलने के लिए बुलाया। इस बार कुँअर चैनसिंह ने मैडॉक से मिलना स्वीकार कर लिया और अपने दल-बल के साथ वह बैरसिया जा पहुँचा।

मैडॉक ने कुँअर चैनसिंह के सामने तीन शर्तें रखीं—

१. आप हमेशा के लिए नरसिंहगढ़ छोड़ दें।

२. तीन वर्षों तक नरसिंहगढ़ राज्य अंग्रेजों की अधीनता में रहे।

३. नरसिंहगढ़ क्षेत्र में अफीम की खरीद कंपनी सरकार ही करे।

कुँअर चैनसिंह ने ये शर्तें मानने से इनकार कर दिया। काफी हुज्जत हुई और तय हुआ कि कुँअर चैनसिंह २४ जून सन् १८२४ को सीहोर पहुँचकर मैडॉक से

मिलें। मैडॉक ने आश्वासन दिया कि वह अपनी शर्तों को कुछ नरम कर देगा।

अपने वादे के अनुसार कुँअर चैनसिंह अपने चुने हुए साथियों को लेकर २४ जून सन् १८२४ को मैडॉक से मिलने सीहोर जा पहुँचा। मैडॉक ने बड़ी गर्मजोशी के साथ कुँअर चैनसिंह का स्वागत किया। वह उससे बहुत मीठी-मीठी बातें करने लगा। बातों के क्रम में उसने कुँअर चैनसिंह से एक प्रश्न किया—

"कुँअर साहब, क्या आप यह बताएँगे कि आप अपनी कमर में दो तलवारें क्यों लटकाए रखते हैं?"

कुँअर चैनसिंह ने परिहास के लहजे में मैडॉक के प्रश्न का उत्तर दिया—

"एक तलवार तो उन भारतीयों की गरदन काटने के लिए है, जो गद्दारी करते हैं और दूसरी तलवार उन अंग्रेजों की गरदन काटने के लिए, जो हमारे साथ दगा करेंगे।"

इस करारे उत्तर को सुनकर मैडॉक कुछ चौंका; लेकिन उसने कुटिल हँसी के बीच अपने मनोभावों को छिपाते हुए कहा—

"लेकिन कुँअर साहब! हम तो आपके मित्र बन गए हैं। अब हमारी ओर से आपके साथ दगा होने का तो कोई सवाल ही पैदा नहीं होता। क्या आप हमें वह तलवार दिखाएँगे, जो आपने अंग्रेजों की गरदनें उड़ाने के लिए टाँग रखी है?"

कुँअर चैनसिंह मैडॉक के मनोभावों को ताड़ गया। उसे अपनी फुरती और अपने आसपास बैठे हुए साथियों के बल-विक्रम पर भरोसा था। उसने अपनी एक तलवार मैडॉक को दे दी। मैडॉक उस नंगी तलवार की धार का निरीक्षण करने लगा। उसे देखते-देखते वह उस क्षण की प्रतीक्षा में था, जब चैनसिंह तनिक असावधान दिखे और वह उसपर तलवार का वार कर दे। उसके अपने साथी भी आसपास बैठे हुए थे और काफी सैनिक उसने बाहर भी छिपाए हुए थे। चैनसिंह की आँखें मैडॉक की आँखों से लड़ रही थीं। उसने एक क्षण की भी गफलत नहीं की। चैनसिंह की सतर्कता को ताड़ते हुए मैडॉक ने दूसरा पैंतरा बदला। वह बोला—

"कुँअर साहब, जरा मुझे अपनी दूसरी तलवार भी दिखाइए, जिससे मैं दोनों तलवारों की खूबियों की तुलना कर सकूँ।"

कुँअर चैनसिंह समझ गया कि यह व्यक्ति मुझे पूर्णरूप से निरस्त्र करना चाहता है। वह बोला—

"राजपूत की कमर कभी पूर्णरूप से सूनी नहीं रहती। मैं अपनी दूसरी तलवार आपको नहीं दे सकता।"

मैडॉक ने खिसियाते हुए कहा—

''कोई बात नहीं, राजकुमार साहब! आपने अंग्रेजों की गरदन काटनेवाली जो तलवार मुझे दी है, मैं उससे एक हिंदुस्तानी की गरदन काटकर दिखाता हूँ।''

यह कहते हुए उसने तलवार का वार करने के लिए ज्यों ही अपना हाथ ऊपर उठाया, उसके पहले ही कुँअर चैनसिंह छिटककर दूर जा खड़ा हुआ और बोला—

''अंग्रेजों की गरदन काटनेवाली तलवार तो मैंने अपने पास रख छोड़ी है। अब मैं उसका उपयोग करके भी दिखाता हूँ।''

यह कहकर कुँअर चैनसिंह ने अपनी दूसरी तलवार म्यान से बाहर खींच ली। उसके साथियों ने भी तलवारें खींच लीं। कुँअर चैनसिंह मैडॉक पर आक्रमण करे, उसके पहले ही उसके साथ आए हुए उसके वफादार कुत्ते शेरू ने उछलकर मैडॉक पर आक्रमण कर दिया। शेरू की लाल-लाल आँखें और नुकीले दाँतों तथा उसकी उछाल को देखकर मैडॉक घबरा गया। वह कमरे से बाहर की तरफ भागा। शेरू ने उसका पीछा किया। दोनों ओर के योद्धाओं में तलवारें चलने लगीं। अपने वफादार कुत्ते शेरू की रक्षा के लिए चैनसिंह भी नंगी तलवार लेकर मैडॉक के पीछे लपका। मैडॉक अपने घोड़े पर बैठकर भाग चला। कुँअर चैनसिंह ने भी अपना घोड़ा उसके पीछे दौड़ा दिया। लड़ते-लड़ते दोनों दल चौराहे पर पहुँच गए। वहाँ अंग्रेजों ने अपनी कुछ तोपें भी लगा रखी थीं। कुँअर चैनसिंह ने देखा कि एक तोपची अपनी तोप को पलीता लगाने वाला ही है तो उसने फुरती से उछलकर तोपची की गरदन पर अपनी तलवार का भरपूर वार दे मारा। तोपची की गरदन मूली की तरह कटकर अलग जा गिरी। तोपची की गरदन काटती हुई कुँअर चैनसिंह की तलवार तोप के ऊपर भी पड़ी और उस लोहे की तोप का भी कुछ हिस्सा कट गया। घमासान युद्ध हो रहा था। एक ओर कुँअर चैनसिंह तथा उसके पचास साथी थे और दूसरी ओर विशाल अंग्रेजी फौज। दोनों ओर की तलवारें खन्न-खन्न करती हुई चिनगारियाँ उगल रही थीं। कुँअर चैनसिंह का वफादार कुत्ता शेरू भी अपने दुश्मनों पर शेर की तरह झपट रहा था। लड़ते-लड़ते वह भी मारा गया। कुँअर चैनसिंह के साथ अब उसके केवल दो साथी—हिम्मत खाँ और बहादुर खाँ बचे थे। लड़ते-लड़ते ये लोग दशहरा बाग तक पहुँच गए। आखिर चैनसिंह के ये दोनों साथी भी मारे गए। अकेले चैनसिंह ने भीषण युद्ध किया। उस अकेले वीर ने पच्चीस अंग्रेज सैनिकों को मौत के घाट उतारा। आखिर उस परमवीर को भी लड़ते-लड़ते वीरगति प्राप्त हुई।

कुँअर चैनसिंह की दोनों तलवारें मैडॉक अपने साथ इंग्लैंड ले गया। उससे एक भूल हो गई कि वह चैनसिंह की तलवार से कटी हुई तोप वहाँ से नहीं हटा

सका। बहुत समय तक वह कटी हुई तोप लोगों के कौतूहल का विषय बनी रही और कुँअर चैनसिंह की वीरता की गाथा कहती रही। वीर चैनसिंह १८५७ के स्वाधीनता संग्राम के पूर्व ही अपनी तलवार के जौहर अंग्रेजों को दिखा गया।

नरसिंहगढ़ के राजपरिवार ने सीहोर के दशहरा बाग में कुँअर चैनसिंह की छतरी बनवा दी। आज भी ग्रामीण अंचल में कुँअर चैनसिंह की वीरता के लोकगीत गाए और सुने जाते हैं।

□

★ जोगेंद्रनाथ चक्रवर्ती

"हुजूर! मैंने सुना है कि आपके दफ्तर में बाबू की एक जगह खाली हुई है। यदि आप उस जगह पर मेरी नियुक्ति कर दें तो आपकी बड़ी कृपा होगी।"

"हम लोग तो तुम लोगों पर कृपा करते ही हैं, पर तुम हिंदुस्तानी लोग हमें अपना दुश्मन समझते हो। तुम लोग क्रांतिकारी बनकर हमारे पीछे बम और पिस्तौल लिये फिरते हो।"

"नहीं हुजूर! ऐसी बात नहीं है। मुझे तो क्रांतिकारियों से खुद भी बहुत घृणा है।"

"क्या, तुम्हें सचमुच ही उनसे घृणा है?"

"मैं सच कह रहा हूँ, हुजूर!"

"अच्छा तो हम तुम्हें नौकरी दे सकते हैं, पर एक शर्त पर।"

"हुजूर, वह शर्त क्या है? मैं उसे पूरी करने की कोशिश करूँगा।"

"सिलचर में हिंदुओं का जो आश्रम है न, तुम्हें उसकी शिकायत करनी होगी। अगर तुमने उस आश्रम के खिलाफ लिखकर शिकायत दे दी तो हम तुम्हें अपने दफ्तर में बाबू की नौकरी दे देंगे।"

"अच्छा हुजूर! मैं ऐसी शिकायत लिखकर लाता हूँ।"

और उसने सिलचर के अनुविभागीय अधिकारी मिस्टर गोर्डन की सेवा में शिकायत लिखकर प्रस्तुत कर दी—

'मेरा एक छोटा भाई कुछ दिनों से लापता है। मुझे ज्ञात हुआ है कि फुसलाकर सिलचर के जयतसी आश्रम के लोग ले गए हैं और डरा-धमकाकर उसे अपने यहाँ रखे हुए हैं। हुजूर से मेरी विनती है कि आश्रम से मेरा छोटा भाई मुझे वापस दिलाया जाए।'

गोर्डन तो यही चाहता था। आश्रम की तलाशी लेने का उसे अच्छा अवसर मिल गया। उसने ७ जुलाई, १९१२ को सिलहट के असिस्टेंट सुपरिंटेंडेंट पुलिस को

बुलाकर मौखिक आदेश दिया—

"कल तलाशी के लिए पुलिस के आदमी आश्रम गए थे। आश्रमवासियों ने उनका प्रतिरोध किया। तुम जाकर उन लोगों को अच्छा सबक सिखाओ।"

साहब का हुक्म पाकर पुलिस अफसर ७ जुलाई, १९१२ को सिलचर के आश्रम में जा धमका। उसके आदेशानुसार सिपाहियों ने आश्रमवासियों पर लाठियाँ बरसाईं और गोलियाँ तक चलाईं। एक गोली से एक आश्रमवासी महेंद्रनाथ डे बुरी तरह घायल हो गया। लोग उसे योगानंद के नाम से पुकारते थे।

पुलिस अफसर को इतना सबक सिखाने से संतोष नहीं हुआ। अगले दिन ८ जुलाई को उसने आश्रम पर फिर हमला किया। पुलिस दल ने आश्रम में प्रलय का दृश्य उपस्थित कर दिया। लोगों पर अंधाधुंध लाठियाँ बरसाई गईं। संगीनों का प्रयोग किया गया। आश्रम की अलमारियों को तोड़ा गया और कीमती सामान लूटा गया। महिलाओं को भी अपमानित किया गया। चोटियाँ पकड़कर उनको घसीटा गया, उनके कपड़े फाड़े गए और जहाँ खून से लथपथ लोग पड़े थे, उनपर उन महिलाओं को पटक दिया गया। कुछ आश्रमवासियों को गिरफ्तार किया गया और दूर थाने तक उन्हें मारते-पीटते ले जाया गया। पुलिस अफसर ने अपने आला अफसर के हुक्म से आश्रमवासियों को अच्छा सबक सिखाया। १६ जुलाई को पुलिस की गोली से बुरी तरह घायल योगानंद महेंद्रनाथ डे का प्राणांत हो गया।

सिलहट के क्रांतिकारियों की बैठक हुई। मुद्दा था—

'क्या आश्रम के अपमान का कड़वा घूँट चुपचाप पी लिया जाए अथवा उसका उत्तर दिया जाए? क्या सिलहट के अत्याचारी अधिकारी गोर्डन की नृशंसता को कापुरुषता के साथ सहन कर लिया जाए अथवा उसे बताया जाए कि बंगाल के क्रांतिकारी खून का बदला खून से लेना जानते हैं?'

जोगेंद्रनाथ चक्रवर्ती नाम के एक क्रांतिकारी युवक ने चुनौती को स्वीकार कर लिया। वह गोर्डन को मुँहतोड़ उत्तर देने की तैयारियाँ करने लगा और उसकी टोह में रहने लगा। समय बीतता गया, पर उसका संकल्प धूमिल नहीं हुआ।

सारी तैयारियाँ पूर्ण कर लेने के पश्चात् एक दिन २७ मार्च, १९१३ को रात्रि को जोगेंद्रनाथ चक्रवर्ती गोर्डन को उसकी नृशंसता का बदला चुकाने के लिए सर्किट हाउस जा पहुँचा, जहाँ गोर्डन को एक रात्रिभोज में सम्मिलित होना था। जोगेंद्रनाथ चक्रवर्ती गोर्डन को अच्छी तरह पहचानने लगा था। वह बहुत देर तक प्रतीक्षा करता रहा, पर उसका शिकार वहाँ नहीं मिला। वह किसीसे पूछ भी तो नहीं सकता था। जब पूरा उत्सव समाप्त हो गया और सभी लोग वहाँ से चले गए तो जोगेंद्रनाथ ने गोर्डन के बंगले पर जाकर उसका शिकार करना उचित समझा।

उसकी योजना थी कि वह मिलने के बहाने साहब को बाहर बुलवाएगा और उसके आने पर उसे गोलियों से भून डालेगा। साहब के बाहर न आने की दशा में जोगेंद्रनाथ ने सोच रखा था कि वह उसके कमरे पर बम फेंकेगा, जिससे वह वहीं समाप्त हो जाएगा। वह अपने साथ एक बहुत शक्तिशाली बम ले गया था। एक भरा हुआ रिवॉल्वर उसने अंदर की जेब में रख छोड़ा था और दूसरा भरा हुआ रिवॉल्वर उसने पैंट की जेब में छिपा रखा था।

जोगेंद्रनाथ चक्रवर्ती मि. गोर्डन के बंगले पर पहुँचकर मुख्य फाटक के सामने खड़ा हो गया। उसने देखा कि फाटक अंदर से बंद था, पर वहाँ कोई दरबान नहीं था। उसने आवाज भी लगाई, पर कोई उत्तर नहीं मिला। वह पहले ही जाँच कर गया था कि साहब की बैठक का कमरा कौन-सा है और शयनागार कौन-सा है। बैठक का कमरा बाहर की ओर था। उस कमरे में उसे रोशनी दिखाई दी और काँच की बंद खिड़की में से उसे साहब की झलक भी दिखाई दी। बंगले के चारों ओर कँटीले तारों का ऊँचा फेसिंग था। उसने यही निश्चय किया कि तारों को फाँदकर वह अंदर पहुँच जाएगा और साहब के बैठक के कमरे पर बम प्रहार करेगा। अंदर रखा हुआ रिवॉल्वर तो उसने वहीं रहने दिया, पर पैंट की जेबवाला भरा हुआ रिवॉल्वर निकालकर उसने अपने सीधे हाथ में थाम लिया। पैंट की जेब में उसने बम रख लिया। अब वह एक अँधेरे कोने के पास कँटीले तारों पर चढ़ने लगा। शायद उसकी आहट या गंध पाकर साहब का कुत्ता जोर-जोर से भौंकने लगा। इस भय से कि देख न लिया जाए, जोगेंद्रनाथ ने जल्दी-जल्दी उतरने का यत्न किया। इस हड़बड़ी में वह तार के ऊपर से बाहरी सड़क पर उस करवट के बल जा गिरा, जिधर पैंट की जेब में शक्तिशाली बम रखा हुआ था। सड़क से जा टकराने के कारण बम का अपने आप विस्फोट हो गया। एक जोरदार धमाका हुआ। साहब का बंगला शहर से काफी दूर था, अतः सहायता के लिए किसीके पहुँचने का प्रश्न ही नहीं था। उस समय वहाँ टेलीफोन की व्यवस्था भी नहीं थी। परिणाम यह हुआ कि अपनी सुरक्षा के लिए गोर्डन साहब अपनी राइफल लिये रात-भर जागते रहे। सुबह होने पर उन्होंने अपने अर्दली को पुलिस थाने पर भेजा। पुलिस आई और उसने मौके का निरीक्षण किया।

अपने निरीक्षण क्रम में पुलिस को बंगले के पिछवाड़े बाहरी सड़क पर एक लाश पड़ी मिली। बम विस्फोट के कारण लाश क्षत-विक्षत हो गई थी। मरनेवाले व्यक्ति के शरीर पर जनेऊ पाई गई, जिससे यह सिद्ध होता था कि वह कोई ब्राह्मण परिवार का था। उसका बायाँ हाथ कलाई के पास से उड़ गया था और वह कहाँ जाकर गिरा, इसका कोई निशान नहीं मिला। उसका दाहिना हाथ इस बुरी तरह

घायल हो गया था कि मांस, हड्डियाँ और रक्त की लुगदी बन गई थी। उसके शरीर के चिथड़े-चिथड़े उड़ गए थे। उसके कोट की जेब में एक भरा हुआ रिवॉल्वर पाया गया और एक दूसरा भरा हुआ रिवॉल्वर थोड़ी दूर पर पाया गया, जो विस्फोट के कारण दूर जा गिरा था। मरनेवाला व्यक्ति कौन था, इसका पता बहुत दिनों तक किसीको नहीं चल सका। यह तो अनुमान लगा ही लिया गया कि वह कोई क्रांतिकारी था, जो गोर्डन साहबं को मारने के इरादे से वहाँ पहुँचा था।

बहुत समय पश्चात् जब 'बारीसाल षड्यंत्र' के अभियुक्त जेल के अंदर रखे गए तो उनमें से एक अभियुक्त के द्वारा यह संकेत मिला कि गोर्डन साहब को मारने के प्रयत्न में मरनेवाला व्यक्ति जोगेंद्रनाथ चक्रवर्ती नाम का एक क्रांतिकारी था, जो मैमनसिंह के क्रांतिकारी दल का एक प्रमुख सदस्य था।

जोगेंद्रनाथ चक्रवर्ती उस अत्याचारी अंग्रेज से बदला नहीं ले सका और उसके स्थान पर अपने ही जीवन का बलिदान दे गया। अपने जीवन का बलिदान देने के साथ उसने न जाने कितने युवकों को यह प्रेरणा दी कि मातृभूमि के सम्मान की रक्षा के लिए बड़े-से-बड़ा बलिदान भी नगण्य है।

□

★ वीरांगना झलकारी ★ पूरनसिंह

झाँसी के किले को अंग्रेजी सेना ने घेर रखा था। दोनों ओर से भयंकर युद्ध चल रहा था। महारानी लक्ष्मीबाई ने किले के कई मोरचों पर तोपें रखवा दी थीं और वे तोपें फिरंगी सेना पर निरंतर अग्निवर्षा कर रही थीं। सैनिकगण भी अपनी बंदूकों से शत्रु सेना पर प्रहार कर रहे थे। अंग्रेजी सेना यद्यपि किले के नीचे थी, पर उसकी संख्या अधिक थी और उसके पास युद्ध सामग्री का विपुल भंडार भी था। अंग्रेजी तोपें नीचे से किले पर मार कर रही थीं। किले की दीवारों को निशाना बनाया जा रहा था कि कहीं से दीवार टूटे और उस रास्ते से अंग्रेजी सेना हमला बोल दे। अंग्रेजी सेना की बंदूकें भी किले के रक्षकों पर भयंकर गोलीवर्षा कर रही थीं। किले के रक्षकों की संख्या कम होती जा रही थी।

महारानी लक्ष्मीबाई ने युद्धपरिषद् की आपातकालीन बैठक बुलवाई। चर्चा का विषय यही था कि अब क्या किया जाए? एक प्रहरी ने महारानी लक्ष्मीबाई को सूचित किया कि महिला फौज की एक सैनिक आवश्यक रूप से उनसे मिलना चाहती है। महारानी से मिलने की इच्छा उनकी महिला फौज की एक सैनिक झलकारी ने की थी।

झलकारी झाँसी राज्य के एक वीर कृषक सदोवासिंह की पुत्री थी। उसकी माता का नाम जमुना देवी था। झलकारी का जन्म २२ नवंबर सन् १८३० को झाँसी के निकट भोजला ग्राम में हुआ था। जंगलों में रहने के कारण झलकारी के पिता ने उसे घुड़सवारी और अस्त्र-शस्त्र-संचालन की शिक्षा दी थी। जब झलकारी छोटी उम्र की थी, तभी उसकी माता का देहांत हो गया था। उसके पिता ने उसका लालन-पालन इस प्रकार किया था जैसे किसी पुत्र का किया जाता है। गाँव-देहात में रहने के कारण उसको स्कूली शिक्षा तो नहीं मिल सकी थी, पर गृहस्थी के संचालन का भार उसपर अपने आप ही आ पड़ा था और उसके पिता ने उसे वीरोचित शिक्षा अवश्य दी थी। उसे शस्त्र-संचालन की शिक्षा भी इस उद्देश्य से

दी गई थी, क्योंकि उस क्षेत्र में डाकुओं के उत्पात होते रहते थे और लोगों को अपनी सुरक्षा का प्रबंध स्वयं करना पड़ता था।

एक दिन बालिका झलकारी अपने पशुओं को लेकर जंगल में गई हुई थी। एक झाड़ी में से निकलकर एक भयानक चीते ने उसपर आक्रमण कर दिया। उस समय झलकारी के पास केवल जानवर हाँकनेवाली लाठी ही थी। उसने लाठी का भरपूर हाथ चीते के मुँह पर दे मारा। उसकी लाठी चीते की नाक पर पड़ी। नाक पर लाठी पड़ने के कारण चीता अचेत होकर गिर पड़ा। इस स्थिति का लाभ उठाकर झलकारी उस चीते पर उस समय तक प्रहार करती रही जब तक उसकी जान नहीं निकल गई। इस घटना ने झलकारी को बहुत लोकप्रिय बना दिया। कालांतर में उसकी शादी भी महारानी लक्ष्मीबाई के तोपखाने के एक वीर तोपची पूरनसिंह के साथ हो गई। दोनों की जोड़ी बहुत अच्छी बनी। पूरनसिंह के माध्यम से झलकारी का परिचय महारानी लक्ष्मीबाई से हुआ और वह उनकी महिला फौज में भरती कर ली गई। महिला फौज में भरती हो जाने पर झलकारी ने फौज के सभी कामों में विशेष योग्यता प्राप्त कर ली।

जिस समय महारानी लक्ष्मीबाई ने आपातकालीन युद्धपरिषद् की बैठक बुलाई, उस समय झलकारी ही उनसे कुछ निवेदन करने उनकी सेवा में उपस्थित हुई। सैनिक ढंग से अभिवादन के पश्चात् झलकारी ने कहा—

"बाईसाहब! एक विनम्र निवेदन करना चाहती हूँ।"

"आज्ञा है।" महारानी लक्ष्मीबाई ने कहा।

झलकारी ने अपना निवेदन प्रस्तुत किया—

"बात यह है, बाईसाहब, कि हमारे सैनिकों की संख्या निरंतर कम होती जा रही है। निरंतर घिरे रहने के कारण खाद्य सामग्री भी तो सीमित ही रह गई है। मेरे पति ने मुझे यह भी बताया है कि हमारे तोपचियों में कुछ के गद्दार होने की आशंका भी है। वे लोग अंग्रेज सैनिकों को निशाना न बनाकर खाली स्थानों पर गोलों का संधान करते हैं। स्थिति का लाभ उठाकर और किसी स्थान पर किले की दीवार तोड़कर यदि शत्रु सेना अंदर आ गई तो हमें किले के अंदर ही आमने-सामने का युद्ध करना पड़ेगा। हम नहीं चाहते कि उस स्थिति में आप किसी संकट में पड़ें।"

झलकारी ने बात बहुत पते की कही थी। महारानी लक्ष्मीबाई ने उसे उकसाते हुए कहा—

"इस संकट से निबटने के लिए तुम्हारे पास क्या योजना है?"

झलकारी तो यह प्रश्न चाहती ही थी। उसने कहा—

"बाईसाहब! अब आपको इस किले से किसी भी प्रकार बाहर हो जाना चाहिए। दुश्मन को धोखे में डालने के लिए यह उचित होगा कि आपका वेश धारण करके पहले मैं छोटी-सी टुकड़ी लेकर किसी मोरचे से भागने का प्रयत्न करूँ। मुझको रानी समझकर दुश्मन अपनी पूरी शक्ति से मुझे पकड़ने या मारने का प्रयत्न करेगा। इसी बीच दूसरी तरफ से आप किले से बाहर हो जाइए। शत्रु भ्रम में पड़ जाएगा कि असली महारानी कौन है! स्थिति का लाभ उठाकर आप सुरक्षित स्थान पर पहुँच सकती हैं और फिर सैन्य संगठन करके अंग्रेजी सेना पर आक्रमण कर सकती हैं।"

झलकारी की योजना महारानी लक्ष्मीबाई को पसंद आ गई। वे स्वयं भी किले से बाहर निकलने की योजना बना रही थीं।

योजनानुसार महारानी लक्ष्मीबाई और झलकारी दोनों ही दो पृथक्-पृथक् स्थानों से किले के बाहर हुईं। झलकारी ने ताम-झाम अधिक पहन रखा था। उसे घेरने का प्रयत्न किया गया। शत्रु सेना से घिरी हुई वह भयंकर युद्ध करने लगी। एक भेदिए ने उसे पहचान लिया और उसने भेद खोलने का प्रयत्न किया। झलकारी ने उसे अपनी गोली का निशाना बनाया; पर वह गोली एक अन्य अंग्रेज सैनिक को लगी और वह गिरकर मर गया। अंततोगत्वा घेरकर झलकारी को पकड़ लिया गया।

जनरल रोज ने झलकारी को डपटते हुए कहा—

"तुमने रानी बनकर हमको धोखा दिया है और महारानी लक्ष्मीबाई को यहाँ से निकलने में मदद की है। तुमने हमारे एक सैनिक की भी जान ली है। मैं भी तुम्हारे प्राण लूँगा।"

झलकारी ने गर्व से कहा—

"मार दे गोली, मैं प्रस्तुत हूँ।"

एक अन्य अंग्रेज अफसर ने कहा—

"मुझे तो यह स्त्री पगली मालूम पड़ती है।"

जनरल रोज ने तत्काल उत्तर दिया—

"यदि भारत की एक प्रतिशत नारियाँ इसी प्रकार पागल हो जाएँ तो हम अंग्रेजों को सबकुछ छोड़कर यहाँ से चले जाना होगा।"

झलकारी को एक तंबू में बंद करके पहरा बिठा दिया गया। अवसर पाकर झलकारी रात में चुपके से भाग निकली। जनरल रोज ने सुबह होते ही किले पर भयंकर आक्रमण कर दिया। उसने देखा कि झलकारी एक तोपची के पास खड़ी हुई अपनी बंदूक से गोलियों की वर्षा कर रही है। अंग्रेजी तोप से निकला हुआ एक

गोला झलकारी के पासवाले तोपची को लगा। वह तोपची उसका पति पूरनसिंह था। अपने पति को गिरा हुआ देखकर तोप का संचालन झलकारी ने सँभाला और वह शत्रु सेना को विचलित करने लगी। शत्रु सेना ने भी अपनी सारी शक्ति उसीके ऊपर लगा दी। एक गोला झलकारी को भी लगा और 'जय भवानी' कहती हुई वह भूमि पर गिर पड़ी। वह अपना काम कर चुकी थी।

□

★ ताँतिया ★ दोपिया ★ बिजनिया

होशियारसिंह खंडवा जिले में सर्किल इंस्पेक्टर पुलिस के पद पर नाम कमा चुके थे और उनका छोटा भाई गभरूसिंह उसी जिले के अंतर्गत किसी थाने पर थानेदार के रूप में कार्यरत था। दोनों ही भाई साहसी, निडर और कर्तव्यपरायण थे। उनके पिता ठाकुर बिसेसरसिंह फौज की नौकरी से मुक्त होकर बारी-बारी से अपने दोनों पुत्रों के पास रहा करते थे। उन्हें अपने दोनों पुत्रों पर बड़ा गर्व था। उस समय वे अपने बड़े पुत्र होशियारसिंह के पास रह रहे थे। उनका छोटा पुत्र गभरूसिंह भी किसी कार्यवश अपने बड़े भाई के पास आया हुआ था।

उन दिनों खंडवा ब्रिटिश शासन के अंतर्गत था। संपूर्ण खंडवा क्षेत्र और निमाड़ उन दिनों एक भील डाकू के आतंक का शिकार था, जिसे टंटिया भील या ताँतिया भील के नाम से पुकारा जाता था। उस भील सरदार का वास्तविक नाम टंड्रा था। उससे सरकारी अफसर या धनिक लोग ही भयभीत थे, आम जनता उसे 'टंटिया मामा' कहकर उसका आदर करती थी और उससे अभयदान पाती थी। टंटिया भील का भी उसूल था कि यदि वह सताता था तो केवल फौज एवं पुलिस के अफसरों को या उससे दुश्मनी रखनेवाले धनिकों और बड़े लोगों को; वह डाके डालता था तो सरकारी कोषालयों पर या अपनी कंजूसी के लिए कुख्यात धनिकों के घर। अपने दल के ऊपर खर्च करने के पश्चात् उसके पास जो कुछ बचता था, सबकुछ वह गरीबों पर खर्च कर देता था। जाने कितने निर्धन व्यक्तियों की बेटियों के विवाह का खर्च वह स्वयं उठाता था और कितने निर्धन परिवारों को गुजारे के लिए धन देता था। योग्य और जरूरतमंद विद्यार्थी भी अपने टंटिया मामा की कृपा से अपनी पढ़ाई पूरी करते थे। वह सरकार का दुश्मन और गरीबों का मसीहा था।

बात यहाँ से चली थी कि खंडवा में पुलिस इंस्पेक्टर होशियारसिंह और उनका थानेदार भाई गभरूसिंह किसी विशेष प्रयोजन से एकत्र हुए थे। प्रयोजन यही था कि सरकार चाहती थी कि वे दोनों ताँतिया भील को गिरफ्तार करने का हौसला

दिखाएँ और तरक्की पाएँ। उन्हें भी मालूम था कि उनके इरादों का ताँतिया भील को पता है और इसी कारण वे लोग भी बहुत सतर्कता के साथ रहते थे।

उस रात वे दोनों भाई एक ही कमरे में सो रहे थे। पासवाले कमरे में उनके पिताजी सो रहे थे। देर रात तक वे ताँतिया भील की गिरफ्तारी की योजनाओं पर विचार करते रहे थे। रात के लगभग दो बजे बड़े भाई होशियारसिंह की नींद खुली और उन्हें आभास हुआ कि बाहर कोई व्यक्ति है। लपककर अपने हथियार को उठाने के क्रम में किसी वस्तु से ठोकर खाकर् वे अपने छोटे भाई गभरूसिंह पर गिर पड़े। गभरूसिंह ने सोचा कि ताँतिया भील ने उसे दबोच लिया है। अपने ऊपर गिरे हुए बड़े भाई को ताँतिया भील समझकर उसने मुक्कों के प्रहार प्रारंभ कर दिए। बड़े भाई को भी यही भ्रम हुआ कि ताँतिया भील ही उसपर प्रहार कर रहा है, अत: अपनी पूरी शक्ति के साथ वे भी अपने छोटे भाई पर पिल पड़े। घर में अँधेरा था और दोनों भाई आपस में ही गुँथे हुए एक-दूसरे पर प्रहार करने में व्यस्त थे। पास के कमरे में सोए हुए उनके पिताजी की नींद खुल गई और यह जानने के लिए कि माजरा क्या है, वे टॉर्च लेकर अपने पुत्रों के कमरे की ओर लपके। उन्होंने टॉर्च के प्रकाश में देखा कि उनके दोनों पुत्र एक-दूसरे पर मुक्कों से प्रहार कर रहे हैं। पिताजी ने बारी-बारी से अपने दोनों पुत्रों के चेहरों पर प्रकाश डाला और क्रोध से चिल्ला पड़े—

"क्या हो गया है तुम दोनों भाइयों को, जो दुश्मनों की तरह एक-दूसरे के खून के प्यासे बन गए हो?" अपने पिताजी का प्रश्न सुनकर और टॉर्च की रोशनी में एक-दूसरे के चेहरे देखकर दोनों भाइयों को अपनी गलती मालूम हुई और बड़ी शर्मिंदगी के साथ उन्होंने पिताजी के साथ स्थिति स्पष्ट की कि वे एक-दूसरे को ताँतिया भील समझकर परस्पर भिड़ गए थे। यह बात बहुत दिनों तक बाहर नहीं फैलने दी गई।

जो ताँतिया भील पूरे निमाड़ क्षेत्र में सरकार और धनिकों के लिए आतंक बना हुआ था, उसे परिस्थितियों ने ऐसा बनाया था। ताँतिया का जन्म सन् १८४२ में निमाड़ क्षेत्र के विरदा नामक ग्राम में हुआ था। उसके पिता का नाम भाऊसिंह भील था। अपने पिता की देखरेख में ताँतिया का बचपन व्यतीत हुआ। बचपन से ही वह निर्भीक और जुझारू प्रवृत्ति का था। अपने समवयस्क लड़कों की टोली का नेतृत्व कर आसपास के खेत, खलिहान और बगीचों को उजाड़ना उसके प्रिय खेल थे। इन कामों में उसे भागना-दौड़ना तो पड़ता ही था, कभी-कभी उसे मार भी खानी पड़ती थी। वह सभी तरह से पक्का हो गया था।

अपने जन्म स्थान के पास ही पोखर नाम के एक गाँव में ताँतिया के पिता

भाऊसिंह कृषि-कार्य करते थे। तीस वर्ष तक ताँतिया ने भी कृषि-कार्य में अपने पिता का साथ दिया। पिता की मृत्यु के पश्चात् कृषि-कार्य का उत्तरदायित्व ताँतिया पर ही आ पड़ा। उसकी माता का देहांत बहुत पहले ही हो चुका था।

एक वर्ष वर्षा न होने के कारण खेती चौपट हो गई; लेकिन सरकारी मालगुजार ने लगान वसूली से सभी को माफी न देते हुए केवल उन किसानों को माफी दी, जिन्होंने कुछ ले-देकर उसे प्रसन्न कर लिया। ताँतिया ने मालगुजार के भ्रष्टाचार के विरुद्ध दूसरों को भी उकसाया और स्वयं भी लगान नहीं चुकाया। परिणाम यह हुआ कि कानूनी कार्रवाई करके मालगुजार ने ताँतिया को उसकी मौरूसी जमीन से बेदखल कर दिया। बेदखल किए जाने पर भी ताँतिया ने अपनी हेकड़ी के आधार पर अपने खेतों की जुताई की। मालगुजार ने उसपर मुकदमा चलाकर उसे एक वर्ष के कठोर कारावास का दंड दिलवा दिया। जेल की यातनाओं ने ताँतिया को और अधिक उग्र तथा प्रतिशोधी बना दिया। जेल की सजा काटकर वह दूसरे किसानों के खेतों पर मजदूर की तरह काम करके अपने दिन व्यतीत करने लगा।

पोखर गाँव का पटेल हीमन यह चाहता था कि ताँतिया जैसा परिश्रमी और निर्भीक व्यक्ति उसके नौकर के रूप में काम करे; लेकिन ताँतिया ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। हीमन पटेल स्वयं भी ताँतिया का विरोधी हो गया और वह गाँव के अन्य लोगों को भी उसके विरुद्ध उकसाने लगा। वह ताँतिया को किसी कुचक्र में फँसाने की युक्ति भी सोचने लगा।

हीमन पटेल को ताँतिया को फँसाने का एक अवसर शीघ्र ही हाथ लग गया। गाँव के एक व्यक्ति के घर चोरी हुई और चोरी का माल किसी अन्य व्यक्ति के घर से बरामद हो गया। हीमन पटेल ने दबाव डालकर असली चोर से यह बयान दिलवा दिया कि ताँतिया ही वह माल उसके घर रख गया था। जब पुलिस ताँतिया को पकड़ने पहुँची तो ताँतिया ने इस कृत्य का विरोध करते हुए कुछ पुलिसवालों की पिटाई कर दी। चोरी के मुकदमे में तो उसे नहीं फँसाया जा सका, लेकिन पुलिसवालों के साथ मारपीट करने में उसे एक माह के कठोर कारावास की सजा हो गई। उसे बहुत यातनाएँ भी दी गईं।

ताँतिया ने सोचा कि जब जंगल की राह पकड़ ही ली है तो अकेले रहने से काम नहीं चलेगा। उसने अपनी ही भील जाति के लोगों का एक दल बनाने का दृढ़ निश्चय कर डाला। सौभाग्य से उसे दो बहुत अच्छे साथी मिल गए। खजूरी गाँव में एक भील रहता था, जिसका नाम बिजनिया था। बिजनिया काला, कुरूप, क्रूर और पहाड़ जैसे डीलडौलवाला व्यक्ति था। उसे पाकर ताँतिया का आतंक और बढ़

गया। दोपिया नाम का एक अन्य भील भी ताँतिया के दल में सम्मिलित हो गया। दोपिया भी अत्यंत चालाक और क्रूर व्यक्ति था। इस प्रकार की योग्यता रखनेवाले अन्य दस-बारह भीलों को भी ताँतिया ने अपने दल में सम्मिलित कर लिया।

अब जंगल ही ताँतिया का घर था। यदि कभी-कभी पोखर जाने की उसकी इच्छा होती थी तो वह वहाँ कोई वारदात करने के या हीमन पटेल से बदला लेने के इरादे से जाता था। यदि पटेल के प्रभाव के लोग उसे कहीं मिल जाते तो वह उनका अपहरण कर लेता और अच्छी-खासी फिरौती लेकर ही उन्हें छोड़ता था।

उधर पोखर गाँव का पटेल हीमन भी ताँतिया और उसके साथियों को गिरफ्तार कराने की युक्ति सोचता रहता था। उसने ताँतिया के पास संधि प्रस्ताव भेजा और उसकी बहुत खुशामद करने लगा। एक बार उसने ताँतिया और उसके साथियों को एक भोज के लिए आमंत्रित किया। यह जानकर कि पटेल अपने कर्मों का प्रायश्चित्त कर रहा है, ताँतिया अपने साथियों के साथ उसके घर पहुँच गया। पटेल ने पुलिस को पहले से ही छिपा रखा था। परिणाम यह हुआ कि ताँतिया और उसके साथी धोखे से गिरफ्तार कर लिये गए। उन लोगों को खंडवा नगर की सुदृढ़ जेल में बंद कर दिया गया।

खंडवा जेल में बंद होने के पश्चात् ताँतिया का एक ही चिंतन था कि किस प्रकार वह जेल से मुक्त होकर स्वच्छंद वायु में विचरण कर सके। जेल के अहाते में एक बार उसे लोहे की छड़ का एक टुकड़ा मिल गया। उस टुकड़े को उसने अपनी कोठरी में सुरक्षित रख लिया। एक रात ताँतिया ने अपने साथी दोपिया की सहायता से उस लोहे की छड़ का उपयोग करके अपनी कोठरी की दीवार में इतना बड़ा सूराख कर लिया, जिसमें से एक व्यक्ति बाहर निकल सके। जेल के अधिकारियों ने ताँतिया और उसके सभी साथियों को एक ही कोठरी में बंद करके रखा था। इसका लाभ उठाकर वे सभी दस-बारह लोग एक-एक करके उस सूराख में से कोठरी के बाहर हो गए और अपने साथ जेल के कंबल भी ले गए। कोठरी से बाहर निकलकर अब वे लोग जेल के अहाते में थे। अब उन्हें अहाते की पंद्रह फीट ऊँची दीवार फाँदनी थी। बिजनिया का डीलडौल पहाड़ जैसा था ही। वह दीवार के सहारे खड़ा हो गया और उसने दोपिया को अपने कंधों पर खड़ा कर लिया। ताँतिया ने कंबलों को एक-दूसरे से बाँधकर एक मोटी रस्सी तैयार कर ली और उसके एक सिरे पर बड़ा-सा पत्थर बाँधकर उसे दीवार के दूसरी ओर इस प्रकार लटका दिया जिससे वह खिसक न सके। इस प्रकार उस कंबल की रस्सी के सहारे वे सभी लोग अहाते की दीवार के बाहर हो गए। अपने सभी साथियों को दीवार के नीचे उतार देने के पश्चात् ताँतिया ने दीवार पर खड़े होकर सिंह गर्जना की—

"ओ जेल के पहरेदारो! सुनो, मैं ताँतिया, अपने सभी साथियों के साथ जेल तोड़कर भाग रहा हूँ। जिसकी माँ ने सोंठ पिलाई हो, वह हमारा पीछा करे और हौसला हो तो हमें पकड़े।"

इस प्रकार अपने शत्रु को सावधान करके ताँतिया जेल की दीवार से नीचे कूद पड़ा और अपने साथियों के साथ अँधेरे में खो गया। जेल में हड़कंप मच गया। ताँतिया के दल का जोर-शोर के साथ पीछा किया गया; पर उसका दल एक रात में साठ मील पार करके पुलिस की पहुँच के बाहर हो गया।

जेल से मुक्त होने पर ताँतिया ने अपने दल का पुनर्गठन किया। सबसे पहले उसने पोखर गाँव के पटेल हीमन से प्रतिशोध लेने का निश्चय किया। एक रात वह अपने दल के साथ पोखर गाँव जा पहुँचा और पूरे गाँव को आग लगा दी। हीमन पटेल को पकड़कर बड़ी निर्ममतापूर्वक उसका वध कर दिया। पटेल के परिवार एवं स्त्री-बच्चों को उसने कोई कष्ट नहीं दिया और न संपत्ति की लूट की। अपने शत्रु से प्रतिशोध लेना ही उसका उद्देश्य था। अपने व्यक्तिगत शत्रु को समाप्त करने के पश्चात् अब ताँतिया का ध्यान देश के शत्रु अर्थात् अंग्रेजी सरकार की ओर गया। वह ब्रिटिश सरकार को उखाड़ तो नहीं सकता था, अतः उसने निश्चय किया कि अंग्रेजी खजानों को लूटा जाए और सरकार के अफसरों को दंडित किया जाए।

सन् १८७८ से १८८६ तक ताँतिया के दल ने चार सौ से अधिक डाके डालकर ब्रिटिश सरकार की नींद हराम कर दी। उसका नाम सुनते ही सरकारी अफसरों को कँपकँपी होने लगती थी। उसको पकड़ने का कोई हौसला दिखाता ही नहीं था और जो दिखाता भी था तो वह उसका दुष्परिणाम भी भुगतता था।

एक बार एक नए पुलिस अफसर ने ताँतिया को गिरफ्तार करने का बीड़ा उठाया। वह अपने विश्वस्त साथियों को लेकर एक छोटे से रेलवे स्टेशन पर उतरा। उस स्टेशन पर सामान उठानेवाले कुली नहीं थे। पुलिस दल को संकट में देखकर एक ग्रामीण पुलिस अफसर के सामने पहुँचा और बोला—

"हुजूर! इस छोटे से स्टेशन पर कुली तो मिलते नहीं हैं, यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं आपका सामान लेकर आपको पुलिस थाने तक पहुँचा दूँ। आपके बाकी साथी सामान के साथ यहीं रहें। पुलिस दारोगा अपने आदमियों को भेजकर इन्हें बुलवा लेंगे।"

पुलिस अफसर को यह प्रस्ताव अच्छा लगा। वह उस ग्रामीण के सिर पर अपना सामान रखकर उसके पीछे-पीछे चल दिया। पुलिस थाना उस स्थान से दूरी पर था और रास्ता सुनसान था। एक स्थान पर खड़े होकर ग्रामीण ने पुलिस अफसर से कहा—"हुजूर, मुझे बहुत बोझ लगने लगा है। तनिक आप यह सामान मेरे सिर

पर से उतारकर नीचे रख दें, तो मैं दम ले लूँ।''

पुलिस अफसर ने ज्यों ही ग्रामीण के सिर पर से अपना बक्सा उतारा, उस ग्रामीण ने पुलिस अफसर की बेल्ट से उसकी पिस्तौल खींच ली और बोला—

''जिस ताँतिया को पकड़ने आप आए हैं, वह आपके सामने है; यदि हौसला हो तो गिरफ्तार कीजिए।''

बेचारे पुलिस अफसर की घिग्घी बँध गई और उसने ताँतिया से जान बख्शने की प्रार्थना की। ताँतिया ने उसकी पिस्तौल तो पहले ही ले ली थी, उसकी कारतूस की पेटी भी ले ली और उसे छोड़ दिया।

एक अन्य अवसर पर, एक अन्य पुलिस अफसर ताँतिया को गिरफ्तार करने की डींग मारता हुआ पुलिस स्टेशन पर पहुँचा। वहाँ रहकर वह स्थानीय पुलिस के साथ ताँतिया को गिरफ्तार करने की योजना बनाने लगा। एक दिन थाने के सामने से एक नाई पेटी लिये हुए निकला तो अफसर ने अपनी बढ़ी हुई दाढ़ी साफ कराने के इरादे से उसे बुला लिया। दाढ़ी बनाने के क्रम में उस पुलिस अफसर से उस नाई की बातचीत भी होने लगी। बातचीत के क्रम में नाई ने कहा—

''हुजूर, यह पूरा इलाका ताँतिया भील के कारनामों से परेशान है। वह लूटता भी है और मारता भी है। यह मेरा दुर्भाग्य है कि वह अपनी हजामत बनवाने मुझको ही बुलवाता है। बड़े सँभल-सँभलकर मैं उसकी हजामत बनाता हूँ। मैं जानता हूँ कि जिस दिन भी मेरे उस्तरे से उसको खरोंच लग गई तो वह मुझे गोली मार देगा।''

नाई की यह बात सुनकर पुलिस अफसर को बहुत प्रसन्नता हुई कि ताँतिया का ठिकाना जाननेवाला एक व्यक्ति तो मिला। उसने ताँतिया का ठिकाना बताने के लिए नाई को पुरस्कार देने का प्रलोभन दिया। नाई का कथन था—

''हुजूर! मुझे उम्मीद है कि दो-तीन दिन के अंदर ही ताँतिया अपना आदमी भेजकर हजामत के लिए मुझे बुलाने वाला है। आप अकेले ग्रामीण के वेश में थोड़ा फासला रखकर मेरे साथ चलिए और उसका अड्डा देखकर वापस आ जाइए। फिर कभी उस स्थान पर दल-बल के साथ दबिस देकर आप या तो ताँतिया को गिरफ्तार कर लीजिए या उसे मार दीजिए।''

पुलिस अफसर को यह योजना पसंद आ गई। एक दिन नाई का संकेत पाकर, वह उसके निर्देशानुसार बगैर कोई हथियार लिये ग्रामीण के वेश में उसके साथ जंगल के रास्ते चल पड़ा। सुनसान स्थान पर पहुँचने पर नाई ने पुलिस अफसर से कहा—''जिस ताँतिया को पकड़ने आप आए हैं, वह आपके सामने है।''

यह सुनकर पुलिस अफसर का बुरा हाल था। ताँतिया ने उसे जमीन पर

पटककर अपने उस्तरे से उसकी नाक काट ली और उसे छोड़ दिया। बहुत दिन तक किसी पुलिस अफसर ने ताँतिया को पकड़ने का हौसला नहीं दिखाया।

ताँतिया ने अपने दल को तीन भागों में विभक्त किया। एक दल का नेता वह स्वयं था और अन्य दलों के नेता बिजनिया तथा दोपिया थे। इन तीनों दलों ने अंग्रेज शासित प्रदेश को रौंद डाला। ब्रिटिश सरकार ने ताँतिया की गिरफ्तारी के लिए विशेष पुलिस की स्थापना की और उसका नाम 'टंड्रा पुलिस' रखा गया। सरकार के इन प्रयत्नों के फलस्वरूप दोपिया और बिजनिया गिरफ्तार कर लिये गए। गिरफ्तारी के समय बिजनिया ने अत्यंत वीरतापूर्वक पुलिस का मुकाबला किया। उस समय बिजनिया के साथ केवल एक ही साथी था और वह भी घायल होकर अयोग्य हो गया। बिजनिया अकेला तलवार खींचकर पुलिस के पचास जवानों से भिड़ गया। वह इतने कौशल के साथ तलवार घुमा रहा था कि देखनेवाले आश्चर्यचकित थे। उसकी तलवार से किसीका हाथ उड़ा तो किसीका पैर। दो घंटे के भीषण युद्ध में उसने दो दर्जन पुलिस जवानों को घायल कर दिया। पूरी शक्ति के साथ निरंतर तलवार घुमाते रहने के कारण वह गिरकर अचेत हो गया और गिरफ्तार कर लिया गया। पुलिस ने उसके पूरे शरीर को लोहे की जंजीरों से कस दिया। उसे गाड़ी में डालकर भी जंजीरों से कसा गया। नंगी तलवारों के पहरे में बिजनिया की गाड़ी खंडवा नगर लाई गई। उसकी एक झलक पाने के लिए खंडवा नगर के नर-नारी उमड़ पड़े। उसकी लाल-लाल आँखों से आँखें मिलाने का किसीको साहस नहीं होता था।

थोड़े दिन बाद समाचार मिला कि ताँतिया का साथी दोपिया जबलपुर जेल तोड़कर भाग निकला है। इस समाचार को सुनकर पुलिस विशेष सतर्क हो गई तथा बिजनिया का पहरा और कड़ा कर दिया गया।

बिजनिया पर मुकदमा चलाया गया और उसे फाँसी की सजा सुनाई गई। पोखर गाँव में जहाँ ताँतिया एवं बिजनिया ने हीमन पटेल का वध किया था, एक वृक्ष से लटकाकर बिजनिया को सरेआम फाँसी दी गई और उसकी लाश को दिन-भर लटकाए रखा गया, जिससे अन्य लोग उसे देख-देखकर आतंकित होते रहें।

अपने साथी बिजनिया की मृत्यु से ताँतिया विचलित हो गया। उसने दो महीने उदासीन रहकर अपने साथी की मृत्यु का शोक मनाया। जब उसने देखा कि इस निष्क्रियता का प्रभाव उसके अन्य साथियों पर पड़ रहा है तो वह पुनः सक्रिय हो उठा। उसने रौद्र रूप धारण करके उपद्रव मचाना प्रारंभ कर दिया। पुलिस दल के साथ उसकी कई बार मुठभेड़ हुई; लेकिन हर बार पुलिस दल को ही पराजित होना पड़ा।

पुलिस दल के साथ निरंतर जूझते हुए ताँतिया को ग्यारह वर्ष हो चुके थे। उसका साथी दोपिया भी पुनः पकड़ा जा चुका था और वह आजन्म कारावास का दंड भुगत रहा था। भूख-प्यास और निरंतर भागते-दौड़ते रहने के कारण ताँतिया बहुत थक गया था। उसकी आयु भी पैंतालीस वर्ष की हो चुकी थी। उसने सोचा कि अब पुलिस के साथ संधि कर लेनी चाहिए। वह स्वयं जाकर आत्मसमर्पण नहीं करना चाहता था। किसी माध्यम की उसे तलाश थी। आखिर गणपत नाम के एक व्यक्ति ने माध्यम बनकर ताँतिया को विश्वास दिलाया कि वह सरकार के साथ उसकी सम्मानजनक संधि करा देगा।

सन् १८८६ में रक्षाबंधन के दिन गणपत ने संधिवार्त्ता के लिए अपने घर ताँतिया को आमंत्रित किया। ताँतिया अपने छह साथियों के साथ गणपत के घर पहुँच गया। गणपत ने अपने घर के एक भाग में मेजर ईश्वरीप्रसाद और उसके दल को पहले से ही छिपा रखा था। गणपत ने ताँतिया की बहुत आवभगत की। जब काफी सत्कार हो चुका तो गणपत ने उन्हें दूसरे कमरे में भोजन के लिए आमंत्रित किया। ताँतिया और उसके साथी जब अपने हथियार साथ लेने लगे तो गणपत ने यह कहकर मना कर दिया कि हथियारों की रक्षा के लिए मैं यहाँ अपना एक आदमी बिठाए देता हूँ। अपने साथी पर विश्वास करके इसपर ताँतिया ने कोई आपत्ति नहीं की। जब वे लोग बैठकर भोजन करने लगे तो मेजर ईश्वरीप्रसाद का दल उन निहत्थे लोगों पर टूट पड़ा। ताँतिया तथा उसके दो साथियों को दबोच लिया गया और शेष साथी निकल भागने में सफल हो गए।

२६ सितंबर, १८८६ को जबलपुर के डिप्टी कमिश्नर की अदालत में ताँतिया पर मुकदमा चलाया गया और नवंबर मास में उसे फाँसी पर लटका दिया गया। इस प्रकार ब्रिटिश शासन ने अपने एक भयंकर शत्रु से मुक्ति प्राप्त की। सामान्य जनता के दिलों में ताँतिया मामा अभी तक रमा हुआ है।

□

★ तात्या टोपे

उस समय ग्वालियर राज्य का नगर शिवपुरी उतना बड़ा नहीं था, जितना बड़ा वह आज है। फिर भी १८ अप्रैल, १८५९ को जब लोगों ने सुना कि वीरता का मानवीय चक्रवात तात्या टोपे गिरफ्तार कर लिया गया है और फाँसी पर झुलाने के लिए पूरी तैयारियाँ कर ली गई हैं तो नगरवासी वधस्थल की ओर दौड़ पड़े। लोग

उस महावीर की एक झलक पाने के लिए दौड़ लगा रहे थे, जो न केवल भारतीयों की श्रद्धा का केंद्र बना हुआ था, प्रत्युत जो समस्त यूरोप और विशेष रूप से इंग्लैंड में सर्वाधिक चर्चा तथा प्रशंसा का पात्र बना हुआ था। क्या कारण था कि तात्या टोपे इंग्लैंड में बड़े-बड़े फौजी जनरलों से भी अधिक लोकप्रिय बना हुआ था? इसका कारण था तात्या का प्रलय-प्रभंजन स्वरूप, जिसने बड़ी-बड़ी ब्रिटिश फौजों को केवल छकाया और परास्त ही नहीं किया, अपितु निरंतर दस महीने तक उनसे हाथ-हाथ-भर की दूरी तक रहकर भी उनके हाथ नहीं आया।

तात्या टोपे

नानासाहब पेशवा के लिपिक के रूप से उन्नत होकर वह १८५७ के स्वाधीनता समर का महासेनापति बन गया, यह तात्या के लिए कम गौरव की बात नहीं थी। कालपी, ग्वालियर और कानपुर को अपने आधिपत्य में लेने के पश्चात् तात्या ही अंग्रेजों का सर्वाधिक कट्टर शत्रु माना जाने लगा। महारानी लक्ष्मीबाई की वीरगति के पश्चात् तो ब्रिटिश हुकूमत ने अपनी सारी शक्ति केवल तात्या टोपे को गिरफ्तार करने या उसे समाप्त करने में लगा दी।

ब्रिटिश फौज के कर्नल होम्स को जब मालूम हुआ कि तात्या दक्षिण दिशा में प्रस्थान कर रहा है तो वह बहुत बड़ी फौज लेकर उसका मार्ग रोकने के लिए जा पहुँचा। होम्स को आया देखकर तात्या ने उसे चकमा दिया और उसने टोंक राज्य पर हमला बोल दिया। टोंक के नवाब की जो फौज तात्या के मुकाबले के लिए भेजी गई थी, उसने तात्या का अभिनंदन करके अपनी तोपें उसके हवाले कर देने में ही अपनी खैर समझी।

कर्नल होम्स ने मुँह की खाकर अपनी सहायता के लिए रॉबर्ट्स को बुला भेजा। अब दोनों की सेनाओं ने तात्या को ऐसे स्थान पर घेरा, जहाँ से वह किसी प्रकार भी नहीं निकल सकता था। दो तरफ अंग्रेजों की विशाल सेनाएँ और एक तरफ भयंकरता से उफनती हुई चंबल नदी। हवा की तरह उड़ता हुआ तात्या बूँदी जा पहुँचा और वहाँ से नीमच, नसीराबाद होता हुआ नाथद्वारा में जाकर निकला; जहाँ उसने मंदिर में भगवान् के दर्शन किए। अंग्रेजी सेनाएँ उसका पीछा कर रही थीं। स्वयं उसकी सेना थक चुकी थी। अतः उसने युद्ध करके सेना की थकान को मिटाना चाहा। रॉबर्ट्स

की सेना से उसका जमकर संघर्ष हुआ, जिसमें तात्या की तोपें छिन गईं और उसकी सेना छिन्न-भिन्न हो गई। तात्या पराजित हुआ, पस्त नहीं हुआ।

अंग्रेजी सेनाओं ने चंबल की ओर तात्या को फिर खदेड़ा। पर इस बार चंबल भी उसका रास्ता नहीं रोक सकी। वह उसे पार कर गया। तात्या झालरापाटन पहुँच चुका था। वहाँ के नरेश ने तात्या से भिड़ने की वीरता दिखाने के लिए अपनी फौज भेजी; पर वह जाकर तात्या के सामने दुम हिलाने लगी। तात्या के हाथ बहुत बड़ी मात्रा में रसद और युद्ध सामग्री लगी। अब उसके पास तोपें भी थीं और घोड़े भी।

थोड़ी-सी युद्ध सामग्री हाथ लगते ही तात्या ने बहुत बड़ी मात्रा में युद्ध सामग्री हथियाने के लिए इंदौर पर हमला करने की योजना बनाई। अंग्रेज उसकी योजना से भयभीत हो गए। उन्हें भय इस बात का था कि होलकर राज्य की सेनाएँ भी तात्या के साथ हो लेंगी और वहाँ से प्राप्त युद्ध सामग्री से उसकी शक्ति बहुत बढ़ जाएगी। उन्होंने तात्या को घेरने में अपनी पूरी शक्ति लगा दी। रॉबर्ट्स, होम्स, पार्क, मिचेल, होप और हार्ट आदि सेनापति अपनी-अपनी सेनाएँ लेकर इंदौर की तरफ बढ़ने लगे। कोई राजगढ़ की ओर से चला तो कोई उज्जैन की ओर से इंदौर भागता हुआ दिखाई दिया। कोई महू की तरफ से लपका तो कोई देवास की तरफ से। इस समय तात्या के पास भी बहुत बड़ी सेना थी; पर उसने अंग्रेजी सेना से भिड़कर अपनी शक्ति नष्ट करने के बजाय संकट के समय के लिए उसे सुरक्षित रखने में ही बुद्धिमानी समझी। वह अपनी सेना को विश्राम भी देना चाहता था। वह बेतवा नदी के निकट सिरोंज जा पहुँचा। यहाँ उसे कुछ और तोपें मिल गईं। सिंधिया के राज्य में ईसागढ़ स्थान से भी तात्या के हाथ कुछ तोपें लग गईं। यहाँ से उसने रसद भी प्राप्त की।

तात्या नर्मदा पार करके दक्षिण पहुँचना चाहता था और अंग्रेज जनरल सारी शक्ति इस प्रयत्न में लगा रहे थे कि वह दक्षिण न पहुँच सके। उन्हें भय था कि दक्षिण में उसे मराठों का सहयोग प्राप्त हो जाएगा। इस बार तात्या पूरी तरह से अंग्रेजी सेनाओं के पाश में फँस गया। मिचेल दक्षिण की ओर से बढ़ा, कर्नल लिडेल ने पूर्व की ओर से दबाया, कर्नल पार्क ने पश्चिम दिशा की तरफ से घेरा और चंबल की ओर से बढ़ना प्रारंभ किया रॉबर्ट्स ने। ये लोग अपने घेरे को तंग किए जा रहे थे, जिससे तात्या उनके जाल में फँस जाए। तात्या के साथ राव साहब पेशवा थे। दोनों में विचार-विमर्श हुआ। वनखंड में प्रवेश करके वे तालवेहट जा पहुँचे। अंग्रेजों ने सोचा कि तात्या ने दक्षिण पहुँचने का विचार त्याग दिया है। वह तात्या था, जो पर्वतों को लाँघता हुआ, जंगलों को चीरता हुआ और नदियों को फाँदता हुआ दक्षिण की ओर बढ़ रहा था। कर्नल पार्क और मिचेल से आँखमिचौनी

खेलता हुआ तात्या नर्मदा तट पर पहुँच गया। लोगों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, जब उन्होंने सुना कि तात्या नर्मदा पार कर गया। अंग्रेजी सेनाएँ हाथ मलती रह गईं। यूरोप के लोग भी तात्या की प्रशंसा किए बिना न रह सके।

तात्या अंग्रेजों को अपनी बुद्धि, वीरता और चातुर्य के खेल दिखा रहा था। अंग्रेजी सेनाएँ और अंग्रेजभक्त देशी नरेश उसके नाम से काँप रहे थे। वह कभी अंग्रेजों के तार-यंत्र नष्ट करता तो कभी उनकी डाकगाड़ियाँ लूटता। वह बड़ौदा पहुँचना चाह रहा था। करगूण नामक स्थान पर अंग्रेज सेनापति मेजर संडरलैंड की सेना के साथ तात्या का घोर संघर्ष हुआ। दोनों ओर से दनादन गोलियाँ चल रही थीं। इसी समय तात्या ने अपनी सेना को आदेश दिया—"नदी में कूद पड़ो!" देखते-ही-देखते तात्या की सेना गोलियों की बौछारें झेलती हुई नर्मदा की धारा चीरकर उस पार पहुँच गई।

तात्या और राव साहब बड़ौदा से केवल पचास मील दूर रह गए थे, पर उन्हें अपना मार्ग बदलना पड़ा। उनका पीछा करते हुए कर्नल पार्क छोटा उदयपुर जा पहुँचा। तात्या एक बार फिर कठिनाइयों से घिर गया। उसके दक्षिण में नर्मदा उसका रास्ता रोके थी, पश्चिम में रॉबर्ट्स उसके सामने था और पूर्व दिशा में ऐसी दुर्गम ढलान थी, जिसे भेदा नहीं जा सकता था। तात्या ने सूझबूझ और साहस से कठिनाइयों के इस चक्रव्यूह को भी भेद डाला। उदयपुर की तरफ बढ़ता हुआ वह प्रतापगढ़ जा पहुँचा। मेजर रॉक ने यहाँ तात्या का मार्ग रोक दिया। तात्या ने सीधा हमला करके रॉक की सेना को चीर डाला और बेदाग निकल गया। मेजर रॉक का सिर शर्म से नीचा हो गया।

कभी इधर, कभी उधर घूमता हुआ तात्या देवास राज्य के क्षेत्र में जा पहुँचा। अंग्रेजी सेनाओं ने वहाँ भी उसे चारों ओर से घेर लिया। इस बार तो अंग्रेजी सेना के लोगों ने तात्या को देख भी लिया और वे हर्ष के मारे चिल्ला उठे कि तात्या मिल गया। उनकी बुद्धि तब ठिकाने आई, जब तात्या उनके हाथों से निकल गया। वे हाथ मलते हुए यह कहते रह गए—"अभी तो तात्या इधर था, अभी उधर था, अब कहाँ गया?"

तात्या देवास में डूबा तो अलवर में जाकर निकला और उसने वहाँ गोता लगाया तो ग्वालियर की एक जागीर पाड़ौन में जाकर निकला। पाड़ौन में तात्या अपने एक पुराने मित्र मानसिंह के पास जा पहुँचा। ग्वालियर नरेश से रुष्ट होकर मानसिंह पाड़ौन के वनखंड में अपना समय बिता रहा था। अंग्रेजों को भी मालूम हो गया कि तात्या ने मानसिंह के यहाँ डेरा जमा रखा है। अंग्रेज पीछा करके तात्या को हथियाने में निरंतर असफल हो रहे थे। अतः इस बार उन्होंने भेदनीति का जाल

बिछाया। उन्होंने एक दूत मानसिंह के पास भिजवाकर कहलाया कि यदि वह तात्या को पकड़वा दे तो ग्वालियर नरेश से कहकर उसे नरवर का राज्य दिलाने के अतिरिक्त भी और कई बड़े-बड़े सम्मान दिए जाएँगे। मानसिंह के दिल में दगा उत्पन्न हो गई। इधर उसने अपने कुछ साथियों के साथ तात्या को एक सुरक्षित स्थान पर भेज दिया और उधर उसने अंग्रेजी फौज को बुला भेजा।

७ अप्रैल, १८५९ को जब तात्या अपने मित्र मानसिंह द्वारा बताए सुरक्षित स्थान पर बेफिक्री से गहरी निद्रा में लीन था तो लगभग अर्द्धरात्रि के समय अंग्रेजी सेना ने उसे दबोच लिया। यह वनैला सिंह अब अंग्रेजों के पिंजरे में था।

बंदी तात्या को कड़े पहरे के बीच शिवपुरी में जनरल मीड की छावनी ले जाया गया। उसपर अंग्रेज हुकूमत के विरुद्ध युद्ध करने और कई हत्याओं का आरोप लगाया गया। सैनिक अदालत ने तात्या को फाँसी का दंड सुना दिया। जनरल मीड ने तात्या से पूरे अभियान का हाल सुना और उसे पूर्णरूप से सत्य पाया।

तात्या को फाँसी दिए जाने का समाचार सुनकर शिवपुरी की जनता भारत माता के उस अनोखे सपूत को देखने के लिए उमड़ पड़ी। अंग्रेजी सेना ने भीड़ को वधस्थल पहुँचने से रोक दिया। कड़े पहरे के बीच फाँसी देने का कार्य संपन्न किया गया।

१८ अप्रैल, १८५९ को अपराह्न चार बजे तात्या को वधस्थल ले जाया गया। तात्या ने अंग्रेज अधिकारियों से एक बात दुबारा कही कि उसके वृद्ध पिता को किसी भी प्रकार से त्रस्त न किया जाए, क्योंकि वे पूर्णरूप से निर्दोष हैं। बड़े निस्संकोच और निर्भीक भाव से तात्या सीढ़ियाँ चढ़कर मृत्यु-मंच पर जा पहुँचा। आँखें ढकने के लिए जब उसे टोप पहनाया जाने लगा तो उसने कहा—"इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। मैं अपनी मौत को आमने-सामने देखने के लिए तैयार हूँ।" उसे टोप नहीं पहनाया गया। उसके हाथ-पैर भी नहीं बाँधे गए। तात्या ने फाँसी का फंदा स्वयं खींचकर अपने गले में डाल लिया। फंदा कसा गया, हत्था खींचा गया और झटके के साथ वह तख्ता नीचे गिर गया, जिसपर तात्या खड़ा था। उसकी देह रस्सी के सहारे झूल रही थी। उसके प्राण-पखेरू उड़ चुके थे। उसका पार्थिव शरीर रस्सी के सहारे सूर्यास्त तक झूलता रहा।

अंग्रेज अफसर निशानी के रूप में रखने के लिए तात्या के सिर से गुच्छे-के-गुच्छे बाल निकालकर ले गए। इंग्लैंड में आज तक तात्या के बालों का प्रदर्शन करके उसकी वीरता की कहानियाँ कही और सुनी जाती हैं।

□

★ तिरुमल आचार्य

तिरुमल आचार्य

इंग्लैंड की राजधानी लंदन में जब भारत के क्रांतिकारी मदनलाल धींगरा ने १ जुलाई, १९०९ को अत्याचारी कर्जन वायली को गोली से उड़ा दिया तो इस कृत्य की निंदा करने के लिए लंदन के कैक्सटन हॉल में एक सभा आयोजित की गई; जिसमें भारत के आगाखाँ और विपिनचंद्र पाल जैसे नेता भी सम्मिलित हुए। जब आगाखाँ ने निंदा का प्रस्ताव रखा तो उसका विरोध करने सावरकर एकदम खड़े हो गए और कहा कि जब तक अदालत मदनलाल धींगरा का अपराध स्वीकार नहीं करती, उसके पहले निंदा का प्रस्ताव पास करना अदालत का अपमान करना है। एक अंग्रेज नौजवान को सावरकर पर क्रोध आ गया और सावरकर के चेहरे पर तगड़े मुक्के का प्रहार करते हुए उसने कहा—

"एक अंग्रेज के मुक्के का स्वाद चखकर देखो।"

सावरकर पर प्रहार होते देख एक हिंदुस्तानी नौजवान से नहीं रहा गया, जो वहीं पास बैठा था। उस युवक ने एक डंडे का जोरदार प्रहार उस उद्दंड अंग्रेज युवक की खोपड़ी पर करते हुए कहा—

"एक हिंदुस्तानी के डंडे का भी स्वाद चखकर देखो।"

एक अंग्रेज को उसीके घर में हिंदुस्तानी डंडे का स्वाद चखानेवाले इस भारतीय युवक का नाम था तिरुमल आचार्य, जिसे लोग एम.पी.टी. आचार्य के नाम से जानते हैं।

आचार्य का जन्म दक्षिण भारत के ट्रिप्लीकेन स्थान पर १५ अप्रैल, १८८७ को हुआ था। प्रारंभ से ही ये उग्र विचारों के व्यक्ति रहे और इसी प्रकार के विचारवालों के साथ इनकी अच्छी पटी। प्रसिद्ध लेखक के.सी. सुब्रह्मण्यम भारती के सहयोग से श्री आचार्य ने एक राष्ट्रीय पत्र के प्रकाशन का कार्य प्रारंभ किया। इस कार्य के लिए मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए आपने पूना पहुँचकर लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक से भेंट की।

सन् १९०७ में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन सूरत में हुआ। इस अधिवेशन में कांग्रेस में नरम दल और गरम दल के बीच खूब जोर-आजमाई हुई। एम.पी.टी. आचार्य भी इस सम्मेलन में पहुँचे और वहाँ लोकमान्य तिलक, अरविंद घोष, दादा साहब खापर्डे और सरदार अजीतसिंह जैसे उग्र नेताओं के साथ उनका अच्छा परिचय हो गया। कुछ समय पांडिचेरी में रहकर आचार्य कोलंबो होते हुए लंदन पहुँच गए। वहाँ भी श्यामजी कृष्ण वर्मा और सावरकर जैसे आजादी के दीवाने उन्हें मिल गए।

१९०८ में सावरकर के प्रयत्नों से लंदन में भारत के प्रथम स्वाधीनता संग्राम का अर्द्ध-शताब्दी समारोह मनाया गया। सावरकर ने १८५७ के स्वाधीनता संग्राम पर एक बहुत प्रामाणिक ग्रंथ लिखा। ब्रिटिश सरकार ने उस ग्रंथ को इंग्लैंड में प्रकाशित नहीं होने दिया। मूल ग्रंथ मराठी में लिखा गया था। आचार्य ने उस ग्रंथ के अंग्रेजी अनुवाद को हॉलैंड में जाकर प्रकाशित किया। कुछ दिन आप लिस्बन में रहे; पर ब्रिटिश सरकार ने पुर्तगाल सरकार पर दबाव डालकर उन्हें पुर्तगाल से निकलवा दिया।

पुर्तगाल छोड़कर आचार्य फ्रांस पहुँचकर पेरिस में रहने लगे। वहाँ भी भारतीय क्रांतिकारियों का समुदाय उनको मिल गया। पेरिस से ही मदाम भीकाजी कामा 'वंदेमातरम्' अखबार निकाल रही थीं। आचार्य उसके प्रकाशन में सहयोग देने लगे।

वे प्रथम महायुद्ध के दिन थे और अमेरिका में भारत के क्रांतिकारियों ने 'गदर पार्टी' की स्थापना कर ली थी। यह कैसे संभव था कि आचार्य उसमें सम्मिलित न होते! वे अमेरिका पहुँच गए और गदर पार्टी के कार्यों में सम्मिलित होकर उसके काम को आगे बढ़ाने लगे।

जर्मनी में 'बर्लिन कमेटी' नाम से भारतीय क्रांतिकारियों की एक संस्था गठित हुई तो आचार्य को वहाँ बुला लिया गया। वहाँ वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय जैसे महान् क्रांतिकारी के साथ कार्य करने का अवसर उन्हें मिला। बर्लिन कमेटी ने ही आचार्य को स्वाधीनता के प्रचार के कार्य से पैलेस्टाइन भेजा।

तिरुमल आचार्य का व्यक्तित्व प्रभावशाली था और वाणी की शक्ति उनको प्राप्त थी। स्वीडन आदि देशों में भी भारतीय क्रांति के प्रसार-कार्य से उन्हें भेजा गया।

जब अफगानिस्तान में अमीर के पद पर अमानुल्ला खाँ आसीन थे तो वहाँ भारत के महान् क्रांतिकारी राजा महेंद्रप्रताप पहुँचे और उन्होंने वहाँ 'आजाद हिंद सरकार' की स्थापना की। इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिए आचार्य को भी वहाँ

बुलाया गया। अफगानिस्तान से पहले शिष्टमंडल के बाद एक दूसरा शिष्टमंडल रूस भेजा गया, जिसमें आचार्य भी एक सदस्य थे। आचार्य ने रूस के लोगों को बहुत प्रभावित किया। एक रूसी युवती के साथ इनकी शादी हुई और ये सपत्नीक १९२२ में जर्मनी जा पहुँचे। अपने इलाज के लिए गए भारत के महान् क्रांतिकारी नेता सुभाषचंद्र बोस से आचार्य की भेंट जर्मनी में हुई। सुभाष बाबू ने इन्हें कई उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य दिए और आचार्य ने उन्हें बखूबी संपन्न किया।

भारत को स्वाधीनता मिलने के पश्चात् ही सन् १९४८ में तिरुमल आचार्य भारत पहुँच सके। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि जिन लोगों ने विदेशों में रहकर भारत की आजादी के लिए अपना जीवन खपा दिया, हमारा देश उनका उचित मूल्यांकन नहीं कर सका। जिस प्रकार महान् क्रांतिकारिन् मदाम भीकाजी कामा को अपने जीवन के अंतिम दिन अत्यंत गरीबी में बिताने पड़े और रोग-शय्या पर बंबई के अस्पताल में उनकी मृत्यु हुई, उसी प्रकार २० मार्च, १९६४ को भारत की आजादी के अप्रतिम योद्धा तथा महान् क्रांतिकारी पी.एम.टी. आचार्य को अत्यंत विपन्नावस्था में बंबई के भाटिया अस्पताल में दाखिल किया गया और वहीं देश की जय बोलते हुए वे इस दुनिया से कूच कर गए।

□

★ तिलका माँझी

बिहार के पर्वतीय प्रदेश में संथाल जाति और अंग्रेजी सेना के बीच भयंकर लड़ाई चल रही थी। संथाल लोग अपनी भूमि को अंग्रेजों से मुक्त करने के लिए लड़ रहे थे और अंग्रेज लोग संथाली विद्रोहियों को कुचलकर पर्वतीय प्रदेश को अपने अधिकार में लेने को लड़ रहे थे। संथाली विद्रोहियों का नेता था तिलका माँझी और अंग्रेजी सेना का संचालन कर रहा था अंग्रेज मजिस्ट्रेट मि. क्लीवलैंड।

अंग्रेजी सेना कितनी दूर है, यह देखने के लिए तिलका एक बहुत ऊँचे ताड़ के वृक्ष पर चढ़ गया। उस समय अंग्रेजी सेना पास ही झाड़ियों में छिपी हुई थी। मि. क्लीवलैंड ने तिलका माँझी को ताड़ के वृक्ष पर चढ़ा हुआ देख लिया। स्थिति का लाभ उठाने के लिए वे घोड़े पर चढ़कर ताड़ वृक्ष की ओर लपक पड़े। उनका इरादा था कि विद्रोही तिलका को या तो जीवित गिरफ्तार कर लिया जाए या उसे मार दिया जाए। उन्होंने अपनी टुकड़ी को भी पीछे आने के लिए कहा।

ताड़ वृक्ष के नीचे पहुँचकर मि. क्लीवलैंड ने ललकारकर कहा—

"तिलका! तुम अपना धनुष-बाण नीचे फेंक दो और वृक्ष से नीचे उतरकर हमारे सामने समर्पण कर दो।"

वीर तिलका ने अपनी जाँघों में ताड़ वृक्ष को दबाकर अपने दोनों हाथ मुक्त कर लिये और कंधे पर टँगा धनुष उतारकर, एक तीर मि. क्लीवलैंड को निशाना बनाकर छोड़ दिया। तिलका का तीर मि. क्लीवलैंड की छाती में गहरा घुस गया। वे घोड़े से गिरकर छटपटाने लगे। इस बीच तिलका फुरती के साथ उतरा और अंग्रेजी सेना के आने के पहले जंगल में विलीन हो गया। अंग्रेजी सेना जब घटनास्थल पर पहुँची तो उसे अपने अफसर का शव ही हाथ लगा।

तिलका माँझी छापामार युद्ध का सहारा लेकर अंग्रेजी सेना के साथ युद्ध करता हुआ मुँगेर, भागलपुर और संथाल परगना की चप्पा-चप्पा भूमि को रौंद रहा था।

अंग्रेजी सेना ने सर आर्थर कूट के नेतृत्व में तिलका को फँसाने के लिए अपनी चालाकी का जाल बिछाया। सेना ने कुछ दिन के लिए विद्रोहियों का पीछा करना बंद कर दिया। तिलका और उसके साथियों ने सोचा कि अंग्रेजी सेना निराश होकर पलायन कर गई है। विद्रोही संथाल विजयोत्सव मनाने में लीन हो गए। रात्रि को खूब नृत्य-गान हुआ। जिस समय संथाल वीर अपने समारोह में निमग्न थे, छिपी हुई अंग्रेजी फौज ने उन लोगों पर जोरदार आक्रमण कर दिया। बहुत से संथाली वीर या तो मारे गए या बंदी बना लिये गए। बड़ी मुश्किल से उनका नेता तिलका माँझी और उसके कुछ साथी निकलने में सफल हो गया। वह अब पर्वत शृंखला में छिप-छिपकर युद्ध करने लगा।

निरंतर पीछा होने के कारण तिलका के साथियों की संख्या कम होती जा रही थी। उन्हें खाद्य सामग्री भी नहीं मिल पा रही थी। तिलका और उसके बचे हुए साथी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भूख से मरने के स्थान पर तो आमने-सामने के युद्ध में मरना अच्छा रहेगा।

दृढ़ संकल्पी तिलका और उसके साथी एक दिन अंग्रेजी सेना पर टूट पड़े। भयंकर युद्ध हुआ। संथाल विद्रोहियों ने बहुत से अंग्रेज सैनिकों को मार गिराया। जनहानि उठाकर भी अंग्रेज लोग तिलका को गिरफ्तार करने में सफल हो गए।

अपनी हानि और पराजयों का बदला लेने के लिए अंग्रेजी सेना ने वीर तिलका को एक वटवृक्ष से लटकाकर फाँसी दे दी। अपने प्रदेश की आजादी की लड़ाई लड़ते हुए वीर तिलका माँझी स्वाधीनता संग्राम का पहला शहीद माना जाएगा। उसके कार्यकाल के नब्बे वर्ष पश्चात् सन् १८५७ का स्वाधीनता संग्राम छिड़ा।

तिलका माँझी का जन्म बिहार के आदिवासी परिवार में तिलकपुर में हुआ था। बचपन से ही वह तीर चलाने, जंगली जानवरों का शिकार करने, नदियों को पार करने और ऊँचे-ऊँचे वृक्षों पर चढ़ने में कुशल हो गया था। वह अंग्रेजों द्वारा अपनी जाति का शोषण सहन नहीं कर पाता था। उसने संकल्प कर लिया था कि वह अपनी जाति को अंग्रेजों के अत्याचारों से मुक्त करेगा। उसके सामने एक ही विकल्प था और वह था अंग्रेजों के साथ युद्ध। वीर तिलका ने अपने संकल्प को पूरा करने के लिए आजादी की बलिवेदी पर अपने प्राणों की भेंट चढ़ा दी।

□

★ दामोदर चाफेकर ★ बालकृष्ण चाफेकर
★ महादेव रानडे ★ वासुदेव चाफेकर

दामोदर चाफेकर

बालकृष्ण चाफेकर

स्वामी विवेकानंद की शिष्या भगिनी निवेदिता के सुकोमल हृदय में मानवीय संवेदनाओं का ज्वार उमड़ पड़ा, जब उन्होंने सुना कि महाराष्ट्र की एक माता के तीन लाल फाँसी के फंदों पर झुला दिए गए। उन्होंने कल्पना की कि चाफेकर बंधुओं की माँ बिना पानी की मछली जैसी तड़प रही होगी, पछाड़ खा-खाकर गिर रही होगी और विकल रोदन के क्रम में अपना कलेजा कूट रही होगी। इसी विचार से कि ऐसी व्याकुल माँ को सांत्वना के कुछ शब्द कहकर धैर्य प्रदान करना सभी का कर्तव्य है, भगिनी निवेदिता महाराष्ट्र के चाफेकर बंधुओं के परिवार में पहुँच गई।

पर यह क्या, उस माँ के मुखमंडल पर वेदना की एक रेखा भी नहीं है। उसके किसी भी व्यवहार से इस बात का आभास नहीं होता कि विपत्ति का इतना

महादेव रानडे

वासुदेव चाफेकर

बड़ा पहाड़ उसपर टूटा होगा। भगिनी निवेदिता ने देखा कि उस माँ के मुखमंडल पर एक अपूर्व तेज है; एक अलौकिक गर्व की दीप्ति है; एक अद्‌भुत गांभीर्ययुक्त संयत शांति की छटा है, जो हर दर्शक के हृदय में श्रद्धा का संचार कर देती है। निवेदिता अपनी वाणी में सांत्वना का शब्दकोश लेकर पहुँची थी, पर उस शब्दकोश के तो पृष्ठ ही नहीं खुल सके। जिस माँ के दर्शन से भारत की माँ की दर्शन-गरिमा का साक्षात्कार हो जाता हो, उसका प्रबोधन किन शब्दों में किया जाए—जब यह भगिनी निवेदिता को सूझ नहीं पड़ा तो लपककर उन्होंने माँ के चरण छूकर स्वयं को धन्य माना। सांत्वना देने के स्थान पर भारतीय माँ के आदर्शों के प्रति गर्व-भावना लेकर वे लौटीं और उन्हें यह विश्वास हो गया कि जब तक ऐसी माताएँ भारत में रहेंगी, भारत भारी-से-भारी विपत्ति से भी उबर सकता है।

चाफेकर नाम से जिन तीन सगे भाइयों के बलिदान ने भगिनी निवेदिता के हृदय में नए दर्शन का प्रकाश दिया, उनकी बलिदान कहानी हम सबको और हमारी भावी पीढ़ियों को वीर-भावनाओं की प्रेरणा प्रदान करती रहेगी।

दामोदर हरि चाफेकर, बालकृष्ण हरि चाफेकर और वासुदेव हरि चाफेकर पूना के निवासी थे। पिता कीर्तनकार थे, अतः बचपन भ्रमण और संघर्ष में बीता था। जब यौवन का पदार्पण हुआ तो लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की ओजस्वी वाणी ने अंतर में राष्ट्रीयता का सागर उद्वेलित कर दिया। भारत माता के लिए कुछ कर गुजरने का संकल्प मन में घर कर गया।

दामोदर एवं बालकृष्ण दोनों को ही बचपन से व्यायाम करने और अस्त्र-शस्त्र के संचालन में रुचि थी। सामान्य शिक्षा प्राप्त कर लेने के उपरांत उन्होंने सेना में प्रवेश करके भारतीय सैनिकों को विद्रोह के लिए उकसाने का संकल्प किया। दो बार प्रयत्न

करने पर भी उन्हें सेना में भरती नहीं किया गया। सेना में प्रवेश नहीं मिल सका तो क्या, उन्होंने युवकों की सेना का निर्माण स्वयं ही कर लिया और उन्हें सैन्य-प्रशिक्षण दिया जाने लगा। उनके हृदय में कोई भावी योजना पल रही थी।

चाफेकर बंधुओं को कुछ कर दिखाने का अवसर शीघ्र ही मिल गया। पूना में भयंकर प्लेग फैल गया। प्लेग की रोकथाम के उपायों को क्रियान्वित करने के लिए कमिश्नर के पद पर वाल्टर चार्ल्स रैंड की नियुक्ति हुई। अपनी सख्ती और दमन के कार्यों के लिए रैंड का नाम दूर-दूर तक फैल चुका था। पूना निवासी उसके नाम से काँपने लगे। किसी एक मोहल्ले में वह पहुँचता और गोरे सैनिकों को तैनात करके वह सभी रास्तों की नाकेबंदी कर देता था। उसके कर्मचारी तथा सैनिक बूट पहने हुए ही पूजागृहों तथा भोजनशाला में घुस जाते थे और विरोध करने पर गृहस्वामियों को मारने-पीटने एवं अपमानित करने लगते थे। घर का सामान उठा-उठाकर बाहर फेंक देना उनके लिए मामूली बात थी। कभी-कभी सैनिक लोग बहुमूल्य वस्तुओं को उठाकर ले भी जाते थे। प्लेग के कीटाणुओं को समाप्त करने के बहाने वे घरों में आग भी लगा देते थे। तब स्थिति असहनीय हो जाती थी जब सैनिक और कर्मचारी लोग महिलाओं के साथ अभद्र व्यवहार करने लगते थे। सारा पूना नगर रैंड के अत्याचारों से त्रस्त हो उठा था। स्थान-स्थान पर इसी प्रकार की चर्चाएँ होती रहती थीं। दामोदर चाफेकर और बालकृष्ण चाफेकर ने लोगों को इस त्रास से मुक्त करने का संकल्प कर लिया था। उनके होते हुए पूना निवासी इस प्रकार के त्रास सहें, इसे वे अपने यौवन का अपमान समझने लगे थे। उनका संकल्प था कि रैंड को समाप्त करके पूना निवासियों को उसके आतंक से मुक्त किया जाए।

चाफेकर बंधुओं को मालूम था कि सफाई अभियान के बहाने एक दिन उनके मकान पर भी छापा पड़ेगा। उन्होंने निश्चय कर रखा था कि यदि गोरे सैनिक उनके घर में किसी भी प्रकार का अभद्र व्यवहार करें तो एक भाई तो तलवार लेकर उनके ऊपर टूट पड़े और दूसरा भाई, बाहर स्थिति जमाए हुए, रैंड पर उसी प्रकार आक्रमण करके उसे समाप्त कर देगा। गोरे सैनिक उनके मकान में भी घुसे। उन्हें चौक पार करके शेष कमरों में प्रवेश करना था। चौक में चाफेकर परिवार की एक भैंस बँधी हुई थी। ज्यों ही गोरे सैनिक उसके पास से निकले, भैंस ने एक गोरे सैनिक को सींग दे मारा। यह दृश्य देखकर बालकृष्ण चाफेकर ठहाका मारकर हँस पड़ा। उसने कहा कि देखा, हमारी भैंस भी कितनी राष्ट्रीय है कि वह विदेशी सैनिकों की उपस्थिति भी बरदाश्त नहीं कर रही; फिर हम लोग आप लोगों की ज्यादतियाँ और अभद्रता कैसे बरदाश्त कर सकते हैं! और सचमुच ही उन लोगों ने चाफेकर परिवार में कोई ज्यादती नहीं की तथा दवाई छिड़ककर चले गए। उधर

दामोदर चाफेकर गली के नुक्कड़ पर घात लगाए हुए बैठे इंतजार कर रहे थे कि उनके मकान से शोरगुल सुनाई दे तो वे रैंड पर टूट पड़ें। उन्हें आश्चर्य हुआ, जब उन्होंने देखा कि थोड़ी ही देर में गोरे सैनिक चुपचाप उनके मकान से निकलकर दूसरे मकान में प्रविष्ट हो गए। बालकृष्ण ने उन्हें भैंसवाला किस्सा सुनाया तो वे दोनों बहुत देर तक हँसते रहे। उस दिन से उनकी भैंस भी उनके लिए पूजनीय हो गई। रैंड पर आक्रमण उस दिन टल गया।

चाफेकर बंधुओं ने निश्चय किया कि मि. रैंड का शिकार २२ जून, १८९७ को किया जाए, जब वह महारानी विक्टोरिया का राज्यारोहण दिवस हीरक जयंती के रूप में मना रहा हो। २२ जून, १८९७ का दिन भी आ पहुँचा। प्रातःकाल उठकर दामोदर और बालकृष्ण दोनों ने ही कार्य की सफलता के लिए ईश्वर से प्रार्थना की और उस दिन उन्होंने उपवास रखने का संकल्प किया। देवी-देवताओं की पूजा करने के उपरांत घर से निकलने के पहले उन्होंने अपनी राष्ट्रीय भैंस के भी पैर छुए और संकल्प की पूर्ति के लिए उससे आशीर्वाद माँगा।

चाफेकर बंधुओं ने तीन मास पूर्व से ही रैंड को अच्छी तरह पहचान लेने का अभ्यास प्रारंभ कर दिया था। वे चाहते थे कि और कोई नहीं, रैंड ही मारा जाए। दामोदर चाफेकर कई बार नौकरी माँगने के बहाने रैंड के कोचवान से पूछताछ कर आया था। मि. रैंड के बंगले का सही पता पाने के लिए वे उस क्षेत्र के डाकिए से भी पूछताछ कर चुके थे। सबसे छोटे भाई वासुदेव ने बारीकी से मि. रैंड की रुचियों और उसकी आदतों का अध्ययन किया था।

२२ जून को चाफेकर बंधु दिन-भर सक्रिय रहे। दोपहर को वे रैंड की खोज में गवर्नमेंट हाउस पहुँचे; पर वहाँ उसका पता न चल सका। गवर्नमेंट हाउस के पश्चात् वे सैंट मेरी चर्च पहुँचे। रैंड वहाँ उपस्थित मिला। चर्च में भीड़भाड़ बहुत थी और गोलियाँ चलने पर निरपराध लोगों के मारे जाने की आशंका थी, इस कारण चाफेकर बंधुओं ने वहाँ रैंड पर प्रहार करने का विचार स्थगित कर दिया।

क्रांतिकारियों को मालूम था कि संध्या समय फिर गवर्नमेंट हाउस में बड़ा जलसा होने वाला है, अतः संध्या होते ही वे वहाँ पहुँच गए। ठीक साढ़े सात बजे रैंड वहाँ पहुँचा; पर उसकी बग्घी के आसपास और भी बग्घियाँ थीं, इसलिए क्रांतिकारी अपनी योजना पूरी न कर सके। वे रैंड के लौटने की प्रतीक्षा में वहीं कहीं छिपे रहे।

क्रांतिकारियों ने मोरचाबंदी ठीक कर रखी थी। गवर्नमेंट हाउस के मुख्य फाटक पर दामोदर चाफेकर डटे थे। उनसे कुछ आगे उनका छोटा भाई बालकृष्ण था और उससे कुछ दूर महादेव रानडे ने अपनी स्थिति सँभाल रखी थी। रात्रि के

बारह बजकर दस मिनट पर रैंड की बग्घी कोठी से बाहर निकली। उसकी बग्घी के पीछे दूसरे अंग्रेज अफसर मि. आयरिस्ट की बग्घी थी। क्रांतिकारियों ने वहाँ उनपर आक्रमण नहीं किया। उनका विचार हुआ कि उसे थोड़ा एकांत में पहुँचने दिया जाए और तब वह भीड़भाड़ से दूर हो जाए तो उसे ठिकाने लगाया जाए।

दामोदर चाफेकर रैंड की बग्घी के पीछे वृक्षों की छाया में छिपता हुआ इस प्रकार दौड़ता जा रहा था कि उसके और बग्घी के बीच अधिक दूरी न हो जाए। ज्यों ही रैंड की बग्घी जमशेदजी की पीली कोठी के पास पहुँची, बालकृष्ण चाफेकर ने 'नारया' 'नारया' कहकर आवाज लगाई। आवाज रैंड ने भी सुनी; पर उसने सोचा कि कोई देहाती अपने साथी को आवाज दे रहा होगा। संकेत ध्वनि सुनते ही दामोदर चाफेकर लपककर बग्घी के पिछले पायदान पर खड़ा हो गया। उसने बग्घी का परदा ऊपर फेंका और अंदर हाथ डालकर बिलकुल निकट से रैंड पर अपनी पिस्तौल से गोली दाग दी। रैंड बग्घी में ही लुढ़क गया। रैंड की बग्घी के पीछे कुछ दूरी पर मि. आयरिस्ट की बग्घी थी। मि. आयरिस्ट तो शराब के नशे में झूम रहे थे, पर मिसेज आयरिस्ट ने अपनी आँखों से एक तगड़े व्यक्ति को रैंड साहब की बग्घी के पायदान से उतरकर भागते हुए देखा। वे अपने पति मि. आयरिस्ट को यह विवरण सुना ही रही थीं कि एक और धड़ाका हुआ। बालकृष्ण चाफेकर ने ठीक उसी प्रकार बग्घी के पायदान पर चढ़कर, अंदर हाथ डालकर बिलकुल निकट से मि. आयरिस्ट पर गोली चला दी। गोली उनके शरीर के पार हो चुकी थी। उनकी देह उनकी पत्नी के ऊपर लुढ़क पड़ी और घटनास्थल पर ही उनकी मृत्यु हो गई। तीनों ही क्रांतिकारी भाग निकले। वे पकड़े नहीं जा सके।

२३ जून को जब पूना निवासियों को मि. रैंड एवं मि. आयरिस्ट के वध का समाचार मिला तो विविध प्रकार की प्रतिक्रियाएँ देखने को मिलीं। अशासकीय क्षेत्रों में इन अत्याचारियों के वध से हर्ष एवं गर्व की लहर दौड़ गई और शासकीय क्षेत्रों में इस कांड से बौखलाहट फैल गई। शासन प्रभावित समाचार-पत्रों ने इस कांड की निंदा की तथा इसे पेशवाई को पुनरुज्जीवित करने का प्रयास कहा गया।

हत्यारों का पता लगाने का काम सी.आई.डी. सुपरिंटेंडेंट मि. ब्रुइन को सौंपा गया, जो बहुत ही धूर्त व्यक्ति था। दो महीने पश्चात् उसे सफलता की थोड़ी किरण दिखाई देने लगी। हत्यारों को गिरफ्तार करानेवाले को बीस हजार रुपए के पुरस्कार की घोषणा की गई। मि. ब्रुइन ने द्रविड़ बंधु नाम के दो भाइयों को अपने विश्वास में लिया। बड़े भाई का नाम गणेशशंकर द्रविड़ और छोटे भाई का नाम रामचंद्र द्रविड़ था। नीलकंठ चाफेकर बंधुओं द्वारा निर्मित क्लब का सदस्य रह चुका था और वह इनके मंतव्यों को जानता था। नौकरी और पुरस्कार के प्रलोभन

में आकर द्रविड़ बंधुओं ने पुलिस को यह भेद दे दिया कि यह काम चाफेकर बंधुओं का हो सकता है। इस भेद को प्राप्त करके बड़े भाई दामोदर हरि चाफेकर को गिरफ्तार कर लिया गया। छोटा भाई बालकृष्ण फरार हो गया।

सेशन जज मि. क्रो की अदालत में मुकदमा चला। जज की सहायता के लिए नियुक्त ज्यूरी के सभी सदस्यों का अभिमत था कि यह सिद्ध नहीं होता कि दामोदर चाफेकर ने स्वयं हत्या की है; पर इतना सिद्ध अवश्य होता है कि हत्या के समय वह वहाँ उपस्थित था। जज मि. क्रो ने इसी आधार पर दामोदर चाफेकर को फाँसी का दंड सुना दिया। फाँसी के पूर्व दामोदर चाफेकर की दो बार लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक से भेंट हुई। अपनी दूसरी भेंट के समय दामोदर चाफेकर ने लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के सामने अपनी माँग प्रस्तुत कर दी—

"मुझे तो बहुत शीघ्र ही फाँसी होने वाली है। आपसे प्रार्थना है कि आप अपनी 'गीता' की वह पुस्तक मुझे दे दें, जिसके द्वारा आप नित्य पाठ करते हैं। मैं जीवन के अंतिम क्षण तक उसे अपने साथ रखना चाहता हूँ।"

लोकमान्य तिलक ने फाँसी का दंड पाए हुए एक देशभक्त की इच्छा का पालन करने की दृष्टि से 'गीता' की अपनी निजी प्रति अपने हस्ताक्षर करके दामोदर चाफेकर को दे दी।

१८ अप्रैल, १८९८ का दिन दामोदर चाफेकर के लिए फाँसी का दिन निश्चित किया गया था। रात्रि को दामोदर चाफेकर गहरी नींद सोया। प्रातःकाल उठकर प्रभु-वंदना की और फाँसी के लिए तैयार हो गया। फाँसी का निश्चित समय आ पहुँचा; पर न्यायाधीश महोदय निश्चित समय पर नहीं पहुँच सके। देशभक्ति का पुरस्कार प्राप्त करने के लिए बलिदानी वीर व्यग्र हो रहा था। न्यायाधीश महोदय के विलंब से पहुँचने पर उसने अंग्रेजों की समय की पाबंदी के प्रति तीक्ष्ण व्यंग्य किया। 'गीता' की प्रति अपने हाथ में ली और लपककर फाँसी के तख्ते पर जा चढ़ा। जल्लाद ने फंदा गले में डाला और तख्ता नीचे खिसका दिया। दामोदर का शरीर फाँसी के फंदे पर झूल गया। मृत्यु के नागपाश में जकड़े जाने पर भी उसके हाथ की पकड़ ढीली नहीं हुई और 'गीता' की वह पुस्तक हाथ से नहीं गिरी।

फरारी की अवस्था में अपने बड़े भाई की फाँसी का समाचार सुनकर बालकृष्ण उदास और अस्वस्थ रहने लगा। वैसे वह पकड़ा नहीं जाता, पर जब उसने देखा कि उसके नाम से निरपराध लोगों को सताया जा रहा है और उन्हें यातनाएँ दी जा रही हैं तो उन्हें त्रास से बचाने के लिए उसने स्वयं पुलिस के दफ्तर में पहुँचकर आत्मसमर्पण कर दिया।

चाफेकर बंधुओं में से तीसरे भाई वासुदेव चाफेकर को यह समझते देर नहीं

लगी कि उसके भाई बालकृष्ण को भी फाँसी का दंड मिलेगा। उसका मन अधीर हो उठा। वह भी अपने भाइयों के पथ का अनुसरण करना चाहता था। वह अपनी माँ के पास जा पहुँचा और बोला—

"माँ, मेरे दोनों बड़े भाई तो मातृभूमि पर अर्पित हो चुके हैं। मुझे भी आज्ञा दो, माँ, कि मैं भी अपने बड़े भाइयों की भाँति भारत माता की वेदी पर स्वयं को अर्पित कर सकूँ।"

अपने पुत्र का यह प्रस्ताव सुनकर माँ के हृदय में ममता का सागर उद्वेलित हो उठा। उसकी आँखों से अश्रुधाराएँ बह चलीं। हृदय में तीव्र अंतर्द्वंद्व छिड़ गया। फिर भी एक महान् माँ के अनुरूप ही उसने व्यवहार किया। आँसुओं के बहते हुए भी आशीर्वाद से भरा हुआ उसका हाथ अपने बेटे के मस्तक पर जा टिका। पुत्र ने उसे आज्ञा समझकर माँ के पैर छुए और शीघ्र ही अपने कर्तव्य पथ पर अग्रसर हो गया।

वासुदेव चाफेकर ने अपने क्लब के सदस्यों के सामने सारी स्थिति रख दी कि किस प्रकार द्रविड़ बंधुओं ने बीस हजार रुपयों के पुरस्कार के लालच में आकर उसके भाई को पकड़वाया है। सभी ने निर्णय लिया कि द्रविड़ बंधुओं को गोलियों का पुरस्कार दिया जाए। उसकी सहायता के लिए साठे और महादेव रानडे—दो मित्र तैयार हुए।

८ फरवरी, १८९९ को वासुदेव चाफेकर एवं महादेव रानडे ने पंजाबी लिबास पहना और रात्रि के समय वे द्रविड़ बंधुओं के घर जा पहुँचे। उस समय द्रविड़ बंधु अपने मित्रों के साथ ताश खेल रहे थे। नीचे से ही वासुदेव चाफेकर ने पंजाबी लहजे में उर्दू शब्दों का प्रयोग करते हुए उनसे कहा कि ब्रुइन साहब ने उन्हें बहुत शीघ्र ही थाने पर बुलाया है। द्रविड़ बंधुओं ने कहा—

"तुम लोग चलो, हम आते हैं।"

खेल समाप्त करके द्रविड़ बंधु थाने की तरफ चल दिए। गली के मोड़ पर छिपे हुए वासुदेव चाफेकर और महादेव रानडे उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। जैसे ही द्रविड़ बंधु आए, उन दोनों ने अपनी पिस्तौलों से उनपर गोलियाँ दाग दीं। गणेश की मृत्यु घटनास्थल पर ही हो गई और रामचंद्र की मृत्यु अस्पताल में पहुँचकर हुई। उन्हें गद्दारी का पुरस्कार मिल गया।

वासुदेव चाफेकर को तो अपने भाइयों का बदला लेना था। उसने बदला ले लिया। वह भी पुलिस के हाथों में था। वासुदेव चाफेकर और महादेव रानडे पर हत्या का अभियोग चलाया गया। बालकृष्ण चाफेकर पर चलाया जानेवाला अभियोग भी स्थगित कर देना पड़ा था। वह भी साथ चला। अदालत ने वासुदेव चाफेकर की

फाँसी के लिए ८ मई, महादेव रानडे की फाँसी के लिए १० मई और बालकृष्ण चाफेकर की फाँसी के लिए १२ मई, १८९९ के दिन निश्चित किए।

८ मई, १८९९ को प्रातःकाल वासुदेव चाफेकर को फाँसी के तख्ते की ओर ले जाया गया। मार्ग में वह कोठरी पड़ती थी, जिसमें उसका बड़ा भाई बालकृष्ण फाँसी के दिन की प्रतीक्षा कर रहा था। वासुदेव ने जोर से आवाज लगाई—

"भैया, अलविदा! मैं जा रहा हूँ।"

उस कोठरी से बालकृष्ण चाफेकर ने भी आवाज लगाई—

"बहुत हिम्मत से काम लेना। मैं बहुत शीघ्र ही तुमसे आकर मिलूँगा।"

दोनों भाइयों का पुनर्मिलन हो गया। ८ मई को वासुदेव को तथा १२ मई को बालकृष्ण को फाँसी पर झुला दिया गया। महादेव रानडे १० मई को झूल गए।

भारत माता की आजादी के लिए वे वीर अपनी-अपनी बलि दे गए।

□

★ देवी सिंह ★ सरजूप्रसाद सिंह

जबलपुर (मध्य प्रदेश) के उत्तर में उस समय एक जागीर थी, जिसका नाम विजयराघवगढ़ था। पहले विजयराघवगढ़ और मैहर एक ही शासक के अधीन थे। जब जागीर का बँटवारा दो भाइयों में हुआ तो एक को मैहर और दूसरे को विजयराघवगढ़ मिला। विजयराघवगढ़ के जागीरदार की मृत्यु हो जाने पर कंपनी सरकार ने रियासत को प्रतिपालय अधिनियम (कोर्ट ऑफ वार्ड्स) के अंतर्गत लेकर वहाँ कंपनी सरकार का एक तहसीलदार नियुक्त कर दिया। यह व्यवस्था इसलिए की गई, क्योंकि रियासत के उत्तराधिकारी सरजूप्रसाद सिंह की अवस्था उस समय केवल पाँच वर्ष की थी।

सन् १८५७ के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के समय बालक सरजूप्रसाद सिंह सत्रह वर्ष का तरुण हो चुका था। वह क्रांतिकारी स्वभाव का किशोर था और अंग्रेजों से उसे घृणा थी। अपने अध्ययन काल में उसने तलवार व बंदूक चलाना अच्छी तरह सीख लिया था और उसे घुड़सवारी में महारत हासिल हो गई थी। उसमें नेतृत्व के गुण भी स्पष्ट रूप से दिखाई देते थे।

तरुण सरजूप्रसाद सिंह ने आसपास के जागीरदारों को मिलाकर तीन हजार प्रशिक्षित सैनिकों की एक सेना खड़ी कर ली। विद्रोह के पथ पर जो पहला काम उसने किया, वह यह था कि कंपनी सरकार द्वारा नियुक्त तहसीलदार को मारकर

उसने रियासत का प्रशासन पूर्णरूप से अपने हाथ में ले लिया। दूसरा काम जो उसने किया, वह यह था कि कंपनी सरकार की घुड़सवार सेना पर अधिकार करके सवारों को मारकर भगा दिया और उनके स्थान पर अपने घुड़सवार नियुक्त कर दिए।

सरजूप्रसाद सिंह की संगठित सेना को खतरा यह था कि मिर्जापुर मार्ग से आकर अंग्रेजी सेना उसपर आक्रमण कर सकती थी। उसने मिर्जापुर सड़क पर अपना अधिकार करके इस खतरे को भी दूर कर दिया।

अंग्रेजी सेना के कैप्टेन ऊले के नेतृत्व में ३० अक्तूबर, १८५७ को एक सेना ठाकुर सरजूप्रसाद सिंह से मुकाबला करने के लिए भेजी गई। उस सेना की सहायता के लिए ४ नवंबर को मेजर सुलीव्हान के नेतृत्व में भी एक सेना भेजी गई। सरजूप्रसाद सिंह की सेना ने उन दोनों अंग्रेजी सेनाओं को छिन्न-भिन्न करके उनके हथियार लूट लिये। इस संयुक्त सेना को तहस-नहस करने के पश्चात् सरजूप्रसाद सिंह की सेना ने ६ नवंबर को मुरवाड़ा के समीप एक अंग्रेजी सेना पर आक्रमण कर दिया। घायल होकर सेनापति टोटलहम भाग निकला।

अपनी इन निरंतर पराजयों से खिन्न होकर अंग्रेजों ने एक विशाल सेना १४ नवंबर को जबलपुर से भेजी। इस सेना के मेजर जानकिंग के मारे जाने के कारण सेना स्वयं ही भाग खड़ी हुई। इसके पश्चात् एक और विशाल सेना जबलपुर से ही कैप्टेन ऊले के नेतृत्व में विद्रोहियों का दमन करने के लिए भेजी गई। इस सेना का सामना सरजूप्रसाद सिंह के सहयोगी ठाकुर देवी सिंह ने किया। वे पराजित होकर गिरफ्तार हो गए। अंग्रेजों ने अपनी सहायता के लिए रीवा नरेश की सेना बुलवाई। बड़ी मुश्किल से रीवा और कंपनी सरकार की संयुक्त सेना विद्रोह का दमन कर सकी। सरजूप्रसाद सिंह को कई वर्ष बाद अंग्रेजी सेना गिरफ्तार कर सकी।

ठाकुर देवी सिंह को फाँसी का दंड दिया गया और सरजूप्रसाद सिंह को आजीवन कारावास। उस विद्रोही तरुण सरजूप्रसाद सिंह ने जीवन-भर जेल की कोठरियों में सड़ने के स्थान पर जीवन-मुक्ति का उपाय अपनाया। एक दिन उसने अपने पेट में कटार मारकर आत्मबलिदान का पथ अपना लिया।

□

★ देवेंद्र सेन गुप्ता

घटना ३ जून, १९०८ की है। बंगाल के क्रांतिकारियों का एक दल अपने किसी अभियान से लौटकर, नाव में बैठकर तेजी से आगे बढ़ा जा रहा था। उन

दिनों पुलिस जब क्रांतिकारियों का पीछा करती थी तो वह उन्हें डाकू घोषित करके ग्रामीण लोगों का भी सहयोग प्राप्त कर लेती थी। क्रांतिकारी दल का पीछा पुलिस भी कर रही थी और धलेश्वरी नदी के दोनों किनारों से गाँव के लोग भी उनके पीछे लगे हुए थे।

नाव पुरानी थी। उसकी तली में एक सुराख था, जिसमें कुछ पत्तियाँ आदि ठूँसकर उसे बंद कर दिया गया था। तेज दौड़ के क्रम में वह सुराख खुल गया और उसमें से होकर पानी नाव में भरने लगा। अब दूसरा खतरा क्रांतिकारियों के सम्मुख उपस्थित हो गया। यदि पानी उलीचा न जाए तो नाव के डूबने का खतरा था। पानी को उलीचने के लिए किसी-न-किसीको खड़े होकर यह काम करना पड़ता और उसके लिए खतरा यह था कि या तो वह गाँववालों द्वारा फेंके जानेवाले पत्थरों का निशाना बनता या पुलिस की गोली का।

नाव में बैठे हुए एक क्रांतिकारी युवक देवेंद्र सेन गुप्ता ने पानी उलीचने का काम अपने ऊपर ले लिया। वह खड़ा हो गया और एक तसले से नाव के पानी को बाहर उलीचने लगा। उधर उसके साथी नाव को ज्यादा-से-ज्यादा रफ्तार से दौड़ाने का प्रयत्न कर रहे थे। आखिर वही हुआ, जिसकी आशंका थी। सवार थाने के इलाके की पुलिस नाव का पीछा कर रही थी। पुलिस दारोगा निरंतर गोलियाँ छोड़ता जा रहा था। आखिर उसकी एक गोली देवेंद्र सेन गुप्ता के माथे में आकर लगी और वह नाव में गिर पड़ा। गिरते ही उसकी मृत्यु हो गई। उस बीच नाव में बैठे हुए लोगों में से कुछ ने बैठे-बैठे ही पानी उलीचना प्रारंभ किया और वे पीछा किए जाने के खतरे से काफी आगे निकल गए।

क्रांतिकारी दल ने सोचा कि यदि साथी के शव को नदी में यों ही डाल दिया जाएगा तो उसकी शिनाख्तागी हो जाएगी और पूरा दल पकड़ा जाएगा। इस खतरे से बचने के लिए उन्होंने नाव के भारी लंगर से साथी के शव को बाँधकर उसे नदी में डुबा दिया। विवश होकर अपने साथी क्रांतिकारी देवेंद्र सेन गुप्ता को उन्हें जल-समाधि देनी पड़ी। क्रांति के रास्ते एक नौजवान अपने जीवन की बलि दे गया, पर वह अपने कर्तव्य को पूरा करता हुआ अपने दल को बचा गया।

□

★ महाराज नंदकुमार

भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड वारेन हेस्टिंग्ज उस दिन बहुत चिंतित और तनावपूर्ण मुद्रा में अपने कमरे में तेजी के साथ घूम रहे थे। उनके तनाव का कारण यह था कि महाराज नंदकुमार ने कौंसिल में रिश्वत का आरोप लगाकर उनकी शिकायत की थी और ईस्ट इंडिया कंपनी की ओर से उनपर सुप्रीम कोर्ट में दावा दायर करने की बात पक्की हो गई थी। कंपनी के सॉलिसिटर ने जो राय कायम की थी, वह थी—

"हमारी समझ में कलकत्ता के सुप्रीम कोर्ट में कंपनी की ओर से हेस्टिंग्ज साहब पर नालिश कर देना चाहिए। ऐसा करने पर हेस्टिंग्ज साहब को अपना जवाब-दावा दाखिल करना ही पड़ेगा। नालिश हो जाने पर बंगाल के सब झगड़े एकदम तय हो जाएँगे और कंपनी को भी अधिक लाभ होगा।"

अपनी चिंता और तनाव से मुक्ति पाने के उद्देश्य से वारेन हेस्टिंग्ज ने अपने खुशामदी दीवान मुंशी नवकृष्ण को बुलवाकर उससे परामर्श लेने लगे।

"मुंशीजी, महाराज नंदकुमार तो पहले हमारे समर्थक थे, पर अब उन्हें क्या हो गया है कि वे एकदम हमारे विरुद्ध हो गए हैं और कंपनी सरकार से हमारी शिकायत भी कर दी है?"

दीवान नवकृष्ण ने कुछ सोचने का अभिनय करने के उद्देश्य से अपना सिर खुजाते हुए धीरे-धीरे कहना प्रारंभ किया—

"बात यह है, हुजूर, कि महाराज नंदकुमार को पूना के पेशवा ने भड़काया है; क्योंकि जब से शाहआलम ने बंगाल की दीवानी ईस्ट इंडिया कंपनी को दे दी है, तब से जो चौथ पेशवा को मिलती रही थी, वह बंद हो गई है। इसी कारण पेशवा के दूत और महाराज नंदकुमार के दूत जगमोहन दत्त ने चंदननगर में मिलकर कोई गोपनीय मंत्रणा की है और उसीके अनुसार महाराज नंदकुमार अपनी चाल चल रहे हैं।"

वारेन हेस्टिंग्ज ने अपने एक हाथ पर दूसरे हाथ का मुक्का पटकते हुए कहा—

"मुंशीजी, यह रिपोर्ट तो तुम मुझको पहले ही दे चुके हो; लेकिन मैं तो अब यह जानना चाहता हूँ कि सुप्रीम कोर्ट में मेरे विरुद्ध जो नालिश की जा रही है, उसमें हार और अपमान से कैसे बचा जाए?"

मुंशी नवकृष्ण ने चुटकी बजाते हुए कहा—

"हुजूर! इसका तो बड़ा आसान उपाय है और वह यह कि आप खुद सुप्रीम कोर्ट में महाराज नंदकुमार पर जालसाजी का मुकदमा दायर कर दें; और रही बात झूठे गवाह जुटाने की, तो यह खिदमत आपका यह सेवक नवकृष्ण कर देगा। मुझे भरोसा है कि सुप्रीम कोर्ट के जज इंपे साहब को तो आप अपने पक्ष में कर ही लेंगे।"

मुंशी नवकृष्ण का यह प्रस्ताव सुनकर वारेन हेस्टिंग्ज का तनाव बहुत कुछ कम हो गया और अपने चेहरे पर खुशी का भाव लाते हुए वे बोले—

"मुंशीजी, तुम बहुत काम के आदमी हो, तभी तो संकट के समय तुरुप के इक्के की भाँति तुम्हें दाँव पर लगाता हूँ। लेकिन यह तो बताओ कि महाराज नंदकुमार के विरुद्ध वह जालसाजी का मुकदमा क्या हो?"

मुंशी नवकृष्ण ने अपनी सारी योग्यता बघारते हुए कहा—

"हुजूर, मुकदमा तो बिलकुल तैयार है। हम सबको मालूम है कि महाराज नंदकुमार ने अमानत के तौर पर अपने मित्र महाजन बुलाकीदास के पास कुछ गहने रखे थे, जो मुर्शिदाबाद में रहते थे। मुर्शिदाबाद की लूट के समय महाजन बुलाकीदास की निजी संपत्ति के साथ वे गहने भी लुट गए, जो महाराज नंदकुमार ने अमानत के तौर पर रखे थे। हमें यह भी मालूम है कि धर्मात्मा स्वभाव के होने के कारण सेठ बुलाकीदास ने महाराज की अमानत के बदले में अड़तालीस हजार इक्कीस रुपए का तमस्सुक लिख दिया था। सेठ बुलाकीदास तो मर चुके हैं और हम यह सिद्ध कर देंगे कि वह तमस्सुक जाली है तथा यह जालसाजी महाराज नंदकुमार ने की है।"

मुंशी नवकृष्ण के उर्वर मस्तिष्क से निकली हुई यह बात सुनकर वारेन हेस्टिंग्ज खुशी के मारे झूम उठे। मुंशीजी की पीठ थपथपाते हुए वह बोले—

"मुंशीजी, तुम्हारी मनचाही तरक्की निश्चित है। तुम सेठ बुलाकीदास के घर से वह तमस्सुक प्राप्त करके गवाह तैयार करो और मैं सुप्रीम कोर्ट के जज इंपे साहब को साधता हूँ।"

हेस्टिंग्ज साहब को चीफ जस्टिस इंपे साहब को साधने में अधिक प्रयत्न

नहीं करने पड़े। इंपे साहब को आर्थिक लाभ भी होना था और अपने एक अंग्रेज साथी का भला करने का गौरव भी उन्हें प्राप्त करना था। मोहनप्रसाद नामक व्यक्ति ने सुप्रीम कोर्ट में शपथपूर्वक बयान देकर महाराज नंदकुमार पर यह अभियोग लगा दिया कि उन्होंने जाली दस्तावेज बनाकर स्वर्गीय बुलाकीदास की जायदाद से रुपए वसूल किए हैं। शासन पक्ष ने महाराज नंदकुमार को गिरफ्तार करके जेल में डालने में देरी नहीं की। ३ जून सन् १७७५ को महाराज नंदकुमार को अदालत के कठघरे में खड़ा किया गया। उनके पक्ष के उनके गुमाश्ता चैतन्यनाथ, उनके सेवक राय राधाचरण बहादुर और उनके बैरिस्टर फरार साहब पीछे खड़े थे। हेस्टिंग्ज साहब के पक्ष के सभी लोग दर्शकों की कुरसियों पर बैठे हुए थे। कोर्ट के प्रधान दुभाषिए विलियम चैंबर को जानबूझकर गैर हाजिर कर दिया गया और उनके स्थान पर हेस्टिंग्ज के कृपापात्र मि. इलियट को दुभाषिए के रूप में प्रस्तुत किया गया। बारह ज्यूरियों की भी नियुक्ति की गई। सभी हेस्टिंग्ज पक्ष के थे।

वादी पक्ष की ओर से पहली गवाही कमालुद्दीन खाँ की हुई। उसने बयान दिया—"महाराज नंदकुमार ने आज से चौदह वर्ष पूर्व मेरे नाम की मुहर माँगी थी, जो उन्होंने आज तक मुझे वापस नहीं की।"

जज महोदय ने जब दस्तावेज पर वह मुहर लगी हुई दिखाई तो गवाह ने स्वीकार किया कि वह मुहर उसीकी है।

इस गवाह के बयान पर महाराज नंदकुमार के बैरिस्टर फरार साहब ने आपत्ति करते हुए जिरह की—

"तुम्हारा नाम तो कमालुद्दीन खाँ है और मुहर अब्दुल कमालुद्दीन के नाम की लगी है, इससे सिद्ध होता है कि तुम स्वयं एक जाली गवाह हो।"

इसके उत्तर में कमालुद्दीन खाँ ने कहा—

"धर्मावतार! मैं झूठ नहीं बोलूँगा। मैं दिन में पाँच बार नमाज पढ़ता हूँ। मेरा नाम पहले अब्दुल कमालुद्दीन ही था; पर जब से मेरी हैसियत बढ़ गई है, मैंने अपने नाम के आगे का टुकड़ा छोड़कर पीछे लगा लिया है।"

जज महोदय ने गवाह के नाम का परिवर्तन स्वीकार कर लिया।

वादी पक्ष की ओर से दीवान नवकृष्ण ने भी बयान दिए। उन्हें चौबीस बार कठघरे में खड़ा किया गया और वादी मोहनप्रसाद को नौ बार। ये दोनों ही प्रतिवादी के बैरिस्टर फरार साहब की जिरह के सामने ठहर नहीं सके। वादी पक्ष को कमजोर होता हुआ देखकर स्वयं हेस्टिंग्ज साहब, कांत पोद्दार, गंगा गोविंदसिंह और राजा राजवल्लभ नए-नए साक्षी तैयार कर रहे थे; जो सभी फरार साहब की जिरह के आगे कमजोर पड़ रहे थे। आखिर वादी पक्ष की ओर से आजिम अली नाम के एक

ऐसे गवाह को पेश किया गया, जो पेशेवर गवाह था और जो कैसी भी जिरह के सामने दृढ़ता के साथ टिक सकता था। आजिम अली एक अंग्रेज का खानसामा था और आवश्यकता पड़ने पर उसे सरकारी गवाह बनाया जाता था; क्योंकि उन दिनों सरकारी वकील नहीं हुआ करता था। १२ जून को आजिम अली को गवाह के कठघरे में खड़ा किया गया। उसे देखते ही प्रतिवादी पक्ष में खलबली मच गई; क्योंकि सभी जानते थे कि आजिम अली एक सिद्धहस्त गवाह है।

महाराज नंदकुमार के गुमाश्ता बाबू चैतन्यनाथ दर्शकों में इस प्रकार खड़े हुए थे कि वे आजिम अली के बहुत निकट पड़ते थे। उनके हाथ में एक डायरी थी, जिसमें वे कभी-कभी कुछ लिख लिया करते थे। जब आजिम अली ने महाराज नंदकुमार के विरुद्ध बयान देना प्रारंभ किया तो उसे फोड़ने के लिए चैतन्य बाबू ने दो सौ, चार सौ और आठ सौ रुपए के आँकड़े लिखकर उसे दिखाए; पर इस रिश्वत के प्रलोभन में न आते हुए उसने हलफिया बयान जारी रखा। वह कह रहा था—

"मैं महाराज नंदकुमार का मकान जानता हूँ। एक बार सन् १७६९ में जब मैं चैतन्य बाबू से मिलने महाराज नंदकुमार के घर गया तो मैंने चैतन्य बाबू को बहुत व्यस्त पाया। मुझे टालने की दृष्टि से उन्होंने कहा कि इस समय महाराज एक जाली दस्तावेज बना रहे हैं और इस काम में मैं महाराज की सहायता कर रहा हूँ, अत: मैं तुमसे मिलने के लिए समय नहीं दे सकता। मैंने स्वयं देखा कि महाराज अपनी नाक पर चश्मा चढ़ाए हुए बुलाकीदास के विरुद्ध दस्तावेज तैयार कर रहे थे। उन्होंने एक मुहर को कमालुद्दीन की कहकर उसे चैतन्य बाबू को दिखाया भी था।"

आजिम अली का यह बयान सुनकर चीफ जस्टिस महोदय और ज्यूरियों में खुशी की लहर दौड़ गई। चीफ जस्टिस महोदय ने कहा—

"बयान जारी रखो।"

बयान जारी रखते हुए आजिम अली ने कहा—"हुजूर, इसके बाद तमस्सुक की शक्ल के कागज पर वह मुहर छाप दी गई।"

आजिम अली के बयान से घबराकर चैतन्य बाबू ने अपनी डायरी पर रिश्वत के रूप में एक हजार रुपए का आँकड़ा लिखकर उसे दिखाया। इस आँकड़े को देखकर आजिम अली के चेहरे पर प्रसन्नता दिखाई दी और उसने अपना हाथ नीचा करके चैतन्य बाबू को धैर्य रखने का इशारा किया।

चीफ जस्टिस महोदय ने आजिम अली से प्रश्न किया—

"मुहर छाप देने के बाद फिर क्या हुआ?"

आजिम अली ने बयान जारी रखते हुए कहा—

"हुजूर, इसके बाद मेरे घर के मुरगे ने बाँग दी और मेरी नींद खुल गई। मेरी

छोटी स्त्री ने भी आवाज देकर कहा कि मियाँ, क्या आज बिस्तर छोड़ने का इरादा नहीं है!''

यह बयान सुनकर दुभाषिए मि. इलियट के चेहरे का रंग बदल गया और उनके चेहरे पर परेशानी के भाव नजर आए। इंपे साहब बयान का मतलब नहीं समझ सके और उन्होंने आजिम अली को बयान जारी रखने का फिर हुक्म दिया। आजिम अली ने फिर कहना प्रारंभ किया—

''हुजूर, इसके बाद मैंने अपनी छोटी औरत से कहा कि मैंने ख्वाब में देखा है कि मैं महाराज नंदकुमार के मकान पर गया हूँ और वे बुलाकीदास के नाम से एक दस्तावेज बना रहे हैं।''

जब दुभाषिए मि. इलियट ने आजिम अली के बयान को इंपे साहब और ज्यूरी के सदस्यों को समझाया तो सभी के चेहरे फक हो गए। आजिम अली ने जज महोदय के आदेश की प्रतीक्षा न करते हुए स्वयं ही अपना बयान जारी रखते हुए कहा—''धर्मावतार, मेरी बात सुनकर मेरी छोटी औरत ने कहा कि तुम हमेशा राजा-महाराजाओं के पास जाते-आते रहते हो, इसी सबब तुमको उनके ही ख्वाब दिखते हैं।''

आजिम अली का बयान सुनकर ज्यूरी के सभी सदस्यों ने दुभाषिए से कहा कि गवाह से यह पूछो कि इसने हमारे सामने अभी जो कुछ कहा है, क्या वे सब ख्वाब की ही बातें हैं?

दुभाषिए मि. इलियट ने जब आजिम अली से इस विषय में प्रश्न किया तो उसका उत्तर था—

''हुजूर, ख्वाब में मैंने जो कुछ देखा, वही सच-सच बयान किया है। तीन-चार दिन की बात है, इस ख्वाब की बात मैंने मोहनप्रसाद बाबू से कही थी। उन्होंने चट कहा कि तुम्हें गवाही भी देनी पड़ेगी। मैंने उनसे कहा कि जो कुछ मैंने देखा है, वह कह देने में क्या हर्ज है!''

महाराज नंदकुमार के बैरिस्टर फरार साहब ने आजिम अली के बयान पर मुकदमा खारिज करने और महाराज को निर्दोष करार देने की पुरजोर अपील की; लेकिन उनकी एक नहीं सुनी गई। चीफ जस्टिस मि. इंपे का तर्क था—

''इस गरम मुल्क में पूरी नींद शायद ही किसीको आती हो। प्रायः लोग अर्द्ध-जाग्रत अवस्था में सोते हैं। ऐसी दशा में यदि कोई मनुष्य आँख-कान आदि इंद्रियों द्वारा कोई विषय ग्रहण करे तो उसके कथन को साक्षी रूप से ग्रहण किए जाने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।''

चीफ जस्टिस महोदय के इस कथन ने ज्यूरी के सदस्यों को प्रभावित

किया। वे दूसरे कमरे में गए। आधा घंटा पश्चात् लौटकर उन्होंने कहा—

''महाराज नंदकुमार अपराधी हैं।''

यह सुनते ही महामति इंपे साहब ने महाराज नंदकुमार को फाँसी का दंड सुना दिया। इसके पश्चात् महाराज को फिर जेल भेज दिया गया। उन्होंने जनरल क्लीवरिंग के पास इस आशय का पत्र भेजा कि इंग्लैंड के सम्राट् के पास भेजी गई उनकी याचिका के उत्तर आने तक उनकी फाँसी स्थगित रखी जाए। उनकी इस प्रार्थना को नहीं माना गया।

५ अगस्त सन् १७७५ को जनता-जनार्दन की उपस्थिति में महाराज नंदकुमार को फाँसी दे दी गई। फाँसी के समय महाराज पूर्ण आत्मविश्वास की मुद्रा में थे और वे बिलकुल भी उद्विग्न नहीं हुए। ज्यों ही उनके गले में फाँसी का फंदा डालकर तख्ता खींचा गया, त्यों ही लोग चीखें मार-मारकर भागने लगे। वे भागते जाते थे और कहते जाते थे—

''ब्रह्म-हत्या हुईल! कलिकाता अपवित्र हुईल! देश पापे परिपूर्ण हुईल! फिरिंगेर धर्माधर्म ज्ञान नाई।''

महाराज नंदकुमार को फाँसी का दंड दिए जाने पर भारत और इंग्लैंड में जोरदार प्रतिक्रियाएँ हुईं। बैरिस्टर पी. मित्र ने लिखा—

'जिन साक्षियों के आधार पर महाराज को प्राणदंड दिया गया, उनके सहारे आज के विचारक, किसी मनुष्य की बात तो दूर रही, एक मक्खी को भी फाँसी की आज्ञा देना न्यायानुमोदित न समझेंगे।'

प्रसिद्ध इतिहास लेखक मार्शमैन ने लिखा—

'महाराज को फाँसी की आज्ञा, इंग्लैंड के उस समय के जघन्य कानून के अनुसार होने पर भी, हर तरह न्याय के विरुद्ध थी। जिस कानून के अनुसार फाँसी दी गई थी, वह इस घटना के कितने ही वर्षों बाद प्रचलित किया गया था।'

लॉर्ड मैकाले की प्रतिक्रिया थी—

'कोई भी विचारवान् मनुष्य इस बात में संदेह नहीं कर सकता कि इंपे साहब ने यह नीच कृत्य गवर्नर जनरल को खुश करने के लिए ही किया था। इसके बदले में हेस्टिंग्ज ने इंपे साहब को बर्द्धमान (बर्दवान) में एक पुल का ठेका दिलाकर लाखों की आय कराई थी।'

□

★ नरपतिसिंह

रुइया नाम के एक छोटे से किले के रक्षक—एक छोटे से जमींदार नरपतिसिंह ने जब सुना कि वालपोल जैसे इतिहासप्रसिद्ध सेनापति के नेतृत्व में विशाल और सुसज्जित अंग्रेज सेना उसके किले को तहस-नहस करने पहुँच रही है, तो वह भी राजपूती शान से प्रतिज्ञा कर बैठा—

"अपनी मुट्ठी-भर सेना के बल पर यदि एक बार अंग्रेजों की विशाल सेना और उसके सेनापति वालपोल के दाँत खट्टे करके खदेड़ न दिया तो मैं क्षत्रिय ही क्या!"

प्रतिज्ञा सचमुच ही बहुत कड़ी और असंभाव्य थी। उधर जब वालपोल ने नरपतिसिंह की प्रतिज्ञा सुनी तो वह भी कह बैठा—

"उस छिछोरे जमींदार की इतनी हिम्मत, जो मुझे नीचा दिखाने के लिए प्रतिज्ञा करे! मैं उसे पीसकर ही दम लूँगा।"

तीख-नोक दोनों ओर से बढ़ गई। नरपतिसिंह ने अपनी बात वालपोल तक पहुँचाने के लिए एक युक्ति से काम लिया। कुछ गोरे सैनिक उसके किले में कैद थे। उनमें से उसने एक गोरे कैदी को कैद से मुक्त कर दिया और उसे समझा दिया कि वह जनरल वालपोल से कह दे कि नरपतिसिंह ने क्या प्रतिज्ञा की है। उस गोरे सैनिक ने जनरल वालपोल को सबकुछ बता दिया। क्रांतिकारी सेना के संबंध में जानकारी देते हुए उसने बताया कि नरपतिसिंह के पास कुल मिलाकर ढाई सौ सैनिकों से अधिक नहीं हैं। जनरल वालपोल के नेतृत्व में तो कई हजार सैनिक थे और उसके पास विशाल तोपखाना भी था। उसने सोचा कि उस छोटे से जमींदार और उसके ढाई सौ सैनिकों को पीसकर रख दूँगा।

क्रोध और आवेश में आकर जनरल वालपोल ने अपनी सेना से कहा—"नरपतिसिंह के पास दो हजार सैनिक हैं। क्या तुम उनसे निबटने की क्षमता रखते हो?"

सेना की गर्वोक्ति थी—"दो हजार तो क्या, चार हजार हों तो भी हम उनको पीसकर रख देंगे।" वालपोल ने सोचा—'जब ये लोग चार हजार सैनिकों को पीसकर रख देने का दम भरते हैं तो केवल ढाई सौ सैनिकों को तो ये पलक झपकते ही समाप्त कर देंगे।' उसने यहाँ तक सोचा कि जब तक मेरी सेना रुइया किले तक पहुँचेगी, तब तक तो नरपतिसिंह पीठ दिखाकर भाग चुकेगा।

वालपोल की सेना रुइया किले तक पहुँच गई। उसने किले को चारों ओर

से घेर लिया। किले की दीवार के ठीक नीचे तक अंग्रेजी सेना पहुँच गई। किले की खाई के पास अंग्रेजी सेना का जमाव अधिक था। गोलियों का आदान-प्रदान प्रारंभ हो गया। नरपतिसिंह के सैनिकों ने शत्रु सेना के जमाव के स्थान पर ही भयंकर गोलीवर्षा की। देखते-ही-देखते छियालीस गोरे सैनिक मारे गए। गोलियों की इस तीखी मार से घबराकर अंग्रेजी तोपों ने गोले दागने का काम प्रारंभ कर दिया। वे गोले किले की दीवारों से टकराकर अंग्रेज सैनिकों पर ही गिरने लगे, जो दीवार के नीचे तक पहुँच गए थे। अब जनरल होपग्रंट भी जनरल वालपोल की सहायता के लिए अपनी सेना सहित पहुँच गया। नरपतिसिंह और अधिक भयानक होकर युद्ध करने लगा। उसके क्रोध की अग्नि में जनरल होपग्रंट भस्म हो गया। अंग्रेजी सेना ने एक बहादुर जनरल खो दिया। अंग्रेज सैनिक होलों की तरह भूने जा रहे थे। उन्हें पटापट-पटापट गिरते देखकर अंग्रेजी सेना के सामने पीछे हटने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं था। पराजित होकर अंग्रेजी सेना पीठ दिखा गई।

नरपतिसिंह ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दिखाई। अंग्रेजी सेना के पलायन के पश्चात् अपने वीर सैनिकों को साथ लेकर वह स्वयं किला छोड़कर चला गया। १८५७ की रक्तिम क्रांति में उसने अपनी वीरता और आन-बान का एक अध्याय जोड़ दिया।

□

★ नरेंद्रनाथ भट्टाचार्य (मानवेंद्रनाथ राय)

वह एक महान् क्रांतिकारी था, जो सी. मार्टिन के नाम से आधी दुनिया का चक्कर लगाता रहा; पर अंग्रेज लोग उसे गिरफ्तार नहीं कर सके और जब उसे गिरफ्तार किया भी गया तो उसे छोड़ देना पड़ा। यह सब क्यों और कैसे हुआ, इसे जानने के लिए हमें उसके विषय में जानना पड़ेगा।

उस क्रांतिकारी का नाम नरेंद्रनाथ था। जन्म सन् १८९२ चौबीस परगने में दीनबंधु भट्टाचार्य के घर हुआ था। बचपन में नरेंद्र की विशेषता यह थी कि जो बात उसके मन में समा जाए, उसके पीछे पूरी तरह से पड़ जाता था। मूर्तिपूजा से चिढ़ हो गई तो मूर्तियाँ तोड़ने का कार्यक्रम अपना लिया। खूब मूर्तियाँ तोड़ीं, यहाँ तक कि स्वयं का सिर टूटने की स्थिति आ गई।

उन्हीं दिनों नरेंद्रनाथ का संपर्क बंगाल के उन क्रांतिकारियों से हो गया, जो बंग-भंग की नीति के विरोध में क्रांतिकारी कार्यक्रम अपना रहे थे। एक डाकखाना

लूटने के आरोप में नरेंद्रनाथ को पकड़ा गया; पर समुचित प्रमाण न होने के कारण छोड़ दिया गया। दूसरी बार भी यही हुआ। तीसरी बार पुलिस ने उन्हें बीस महीने तक नजरबंद रखा। जेल में नरेंद्रनाथ ने कई विषयों पर गंभीर अध्ययन कर डाला। जेल से छूटने के बाद रामकृष्ण मिशन में कार्य करने लगे और वहाँ भी मन नहीं लगा तो फिर क्रांति के क्षेत्र में कूद पड़े।

नरेंद्रनाथ भट्टाचार्य

जिस कमरे में नरेंद्रनाथ भट्टाचार्य रहते थे, एक दिन अचानक उस कमरे में प्रसिद्ध अंग्रेज जासूस चार्ल्स टेगार्ट पहुँच गया। उस समय नरेंद्र एक अखबार पढ़ रहे थे। टेबल पर भरा हुआ रिवॉल्वर पड़ा था तथा कुछ आपत्तिजनक साहित्य भी उसपर बिखरा हुआ था। चार्ल्स टेगार्ट को सीढ़ियों पर चढ़ते हुए देखते ही नरेंद्रनाथ ने टेबल पर खुला अखबार शीघ्र ही इस भाव से डाल दिया जैसे वे टेगार्ट के स्वागत में देर नहीं करना चाहते थे। तपाक से टेगार्ट से हाथ मिलाया और उसकी जासूसी कार्य की तारीफ के पुल बाँध दिए, जिससे वह पानी-पानी हो गया और खड़ा-खड़ा बात करके चला गया। उस दिन नरेंद्रनाथ प्रमाण सहित पकड़े जाते। सूझबूझ काम दे गई।

जब प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ा तो क्रांतिकारियों ने सोचा कि भारत की आजादी के लिए यह एक स्वर्णिम अवसर है। वे जानते थे कि दुश्मन का दुश्मन दोस्त होता है, इस सिद्धांत से लाभ उठाने के लिए विभिन्न क्रांतिकारियों को विभिन्न देशों में भेजा गया। नरेंद्रनाथ भट्टाचार्य बटाविया भेजे गए। वहाँ से उन्होंने अपना नाम सी. मार्टिन रख लिया। अब वे एक पादरी के रूप में रहने लगे। ब्रिटिश जासूसों को यह पता लग गया कि वे बटाविया में हैं; पर वे पादरी साहब पर शक नहीं कर रहे थे।

नरेंद्रनाथ ने जर्मन लोगों से मिलकर उन्हें इस बात के लिए राजी कर लिया कि वे कुछ हथियार जर्मनी से भारत पहुँचाएँ। जर्मन लोग तो यह चाहते ही थे कि भारत में विद्रोह हो और अंग्रेज लोग परेशानी में पड़ें। 'मैवेरिक' नाम का एक जहाज हथियार भरकर भारत की ओर चला। इस जहाज में तीस हजार राइफलें, कई लाख कारतूस तथा अन्य विस्फोटक पदार्थ थे। बंगाल की खाड़ी में किसी स्थान पर प्रसिद्ध क्रांतिकारी बाघा जतीन इस जहाज का माल उतारने वाले थे। अंग्रेज जासूसों को इसका सुराग मिल गया। जहाज का माल जब्त कर लिया और बाघा जतीन के

दल तथा पुलिस के बीच जमकर आमने-सामने की लड़ाई हुई, जिसमें लगभग सभी क्रांतिकारी लड़ते-लड़ते शहीद हो गए।

षड्यंत्र का भेद खुल जाने पर नरेंद्रनाथ का बटाविया में रहना सुरक्षित नहीं रहा। वे जावा, सुमात्रा, हिंदचीन, हांगकांग और जापान आदि देशों में घूमते रहे। अंतरराष्ट्रीय ब्रिटिश गुप्तचर उनके पीछे पड़े हुए थे। इस भागने के क्रम में वे केवल अपनी जान ही नहीं बचा रहे थे, बल्कि अंग्रेजी साम्राज्य की जान के लिए भी मुसीबत पैदा कर रहे थे। जहाँ भी अवसर मिलता, वे अंग्रेजों के खिलाफ किसी-न-किसी षड्यंत्र की रचना करते जा रहे थे। जापान में जब उनका पीछा किया गया तो वे कोरिया होते हुए चीन पहुँच गए।

चीन में सी. मार्टिन गिरफ्तार कर लिये गए; पर यह पता नहीं चल सका कि वे भारत के क्रांतिकारी नरेंद्रनाथ भट्टाचार्य हैं, अतः कोई ठोस मामला न बनने के कारण वे छोड़ दिए गए। इधर युद्ध में जर्मनी की हार होने लगी। अब सी. मार्टिन अमेरिका पहुँच गए।

अमेरिका में नरेंद्रनाथ भारत के प्रसिद्ध लेखक यदुगोपाल मुखर्जी तथा गदर पार्टी के लोगों से मिले। श्री मुखर्जी के परामर्श पर नरेंद्रनाथ उर्फ सी. मार्टिन ने अपना नया नाम मानवेंद्रनाथ राय रख लिया। अमेरिका से मानवेंद्रनाथ मैक्सिको पहुँचे और वहाँ मजदूर आंदोलन में कार्य करने लगे। सन् १९१८ में मजदूर आंदोलन में काम करने के कारण मानवेंद्रनाथ राय बहुत प्रसिद्ध हो गए। उनकी ख्याति रूस के महान् नेता लेनिन तक पहुँची और अंततोगत्वा वे रूस बुला लिये गए। अब उनकी गणना विश्व के महान् साम्यवादी नेताओं में होने लगी और जब साम्यवाद के 'थर्ड इंटरनेशनल' का गठन हुआ तो मानवेंद्रनाथ राय उसमें ले लिये गए। यह उनके लिए और भारत के लिए एक महान् उपलब्धि थी। पूर्वी देशों और भारत में साम्यवाद की स्थापना में मानवेंद्रनाथ राय का प्रमुख हाथ रहा।

धीरे-धीरे मानवेंद्रनाथ राय का लेनिन से मतभेद हो गया। वे जर्मनी गए। जर्मनी के साम्यवादियों से भी उनकी पटी नहीं। एक दिन लोगों ने बड़े आश्चर्य के साथ सुना कि बंबई में जिन डॉक्टर महमूद की गिरफ्तारी हुई है, वे मानवेंद्रनाथ राय अर्थात् नरेंद्रनाथ भट्टाचार्य ही हैं। उन्हें बरेली की सेंट्रल जेल में रखा गया, जहाँ प्रसिद्ध क्रांतिकारी शचींद्रनाथ सान्याल पहले से ही बंद थे। एक ही जेल में रहकर भी दोनों की एक-दूसरे से भेंट नहीं हो सकी। वे तिकड़म लगाकर एक-दूसरे से पत्र व्यवहार अवश्य करते रहे। सान्याल अध्यात्मवादी विचारधारा के व्यक्ति थे और भट्टाचार्य समाजवादी विचारधारा के। कुछ हद तक दोनों ने एक-दूसरे को प्रभावित किया।

कुछ समय पश्चात् नरेंद्रनाथ जेल से छोड़ दिए गए। उनकी विचारधारा में काफी परिवर्तन आ गया। अब वे मानववाद का प्रचार कर रहे थे, जो मार्क्सवाद विरोधी और रूस विरोधी था। इस प्रकार अंतिम दिनों में उनके विचारों ने कुछ ऐसा मोड़ लिया, जिससे उनके साथी भी उनसे कटने लगे।

२४ जनवरी, १९५४ को नरेंद्रनाथ भट्टाचार्य की मृत्यु हो गई।

विश्व के समाजवादियों में तो नरेंद्रनाथ भट्टाचार्य का स्थान प्रमुख है ही, भारत के क्रांतिकारियों में भी उनका स्थान अत्यंत ऊँचा है। वे विलक्षण प्रतिभासंपन्न व्यक्ति थे। संसार की सत्रह भाषाओं पर उनका अच्छा अधिकार था। अपने जीवन का अधिकांश भाग उन्होंने भारत की आजादी के प्रयत्नों और चिंतन में ही व्यतीत किया।

□

★ नरेंद्रनारायण चक्रवर्ती

बंगाल के घोर जंगली रास्ते में दो व्यक्ति अपने कंधों पर एक शव को लादे लिये जा रहे थे। उस शव को ले जाते हुए उन्हें बहुत कठिनाई का अनुभव हो रहा था; क्योंकि उनमें से एक व्यक्ति तो दुबला-पतला तथा स्वयं काफी घायल था और दूसरा केवल सोलह वर्ष का बालक था। इस बालक को हम 'वीर नारायण' के नाम से पुकार सकते हैं और वीर उस व्यक्ति को 'प्रिय दा' के नाम से पुकारता था।

उस शव को ले जाते हुए उन्हें बहुत ही कठिनाई हो रही थी, फिर भी वे उसे ले जा रहे थे; क्योंकि कोई विवशता थी। एक स्थान पर जाकर उन्होंने उस शव को भूमि पर रख दिया और थोड़ा सुस्ताने लगे। बातचीत का क्रम भी प्रारंभ हो गया—

"क्यों वीर! तुम्हें डर तो नहीं लग रहा?"

"डर तो नहीं लग रहा, प्रिय दा! मुझे नरेन दा के इस प्रकार के आकस्मिक और अप्रत्याशित निधन से अपार दुःख अवश्य हो रहा है।"

"दुःख होना तो स्वाभाविक ही है, वीर, पर जिस प्रकार भाई नरेंद्रनारायण चक्रवर्ती ने अपने प्राण दिए हैं, उसपर हमें गर्व अवश्य है और जो कोई सुनेगा, उसे भी गर्व का अनुभव होगा।"

"हाँ, प्रिय दा, गर्व तो हर एक को होगा; पर हम लोग नरेन दा की मृत्यु को विज्ञापित भी तो नहीं कर सकते, क्योंकि हमारी क्रांतिकारी गतिविधियों का भंडाफोड़ होने की आशंका जो है।"

''तू पक्का क्रांतिकारी है रे, वीर! इतनी कम उम्र में भी तू क्रांति संबंधी इतनी सारी बातें जानता है। हाँ, ठीक है, पर तू यह बता, वीर, कि जिस शेर ने नरेन को मारा है, क्या वह पहले तुझपर झपटने वाला था?''

''हाँ, दा! वह सचमुच मुझपर ही झपटने वाला था और उसमें अपराध मेरा था, क्योंकि जब वह शेर झाड़ी में से निकलकर हमें घूरता हुआ जा रहा था तो हमें स्वाभाविक रूप से चलते जाना चाहिए था; पर मुझसे यह नहीं हुआ और मैं खड़े होकर उसे घूर-घूरकर देखने लगा।''

''हाँ, भाई, जंगल का राजा भला यह कैसे सहन कर सकता था कि कोई उसके घर में ही उसे आँख दिखाए!''

''तभी तो उसने मुझपर छलाँग लगा दी। एक क्षण में ही मैं उसके मुँह में होता; पर इसी बीच विद्युत् गति से नरेन दा मेरे सामने कूद पड़े और शेर ने मेरे स्थान पर उन्हें दबोच लिया और उन्हें फाड़ने लगा।''

''तुम्हें बचाने के लिए ही नरेन शेर के सामने पहुँच गए और उसके द्वारा दबोचे जाने पर भी वे उसके साथ युद्ध करते रहे।''

''और आपने भी तो उन्हें बचाने का प्रयत्न किया, पर शेर ने आपको भी तो घायल कर दिया।''

''हाँ, भाई! उसने मुझे तो घायल ही किया, पर उसका पूरा आक्रोश तो नरेन के प्रति था और वह उनकी जान ले बैठा।''

''उन्होंने अपने प्राण देकर मेरी जान बचाई है, प्रिय दा! मैं उनका उपकार कभी नहीं भूल सकता। मुझे खेद तो इस बात का है कि हम लोग उनके शव को भी तो यथेष्ट सम्मान नहीं दे सकते।''

''यथेष्ट सम्मान से तुम्हारा क्या तात्पर्य है, वीर?''

''यही कि हम लोग भारी संख्या में एकत्र हो उन्हें कंधा देते और अग्नि को समर्पित करके उनका विधिवत् संस्कार करते।''

''हाँ, भाई, कैसी विवशता है कि उनका दाह-संस्कार करने के स्थान पर हमें उन्हें समाधिस्थ करना पड़ेगा और वह भी चोरी-चोरी; क्योंकि कहीं किसीने देख लिया तो दुनिया-भर की पूछताछ होगी और हमारी क्रांतिकारी गतिविधियों का भंडाफोड़ भी हो सकता है। अच्छा वीर, तो अब हम लोग यहीं पर अपने साथी को चिर-बिदा देने का उपक्रम करें।''

बातचीत का क्रम समाप्त हो गया और वे दोनों कर्तव्य-पूर्ति के उपक्रम में जुट गए। कुदाली व फावड़े के अभाव में उन्हें नुकीले पत्थरों से ही भूमि खोदने और हाथों से मिट्टी निकालने का काम संपन्न करना पड़ा। गड्ढा तैयार हो जाने पर

उन्होंने ससम्मान अपने साथी को उसमें समाधिस्थ किया और अपनी राह चल दिए।

यह प्रचारित हो गया कि नरेंद्रनारायण चक्रवर्ती का मन संसार से उचट गया था और वह संन्यासी बनकर तपस्या करने हिमालय में कहीं चला गया है।

□

★ नानासाहब पेशवा

नानासाहब पेशवा

क्रांति यज्ञ के महान् पुरोधा नानासाहब पेशवा की तलवारों के हाथ तो अंग्रेजों को युद्धस्थल में देखने को मिले, पर संगठन और सूझबूझ के ताने-बानों से उसके हाथों से बुना गया जाल वे न देख सके; उसमें उलझकर छटपटाने लगे। जिस नाना के बचपन ने घुड़सवारी, शिकार और अस्त्र-शस्त्र के संचालन का अभ्यास किया था, उसके यौवन को यह संकल्प करते देर नहीं लगी कि स्वधर्म और स्वदेश की रक्षा के लिए एक ऐसे विप्लव महायज्ञ की संरचना करनी पड़ेगी, जिसमें दासता के साथ-साथ फिरंगियों की भी आहुतियाँ दी जा सकें।

शांति के आवरण में क्रांति भारत के घर-घर में घूम गई। तीर्थाटन के बहाने नानासाहब ने उत्तर भारत के समस्त राजे-रजवाड़ों के कानों में संदेश फूँक दिया—

"तैयार रहना! हमें अंग्रेजों के साथ आजादी का निर्णायक युद्ध लड़ना है। संकेत की प्रतीक्षा करना और उसके मिलते ही ज्वालामुखी पर्वत की भाँति फटकर फिरंगी राज्य का सर्वस्वाहा कर देना।"

संसार-भर में अपनी जासूसी का दम भरनेवाले अंग्रेज जासूसों को बुरी तरह मुँह की खानी पड़ी, जब नानासाहब के गुप्तचर साधु-संन्यासियों, फकीरों, नट-नटनियों, मदारियों, ज्योतिषियों एवं बहुरूपियों के वेश में भारत के घर-घर में आजादी का अलख जगाते फिरे और उन्हें इसकी गंध तक न मिली।

नानासाहब पेशवा की प्रत्येक साँस क्रांति की भट्ठी को दहकाने के लिए धौंकनी का काम कर रही थी। विप्लव का जाल रोटी और कमल के ताने-बाने के

साथ बुना गया। जी हाँ, रोटी और कमल, कमल और रोटी।

अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीय सेनाओं को संगठित करने के लिए कमल को प्रतीक के रूप में चुना गया। एक सैनिक बलिदान एवं क्रांति के प्रतीक रक्त कमल को लेकर किसी सेना में प्रवेश करता और उस सेना के सभी सैनिक बारी-बारी से बाह्य रूप से उस कमल की सुंदरता की प्रशंसा करते; पर अपने मन में वे भारत की आजादी के लिए अपने शत्रुओं का और स्वयं अपना रक्त बहाने की प्रतिज्ञा करते। फिरंगियों के जासूसों को यह कैसे ज्ञात होता कि जिस कमल पुष्प के सौंदर्य की वे सराहना कर रहे हैं, उसको हाथ में लेकर वे यह भी प्रतिज्ञा कर रहे हैं कि पंखुड़ियों की भाँति ऊपर से पृथक्-पृथक् दिखाई देते हुए भी देश की आजादी के लिए भीतर से हम सब एक हैं। सेनाओं में घूमनेवाला यह रक्त कमल ऐसा कमल था, जिसके पराग में आग थी और जिसकी पंखुड़ियों में ज्वालाएँ थीं।

जनता को संगठित करने का काम रोटी ने किया। एक चौकीदार रोटी लेकर दूसरे गाँव में पहुँचता, उस गाँव के सभी व्यक्ति उस रोटी के टुकड़े प्रसाद के रूप में ग्रहण करते और इस बात की प्रतिज्ञा करते कि आजादी के लिए हम पारस्परिक मतभेदों तथा छुआछूत की भावनाओं से ऊपर हैं। अन्न को हाथ में लेकर की गई प्रतिज्ञा को वे कैसे तोड़ते! रोटी के प्रसाद ने गाँवों में रहनेवाली समस्त जनता को आजादी की लड़ाई के लिए तैयार कर दिया।

रोटी और कमल ने १८५७ के स्वातंत्र्य समर में अपना रंग दिखा दिया। यह थी नानासाहब पेशवा की सूझबूझ। उनकी तलवारों के हाथ अंग्रेजों को कानपुर के युद्ध में देखने को मिले। स्वयं को अजेय समझनेवाली फिरंगी सेना का गर्व तब चूर-चूर हुआ, जब नानासाहब पेशवा के नेतृत्व में भयंकर युद्ध और रक्तपात के पश्चात् क्रांतिकारी सेनाओं ने कानपुर पर अधिकार कर लिया।

नानासाहब पेशवा की वीरता एवं उदारता की गाथाएँ तो इतिहास के पृष्ठों में सुरक्षित हैं, पर यह महापुरुष कब आया और कब चला गया, यह अभी भी रहस्य बना हुआ है।

□

★ वीर नारायणसिंह

वर्तमान मध्य प्रदेश के रायपुर नगर के एक चौराहे पर स्थित जय-स्तंभ, जो सन् १८५७ के प्रथम स्वाधीनता संग्राम में आहुत हुए अगणित शहीदों की कीर्ति

वीर नारायणसिंह

कहानी के मौन वाचक के रूप में खड़ा है, वह अपने ही अंचल के एक आदिवासी महावीर नारायणसिंह के अद्‌भुत शौर्य का उद्‌घोषक भी है। इसी स्थल पर १० दिसंबर सन् १८५७ को स्वाधीनता संग्राम में अमर सेनानी वीर नारायणसिंह को सरेआम फाँसी दी गई थी।

वीर नारायणसिंह आदिवासी क्षेत्र सोनाखान का जमींदार था। अपने पिता श्री रामराय की वीरता, देशभक्ति, कर्तव्यपरायणता और जनमंगल की भावना वीर नारायणसिंह ने विरासत में पाई थी।

सन् १८३० में अपने हाथ में जमींदारी की बागडोर आने पर उसने अपनी निर्भीकता और जनहित की भावना का परिचय देना प्रारंभ कर दिया।

सन् १८५६ का वर्ष सोनाखान जमींदारी के लिए अभिशाप का वर्ष बनकर आया। वर्षा उस क्षेत्र के लोगों से रूठ गई। वे लोग तरसती हुई नजरों से बादलों की ओर निहारते, पर बादल बिना बरसे ही उधर से निकल जाते। लोग पीने के पानी के लिए भी तरसने लगे। धान का कटोरा कहा जानेवाला क्षेत्र भयंकर सूखे का शिकार होकर अकालग्रस्त हो गया।

सोनाखान क्षेत्र के अकाल-पीड़ित लोगों ने अपने क्षेत्र के गाँव करोंद के एक व्यापारी से प्रार्थना की कि वह अपने विशाल अन्न भंडार में से उन्हें खेतों में बोने और खाने के लिए अनाज उधार दे दे। लालची व्यापारी ने उन्हें कुछ भी देने से इनकार कर दिया। त्रस्त होकर पीड़ित लोग गुहार लेकर अपने लोकप्रिय जमींदार नारायणसिंह की सेवा में उपस्थित हुए। स्वयं नारायणसिंह ने उस व्यापारी को समझाया कि ये लोग प्रतिवर्ष तुमसे अनाज उधार लेकर लौटा दिया करते हैं, इस वर्ष विपत्ति पड़ जाने से उन सभी को आवश्यकता पड़ गई है, अतः उनकी सहायता करना हम सबका धर्म है। व्यापारी ने झूठा बहाना बनाकर कह दिया कि मेरे पास इतना अन्न नहीं है कि मैं इन लोगों की आवश्यकता की पूर्ति कर सकूँ।

जमींदार नारायणसिंह ने अपने कर्मचारियों को आदेश देकर व्यापारी के अन्न भंडार बलपूर्वक खुलवाकर जरूरतमंद लोगों को उनकी आवश्यकतानुसार अनाज बँटवा दिया और रायपुर के अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर को अपने इस कार्य की सूचना दे दी। उधर उस व्यापारी ने भी रायपुर के डिप्टी कमिश्नर के पास यह

शिकायत कर दी कि जमींदार नारायणसिंह ने उसके घर डाका डाला है और वह सबकुछ लूटकर ले गया है।

रायपुर का डिप्टी कमिश्नर इलियट तो इस मौके की तलाश में था ही कि नारायणसिंह को दंडित करने और उसकी जमींदारी को हड़पने का उसे अवसर मिले। उसने नारायणसिंह की गिरफ्तारी का आदेश निकाल दिया। तीर्थयात्रा से लौटते समय संबलपुर में २४ अक्तूबर, १९५६ को नारायणसिंह को गिरफ्तार करके रायपुर की जेल में डाल दिया गया। सोनाखान की जनता इस अत्याचार से क्षुब्ध हो उठी। उस क्षेत्र में बगावत की भावना प्रबल हो उठी।

उधर सन् १८५७ में केंद्रीभूत असंतोष ने प्रथम स्वाधीनता संग्राम का रूप धारण कर लिया और जगह-जगह अंग्रेजों के साथ लड़ाइयाँ होने लगीं। नारायणसिंह रायपुर की जेल में बंदी बनकर छटपटा रहे थे। स्वाधीनता संग्राम के दिनों में वे भी कुछ कर दिखाने के लिए बेचैन थे। अपने ऊपर तैनात तीसरी रेजीमेंट के पहरेदारों को अपनी ओर मिलाकर वीर नारायणसिंह जेल तोड़कर भाग निकले। शेर पिंजड़े के बाहर था। अंग्रेजी हुकूमत हाथ मलती रह गई।

अपने गाँव सोनाखान पहुँचकर वीर नारायणसिंह ने अंग्रेजों के साथ युद्ध की तैयारियाँ प्रारंभ कर दीं। सबसे पहला काम उन्होंने यह किया कि अपने गाँव की ओर आनेवाले रास्तों पर उन्होंने अवरोध खड़े कर दिए और वहाँ सशस्त्र पहरेदार नियुक्त कर दिए। उन्होंने आदिवासियों की एक विशाल सेना तैयार करके उसे अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित कर दिया। वे अंग्रेजों के साथ युद्ध करने के लिए पूर्णरूप से तैयार हो गए। उन्होंने आसपास के जमींदारों को भी साथ देने के लिए निमंत्रण-पत्र भेज दिए।

रायपुर के डिप्टी कमिश्नर मि. इलियट ने लेफ्टिनेंट स्मिथ को आदेश दिया कि वह सेना सहित जाकर नारायणसिंह पर आक्रमण करके उसे गिरफ्तार करे। आदेश पाकर एक विशाल सेना लेकर स्मिथ सोनाखान की ओर चल पड़ा। कुछ गद्दार जमींदार भी अपनी सेनाएँ लेकर स्मिथ के साथ हो लिये।

लेफ्टिनेंट स्मिथ अपनी फौज लेकर १० नवंबर, १८५७ को रायपुर से रवाना हुआ। नारायणसिंह के एक गुप्तचर ने मार्गदर्शक बनकर स्मिथ की सेना को भटका दिया और वह गलत जगह जा पहुँचा। अगले दिन जब स्मिथ चला तो उसे मालूम हुआ कि अपने गाँव के रास्ते में नारायणसिंह ने एक ऊँची दीवार खड़ी कर दी है और वह मुकाबला करने के लिए पूरी तरह से तैयार है। स्मिथ ने आगे बढ़ने के बजाय और अधिक शक्ति संचय करके अचानक आक्रमण करने का विचार किया। उसने करोंदी गाँव में अपना पड़ाव डाल दिया। उसने कटंगी, बड़गाँव तथा बिलाईगढ़

के जमींदारों को सेना सहित अपनी सहायता के लिए बुलाया। उसने बिलासपुर से भी सहायता सेना की प्रार्थना की। नारायणसिंह के गाँव सोनाखान को जानेवाले सारे रास्ते उसने रोक दिए, ताकि वहाँ रसद और अन्य सामग्री न पहुँच सके।

स्मिथ को बिलासपुर से तो सहायता नहीं मिल सकी, लेकिन उसे संकट में फँसा देखकर रायपुर के डिप्टी कमिश्नर ने उसके पास अतिरिक्त सेना भेज दी। कटंगी, बड़गाँव और बिलाईगढ़ के जमींदार भी अपनी-अपनी सेनाओं सहित स्मिथ की सहायता के लिए पहुँच गए।

लेफ्टिनेंट स्मिथ ने अपने सहायकों को नाकाबंदी करने के आदेश दिए और वह स्वयं एक सेना लेकर नीमतल्ला से देवरी की ओर बढ़ चला। नारायणसिंह के एक दूसरे गुप्तचर ने दूसरे दिन फिर उसे मार्ग से भटका दिया और वह गलत स्थान पर जा पहुँचा। बड़ी मुश्किल से वह ३० नवंबर को देवरी पहुँच सका। देवरी से सोनाखान दस मील दूर था। पारिवारिक वैमनस्य के कारण देवरी का जमींदार भी स्मिथ का साथ देने को तैयार हो गया; यद्यपि वह रिश्ते में नारायणसिंह का काका था।

देवरी के ज़मींदार के निर्देशन में स्मिथ की सेना आगे बढ़ी और वह सोनाखान से तीन मील की दूरी पर पहुँच गई। वह गद्दार जमींदार सेना को उस रास्ते से ले गया, जिधर अवरोध अधूरा रह गया था।

इधर स्मिथ की सेना एवं नारायणसिंह की सेनाओं में युद्ध होना प्रारंभ हो गया और स्वयं नारायणसिंह सोनाखान खाली करके अपने चुने हुए सैनिकों सहित पहाड़ पर जा पहुँचा, जहाँ उसने तगड़ी मोरचाबंदी कर ली। उसने अपने पुत्र तथा परिवार के अन्य लोगों को सोनाखान के बाहर सुरक्षित स्थान पर भेज दिया।

अगले दिन दोपहर को स्मिथ खाली पड़े हुए सोनाखान गाँव में पहुँच गया। उसने पूरे गाँव में आग लगवा दी। रात को पहाड़ पर से स्मिथ की सेना पर गोलियों की बौछार होने लगी। स्मिथ को जान बचाने के लिए पीछे हटना पड़ा।

पहले युद्ध में नारायणसिंह ने स्मिथ की सेना को धकेल दिया। अब स्मिथ ने और सेना एकत्र की तथा पूरे पहाड़ को चारों ओर से घेर लिया। पहाड़ पर रसद भी नहीं पहुँच सकती थी। नारायणसिंह का काका, देवरी का जमींदार स्वयं ही स्मिथ को सारी गुप्त सूचनाएँ दे रहा था। नारायणसिंह ने विचार किया कि वह अपने गाँव के निरपराध लोगों को मरने-कटने के लिए क्यों बाध्य करे! वह स्वयं अपने प्राणों से मूल्य चुकाकर अपने साथियों के प्राणों की रक्षा करना चाहता था।

५ दिसंबर, १८५७ को नारायणसिंह रायपुर पहुँचा और उसने डिप्टी कमिश्नर मि. इलियट के सामने समर्पण कर दिया।

उस देशभक्त के लिए अंग्रेजों के पास एक ही पुरस्कार था और वह था—फाँसी का फंदा।

वीर नारायणसिंह को १० दिसंबर, १८५७ को रायपुर के एक चौराहे पर सरेआम फाँसी के फंदे पर झुला दिया गया। रायपुर के उस चौराहे पर खड़ा हुआ जय-स्तंभ आज भी उस बलिदानी की वीरता और देशभक्ति का उद्घोष कर रहा है।

□

★ नाहरसिंह

सन् १८५७ की रक्तिम क्रांति के समय दिल्ली के बीस मील पूर्व में जाटों की एक रियासत थी। इस रियासत का नवयुवक राजा नाहरसिंह बहुत वीर, पराक्रमी और चतुर था। दिल्ली के मुगल दरबार में उसका बहुत सम्मान था और उसके लिए सम्राट् के सिंहासन के निकट ही सोने की कुरसी रखी जाती थी। मेरठ के क्रांतिकारियों ने जब दिल्ली पहुँचकर उसे अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त कर दिया और मुगल सम्राट् बहादुरशाह जफर को फिर सिंहासन पर बैठा दिया तो प्रश्न उपस्थित हुआ कि दिल्ली की सुरक्षा का दायित्व किसे दिया जाए? इस समय तक शाही सहायता के लिए मोहम्मद बख्त खाँ पंद्रह हजार रुहेलों की फौज लेकर दिल्ली पहुँच चुका था। उसने भी यही उचित समझा कि दिल्ली के पूर्वी मोरचे की कमान राजा नाहरसिंह के पास ही रहने दी जाए। बहादुरशाह जफर तो नाहरसिंह को बहुत मानता ही था।

अंग्रेजी दासता से मुक्त होने के पश्चात् दिल्ली ने एक सौ चौंतीस दिन स्वतंत्र जीवन व्यतीत किया। इस काल में राजा नाहरसिंह ने दिल्ली के पूर्व में अच्छी मोरचाबंदी कर ली। उसने जगह-जगह चौकियाँ बनवाकर रक्षक और गुप्तचर नियुक्त कर दिए। अंग्रेजों ने दिल्ली पर पूर्व की ओर से आक्रमण करने का कभी साहस नहीं दिखाया। १३ सितंबर, १८५७ को अंग्रेजी फौज ने कश्मीरी दरवाजे की ओर से दिल्ली पर आक्रमण किया। अंग्रेजों ने जब दिल्ली नगर में प्रवेश किया तो भगदड़ मच गई। बहादुरशाह जफर को भी भागकर हुमायूँ के मकबरे में शरण लेनी पड़ी। नाहरसिंह ने सम्राट् बहादुरशाह से बल्लभगढ़ चलने के लिए कहा; पर सम्राट् के अंग्रेजभक्त सलाहकार इलाहीबख्श ने एक न चलने दी और उसीके आग्रह से बहादुरशाह हुमायूँ के मकबरे में रुका रहा। इलाहीबख्श के मन में बेईमानी थी। परिणाम वही हुआ जो होना था। मेजर हडसन ने बहादुरशाह

को हुमांयूँ के मकबरे से गिरफ्तार कर लिया और उसके शहजादों को कत्ल कर दिया। नाहरसिंह ने बल्लभगढ़ पहुँचकर अंग्रेजी फौज से मोरचा लेने का निश्चय किया। उसने नए सिरे से मोरचाबंदी की और आगरा की ओर से दिल्ली की तरफ बढ़नेवाली गोरी पल्टनों की धज्जियाँ उड़ा दीं। बल्लभगढ़ के मोरचे पर बहुत बड़ी संख्या में अंग्रेजों का कत्ल हुआ और हजारों गोरों को बंदी बना लिया गया। इतने अधिक अंग्रेज सैनिक मारे गए कि नालियों में से खून बहकर नगर के तालाब में पहुँच गया और तालाब का पानी भी लाल हो गया।

जब अंग्रेजों ने देखा कि नाहरसिंह से पार पाना मुश्किल है तो उन्होंने धूर्तता से काम लिया। उन्होंने संधि का सूचक सफेद झंडा फहरा दिया। युद्ध बंद हो गया। अंग्रेजी फौज के दो प्रतिनिधि किले के अंदर जाकर राजा नाहरसिंह से मिले और उसे बताया कि दिल्ली से समाचार आया है कि सम्राट् बहादुरशाह से अंग्रेजों की संधि हो रही है और सम्राट् के शुभचिंतक एवं विश्वासपात्र के नाते परामर्श के लिए सम्राट् ने आपको याद किया है। उन्होंने बताया कि इसी कारण हमने संधि का सफेद झंडा फहराया है।

भोलाभाला जाट राजा धूर्त अंग्रेजों की चाल में आ गया। अपने पाँच सौ विश्वस्त सैनिकों के साथ वह दिल्ली की तरफ चल दिया। दिल्ली में राजा को समाप्त करने या उसे गिरफ्तार करने के लिए बहुत बड़ी संख्या में पहले ही अंग्रेजी फौज छिपा दी गई थी। जैसे ही राजा ने किले के अंदर प्रवेश किया, छिपी हुई अंग्रेजी फौज ने कूदकर राजा का संबंध उसकी सेना से विच्छेद कर दिया और राजा नाहरसिंह को गिरफ्तार कर लिया। शेर अंग्रेजों के पिंजरे में बंद हो गया।

अगले ही दिन अंग्रेजी फौज ने पूरी शक्ति के साथ बल्लभगढ़ पर आक्रमण कर दिया। तीन दिन के घमासान युद्ध के पश्चात् ही वे राजाविहीन राज्य को अपने आधिपत्य में ले सके।

जिस हडसन ने सम्राट् बहादुरशाह जफर को गिरफ्तार किया था और उसके शहजादों का कत्ल करके उनका चुल्लू भरकर खून पिया था, वही हडसन बंदी नाहरसिंह के सामने पहुँचा और अंग्रेजों की ओर से उसके सामने मित्रता का प्रस्ताव रखा। वह नाहरसिंह के महत्त्व को समझ सकता था। मित्रता का प्रस्ताव रखते हुए वह बोला—"नाहरसिंह, मैं तुम्हें फाँसी से बचाने के लिए ही कह रहा हूँ कि तुम थोड़ा झुक जाओ।"

नाहरसिंह ने हडसन का अपमान करने की दृष्टि से उसकी ओर पीठ कर ली और उत्तर दिया—

"नाहरसिंह वह राजा नहीं है, जो अपने देश के शत्रुओं के आगे झुक जाए।

अंग्रेज लोग मेरे देश के शत्रु हैं। मैं उनसे क्षमा नहीं माँग सकता। एक नाहरसिंह न रहा तो क्या, कल लाख नाहरसिंह पैदा हो जाएँगे।''

मेजर हडसन इस उत्तर को सुनकर बौखला गया। बदले की भावना से अंग्रेजों ने राजा नाहरसिंह को खुलेआम फाँसी पर लटकाने की योजना बनाई। जहाँ आजकल चाँदनी चौक फव्वारा है, उसी स्थान पर वधस्थल बनाया गया, जिससे बाजार में चलने-फिरनेवाले लोग भी राजा को फाँसी पर लटकता हुआ देख सकें। उसी स्थान के पास ही तो राजा नाहरसिंह का दिल्ली स्थित आवास था। अंग्रेजों ने जानबूझकर राजा नाहरसिंह को फाँसी देने के लिए वह दिन चुना, जिस दिन उसने अपने जीवन के पैंतीस वर्ष पूरे करके छत्तीसवें वर्ष में प्रवेश किया था। राजा ने फाँसी का फंदा गले में डालकर अपना जन्मदिन मनाया। उसके साथ उसके तीन और नौजवान साथियों को भी फंदों पर झुलाया गया। वे थे—खुशालसिंह, गुलाबसिंह और भूरेसिंह। दिल्ली की जनता ने गरदन झुकाए हुए अश्रुपूरित नयनों से उस लोकप्रिय एवं वीर राजा को फंदे पर लटकता हुआ देखा।

फाँसी पर झुलाने के पूर्व हडसन ने राजा से पूछा था—

''तुम्हारी आखिरी इच्छा क्या है?''

राजा का उत्तर था—

''मैं तुमसे और अंग्रेजी राज्य से कुछ माँगकर अपना स्वाभिमान नहीं खोना चाहता हूँ। मैं तो अपने सामने खड़े हुए अपने देशवासियों से कह रहा हूँ—क्रांति की इस चिनगारी को बुझने न देना।''

□

★ पांडुरंग महादेव वापट

पांडुरंग महादेव वापट

लंदन स्थित 'इंडिया हाउस' में बैठे हुए भारतीय क्रांतिकारी इस विषय पर विचार कर रहे थे कि भारत में लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह को गिरफ्तार करके जो बर्मा की मांडले जेल में डाल दिया गया है, उसका उत्तर ब्रिटिश सरकार को किस प्रकार दिया जाए। इस कृत्य का उत्तर देने के लिए किसीने प्रस्ताव रखा कि पंजाब के गवर्नर को गोली से उड़ाया जाए; किसीने भारत मंत्री लॉर्ड मॉर्ले को गोली से उड़ाने की बात कही। पांडुरंग महादेव वापट को ये प्रस्ताव बहुत हलके-फुलके लगे। उन्होंने अपना प्रस्ताव इस प्रकार रखा—

"जब गोली का निशाना बनाना ही है, तो किसी छोटे-मोटे व्यक्ति पर शक्ति का अपव्यय क्यों किया जाए। मेरा प्रस्ताव तो यह है कि इंग्लैंड के प्रधानमंत्री को ही गोली से उड़ाया जाए और यह काम करने की जिम्मेदारी मैं अपने ऊपर लेता हूँ।"

वापट का प्रस्ताव सुनकर सब लोग चौंक पड़े। प्रस्ताव स्वयं ही किसी बम विस्फोट से कम नहीं था। श्यामजी कृष्ण वर्मा ने शंका व्यक्त करते हुए पूछा—

"आखिर इंग्लैंड के प्रधानमंत्री तक तुम्हारी पहुँच होगी कैसे?"

वापट का उत्तर था—

"इसमें कठिनाई की बात भी क्या है! एक बार तो मैं उनसे साक्षात्कार कर ही चुका हूँ। किसीने मेरी तलाशी भी नहीं ली थी। अब तो उनके अमले से मेरा

परिचय भी हो गया है। दूसरी बार साक्षात्कार करने की अनुमति प्राप्त करने में मुझे कठिनाई नहीं होगी। और तब मैं अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति करके दिखा सकूँगा।''

वापट की योजना कठिन अवश्य थी, पर असंभव नहीं थी। पर उस समय इसे क्रियान्वित न करने का ही परामर्श उन्हें दिया गया। इस योजना के क्रियान्वयन के फलस्वरूप भारतवासियों को दमन की चक्की में बुरी तरह पीसा जाता और उससे मुक्ति की अन्य योजनाएँ ठप्प हो जातीं। विनायक दामोदर सावरकर ने एक वैकल्पिक प्रस्ताव रखा—

''हम लोग यदि बम बनाना सीख लें तो क्रांतिकारियों के लिए यह बहुत उपयोगी वस्तु होगी। हम निःशस्त्र लोगों का काम बम से बहुत अच्छा चल निकलेगा। पर इसमें कठिनाई यह है कि बम का नुस्खा कहाँ से प्राप्त किया जाए?''

इसके उत्तर में भी चट से वापट बोल उठे—

''इसमें भी क्या कठिनाई है! मैं फ्रांस जाकर 'बम मैनुअल' ले आऊँगा या रूस के क्रांतिकारियों से इसे प्राप्त कर लूँगा।''

वापट की क्रियाशीलता को आजमाने के लिए यह जिम्मेदारी उन्हें दे दी गई। वापट ने रूस के निहिलिस्ट क्रांतिकारियों से मित्रता करके 'बम मैनुअल' उनसे प्राप्त कर ली। फ्रांस में बम निर्माण का कार्य प्रारंभ हुआ और कुछ सफल बम निर्मित हो गए। इस बार वापट का प्रस्ताव था—

''इंग्लैंड के 'हाउस ऑफ कॉमंस' में अपने बम का पहला विस्फोट होना चाहिए और मैं यह काम करने के लिए तैयार हूँ।''

विनायक दामोदर सावरकर का तर्क था—''यह ठीक है कि इंग्लैंड की सभा में बम विस्फोट करने से अंग्रेजों के कान भी खुलेंगे और आँखें भी खुलेंगी; पर इसके साथ-ही-साथ इंग्लैंड में रहनेवाले सभी भारतीय क्रांतिकारी गिरफ्तार हो जाएँगे। गिरफ्तार हो जाने के कारण हम लोग बम निर्माण का प्रशिक्षण अधिक लोगों को देकर उन्हें भारत नहीं भेज सकेंगे। जब भारत में बहुत से लोग बम निर्माण की कला सीख लें, तब हमें कोई कदम उठाना होगा।''

सावरकर का प्रस्ताव व्यावहारिक तथा मानने योग्य था और उसे माना गया। भारत के कुछ योग्य व्यक्तियों को बम निर्माण का प्रशिक्षण प्राप्त करने फ्रांस पहुँचाया गया और उन्हें प्रशिक्षित करके भारत वापस भेज दिया गया। सेनापति पांडुरंग महादेव वापट को भी इस कार्य के लिए इंग्लैंड से भारत भेजा गया। भारत जाने के पूर्व उन्हें डबलिन की आम सभा में भाषण देने के लिए जाना पड़ा।

डबलिन की आम सभा में वापट ने इस बात की स्थापना की कि भारत

मुक्ति के लिए क्रांति की आवश्यकता है। एक अंग्रेज श्रोता पूछ बैठा—

"स्पष्ट करके बताइए कि आप किस प्रकार की क्रांति के हिमायती हैं?"

वापट ने अपनी जेब से रिवॉल्वर निकालकर उसे हाथ में उछालकर दिखाते हुए कहा—"मैं इस क्रांति का हिमायती हूँ।"

प्रश्नकर्ता को इससे अधिक स्पष्ट उत्तर और क्या मिलता!

पांडुरंग महादेव वापट ने भारत पहुँचकर अपना कार्य सँभाल लिया और वे निरंतर अपने उद्देश्य की पूर्ति में लगे रहे। उनका देहावसान स्वाधीन भारत में २७ नवंबर, १९६७ को हुआ।

□

★ पुलिनबिहारी दास

'ढाका अनुशीलन समिति' की ओर से नगर के बाहर जंगल में एक अभ्यास-युद्ध का आयोजन किया गया था। समिति के क्रांतिकारी सदस्य दो दलों में विभक्त हो गए थे। प्रत्येक दल में पाँच-पाँच हजार क्रांति सैनिक थे। प्रत्येक दल ने अपने-अपने मैदान में एक झंडा गाड़ रखा था। यह निश्चय हुआ था कि जो दल प्रतिपक्षी के झंडे को उखाड़कर अपने अधिकार में कर लेगा या उस पक्ष के सेनापति को गिरफ्तार कर लेगा, वह विजयी घोषित किया जाएगा। यह अभ्यास-युद्ध लाठियों और भालों से लड़ा जाने वाला था। लाठियों से एक-दूसरे पर प्रहार भी किया जा सकता था और वे फेंककर भी मारी जा सकती थीं। भाले फेंककर मारना वर्जित था। उनसे विपक्षी का स्पर्श करना होता था। लाठियों और भालों के सिरों पर गीला लाल रंग लगा दिया गया था। यदि किसीके शरीर पर या कपड़ों पर लाल रंग लग जाए तो उसे तुरंत बैठ जाना पड़ता था। वह फिर युद्ध नहीं कर सकता था। कुछ पर्यवेक्षक भी नियुक्त हुए थे। उनका काम यह था कि यदि कोई क्रांति सैनिक नियमों का उल्लंघन करे तो वह उसकी गरदन पकड़कर उसे बैठा सकता था। पर्यवेक्षकों पर कोई भी दल आक्रमण नहीं कर सकता था। घायल सैनिकों को एंबुलेंस गाड़ी द्वारा अस्पताल भिजवाने की व्यवस्था भी थी।

अभ्यास निश्चित समय पर आरंभ हो गया। दोनों दलों के सैनिक एक-दूसरे पर झपट पड़े। हर सैनिक अपनी लाठी से विपक्षी की लाठी का वार बचाता भी था और अवसर पाकर वह वार करता भी था। इसी प्रकार जो लोग भाले लिये हुए थे, वे विपक्षी के भाले के स्पर्श से अपने अंग को बचाकर, अपने भाले से उसका स्पर्श

करने का प्रयत्न कर रहे थे। जिनके शरीर या कपड़ों में लाल रंग लग जाता था, वे बैठ जाते थे। कुछ लोग ऐसे भी थे, जो या तो स्वयं नहीं बैठते थे या असावधानीवश और लड़ने के जोश में उन्हें पता ही नहीं चलता था कि वे लाल रंग लग जाने से घायल हुए हैं। ऐसे व्यक्तियों को पर्यवेक्षकगण गरदन पकड़-पकड़कर दबोच रहे थे। कुछ लोग सचमुच ही प्रहारों से घायल हो रहे थे। उन्हें शांति सैनिक उठा-उठाकर, एंबुलेंस गाड़ियों में डालकर अस्पताल पहुँचा रहे थे।

घंटे-भर के घमासान युद्ध के पश्चात् एक दल अपने विपक्षी का झंडा छीनने और उसके प्रधान सेनापति को गिरफ्तार करने में सफल हो गया। यह दल विजयी घोषित कर दिया गया। इस दल के प्रधान सेनापति पुलिनबिहारी दास थे।

पुलिनबिहारी दास प्रत्येक प्रकार के युद्ध में पारंगत थे। उन्हें लाठी, भाला, चाकू-छुरी और तलवार चलाना भलीभाँति आता था। उन्होंने लड़ाकों का एक अच्छा-खासा दल तैयार कर रखा था। एक बार उनके सात-आठ लड़ाकों पर, ढाका के नवाब के उकसाने पर, नगर के लगभग पाँच सौ असामाजिक तत्त्वों ने हमला कर दिया। पुलिनबिहारी एवं उनके साथी लाठियाँ तथा भाले लेकर टूट पड़े और देखते-ही-देखते उस असामाजिक गिरोह को छिन्न-भिन्न कर दिया। विपक्षी को लगभग पचास लाशें वहाँ छोड़कर आक्रमण की कीमत चुकानी पड़ी। पुलिनबिहारी का कोई भी लड़ाका घायल तक नहीं हुआ।

इस लड़ाई के फलस्वरूप पुलिनबिहारी गिरफ्तार कर लिये गए। उनपर मुकदमा चला। परिणामस्वरूप उन्हें तीन साल के कारावास और पंद्रह रुपए जुर्माने का दंड दिया गया। अपील करने पर कारावास का दंड वापस ले लिया गया, पर जुर्माना उन्हें भरना पड़ा। उन्हीं दिनों एक सरकारी गुप्तचर की हत्या कर दी गई। इस मामले में पुलिस ने पुलिनबिहारी को धर लेना चाहा; पर उनके विरुद्ध कोई साक्ष्य नहीं मिला। सन् १९०८ में पुलिनबिहारी पर यह आरोप भी लगाया गया कि वह बच्चों को गायब कर देता है; पर यह आरोप भी सिद्ध नहीं हो सका।

बार-बार हाथ से निकल जाने पर पुलिस का आक्रोश पुलिनबिहारी के प्रति बढ़ रहा था। सन् १९०८ के रेग्युलेशन क्रमांक ३ के अनुसार उन्हें बिना वारंट के गिरफ्तार कर लिया गया और पंजाब की मांटगुमरी जेल में चौदह महीने रखा गया। १९०९ में जेल से छूटने के बाद पुलिनबिहारी को धुन सवार हुई कि अंग्रेज सरकार से निबटने के लिए कानून की शिक्षा प्राप्त की जाए। वे कलकत्ता में कानून पढ़ने लगे। पाँच महीने पश्चात् वे फिर गिरफ्तार कर लिये गए और क्रांतिकारी दल के भेद प्राप्त करने के लिए उन्हें कष्ट व प्रलोभन दोनों ही दिए गए। पुलिनबिहारी दास टस से मस नहीं हुए। उन्हें दो वर्षों तक विचाराधीन कैदी की भाँति सीखचों के

अंदर रहना पड़ा। मुकदमे का फैसला होने पर पुलिन को सात वर्ष के द्वीपांतरवास का दंड मिला। कालेपानी की सजा पूरी होने पर उन्हें मद्रास की जेल में रखा गया। सन् १९०९ से १९२० तक वे जेलों में या नजरबंद रहे।

क्रांतिकारी दल में प्रमुखता पुलिन बाबू ने अपनी योग्यता के आधार पर अर्जित की थी। वे ढाका की गुप्त समिति के परिचालक नियुक्त हुए थे और इस जिम्मेदारी को उन्होंने बड़ी कुशलता के साथ पूरा किया। उनके सामने समस्या थी कि दल के लोगों के लिए हथियार किस प्रकार जुटाए जाएँ! उन्होंने उन मिस्त्रियों का पता लगाया, जो साहब लोगों की बंदूकें ठीक कर दिया करते थे। इन लोगों को विश्वास में लेकर पुलिन बाबू ने कुछ नवयुवकों को उनके पास भेजा और हथियार बनाने तथा पुरजे फिट करने के काम में उन्हें प्रशिक्षित करा दिया। उन्होंने कुछ चीनी नाविकों के माध्यम से भी थोड़े-बहुत हथियार एकत्रित किए। इस प्रकार एक अच्छी-खासी शस्त्रशाला उन्होंने स्थापित कर दी।

पुलिनबिहारी दास अपनी असाधारण संगठन क्षमता के लिए प्रसिद्ध हो गए। ढाका के क्रांतिकारी केंद्र का प्रसार बंगाल के दूर-दूर के स्थानों तक हो गया। प्रत्यक्ष रूप से पुलिन बाबू ढाका के एक राष्ट्रीय विद्यालय में अध्यापक का काम करते थे। उन्होंने ढाका में एक छात्रावास भी स्थापित किया था, जिसमें लगभग दो सौ छात्र रहते थे। ये सभी छात्र क्रांतिकारी होते थे। इन क्रांतिकारी छात्रों में जो सर्वाधिक योग्य छात्र होते थे, उनको पुलिन बाबू क्रांतिकारियों की गुप्त समिति में ले लिया करते थे। दीक्षामंत्र वे स्वयं देते थे। जिसको दीक्षा दी जाती थी, उसे प्रतिज्ञा ग्रहण करनी पड़ती थी। एक प्रतिज्ञा पत्र उसे दिया जाता था, जिसे वह देवी के सामने प्रत्यालीढासन में बैठकर, मस्तक पर तलवार और 'गीता' धारण करके पढ़ता था। प्रत्यालीढासन सिंह की आक्रमण-स्थिति का प्रतीक है। दीक्षा लेनेवाले एवं देनेवाले दोनों ही पक्ष व्रत-उपवास रखते थे और काषाय वस्त्र धारण करते थे। दीक्षा के उपरांत उन्हें शुद्ध घी व चीनी मिला ताजा कच्चा दूध पर्याप्त मात्रा में पीने को दिया जाता था। समिति के सदस्यों की आयु और योग्यता के आधार पर वर्गीकरण होता था। वर्गीकरण इस प्रकार होता था—

प्रथम वर्ग : अल्पवयस्क बालक,
द्वितीय वर्ग : किशोरावस्था के बालक,
तृतीय वर्ग : विवाहित युवक,
चतुर्थ वर्ग : प्रौढ़ एवं गृहस्थ व्यक्ति।

धन-संग्रह के लिए पृथक् समिति होती थी, जिसके सदस्य विभिन्न उपायों से धन-संग्रह करते थे।

दल का अनुशासन बहुत कठोर होता था। गलत आचरण के लिए एक ही दंड हुआ करता था और वह था प्राणदंड।

पुलिनबिहारी दास की संगठन क्षमता का पता इस बात से चलता है कि क्रांतिकारी कार्य के सुचारु संचालन के लिए पूरे बंगाल को डिवीजन, सब-डिवीजन, जिला, परगना एवं विभागों में बाँटा गया था और सभी कार्यालय योग्य व्यक्तियों को सौंपे गए थे।

समिति के प्रत्येक सदस्य को चार प्रतिज्ञाएँ लेनी पड़ती थीं। वे थीं—

१. **आद्य प्रतिज्ञा :** यह प्रतिज्ञा लेते समय सदस्य समिति के विधान को मानने और अधिकारियों की आज्ञा का पालन करने, बिना सूचना दिए कहीं न जाने की प्रतिज्ञा लेता था।

२. **अंत्य प्रतिज्ञा :** इस प्रतिज्ञा के अनुसार वह अंदरूनी बातों को प्रकट न करने, बिना सूचना दिए कहीं न जाने की प्रतिज्ञा लेता था।

३. **प्रथम विशेष प्रतिज्ञा :** इस प्रतिज्ञा के अनुसार सदस्य बाध्य होता था कि वह उद्‌देश्य सिद्ध न होने तक समिति नहीं छोड़ेगा और माता-पिता, भाई-बहन तथा रिश्तेदारों के मोहजाल में नहीं फँसेगा।

४. **द्वितीय विशेष प्रतिज्ञा :** इस प्रतिज्ञा के अनुसार सदस्य अनुबंधित होता था कि वह समिति के लिए अपना सर्वस्व समर्पित करेगा और आचरण गलत होने पर हर दंड के लिए तैयार रहेगा।

इसमें कोई संदेह नहीं कि पुलिनबिहारी दास के सुयोग्य नेतृत्व में 'ढाका अनुशीलन समिति' ने बहुत प्रगति की और अन्य क्रांतिकारी दलों को भी प्रेरणा मिली। अपने इन कार्यों के फलस्वरूप पुलिन बाबू को बार-बार जेलयात्राएँ करनी पड़ीं। उसके बाद भी वे विभिन्न सामाजिक और राष्ट्रीय कार्यों में लगे रहे। 'भारत सेवक संघ' के मंत्री की हैसियत से भी उन्होंने बहुत प्रशंसनीय सेवाएँ कीं। □

★ प्रफुल्लचंद्र चक्रवर्ती

उस क्रांतिकारी की लाश पहाड़ी के ऊपर से कहाँ गायब हो गई, यह उसके सभी साथियों के लिए आश्चर्य का विषय बना हुआ था। एक का कथन था—

"कल सुबह ही तो हम लोग अपने साथी की लाश इसी स्थान पर रखी देखकर गए थे। आज जब हम लोग चौबीस घंटे बाद यहाँ आए तो लाश गायब

है। लाश स्वयं तो चलकर कहीं जा नहीं सकती। बड़ा आश्चर्य है कि वह यहाँ से गई कहाँ!''

इस कथन पर दूसरे साथी ने टिप्पणी दी—

''हम लोग इस पहाड़ी पर निरंतर तीन दिन से आ रहे हैं और घंटों तक हम यहाँ ठहरते हैं। इस घनघोर जंगल में आदमी तो क्या, हमें कोई परिंदा भी दिखाई नहीं दिया। ऐसी स्थिति में हम लोग यह कल्पना भी कैसे करें कि कोई उस लाश को उठा ले गया होगा!''

एक अन्य क्रांतिकारी ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा—

''यह कल्पना तो की जा सकती है कि जंगली जानवरों या चील-कौओं ने लाश को नोच लिया होगा, पर यह कल्पना तो नहीं की जा सकती है कि उस लाश को कोई जानवर घसीट ले गया होगा। हर हालत में कुछ अवशेष या निशान तो यहाँ मिलने चाहिए थे!''

एक अन्य टिप्पणी इस प्रकार थी—

''किसी लावारिस लाश के पाए जाने की चर्चा न तो शहर में है और न अखबारों में। उस लाश का क्या हुआ, इस रहस्य का उद्‌घाटन किसी भी प्रकार हो नहीं रहा है।''

सब लोग अपने-अपने ढंग से अटकलें लगाते रहे, पर कोई किसी नतीजे पर नहीं पहुँचा।

जिस नौजवान क्रांतिकारी की वह लाश थी, उसका नाम प्रफुल्लचंद्र चक्रवर्ती था। सन् १९०८ के प्रारंभ में ही इन क्रांतिकारियों ने कई प्रयोगों के पश्चात् एक सफल बम का निर्माण कर लिया। इस बम को उल्लासकर दत्त की युक्ति से बनाया गया था, जो बम बनाने की कला सीखने फ्रांस गए थे। बम बन जाने के पश्चात् यह आवश्यक था कि उसका परीक्षण करके देखा जाए। परीक्षण करने जानेवालों में उल्लासकर दत्त, विभूति सरकार, वारींद्रकुमार घोष एवं प्रफुल्लचंद्र चक्रवर्ती थे।

क्रांतिकारियों ने बम के परीक्षण के लिए जो स्थान चुना, वह बंगाल के देवघर जिले के दिघीरिया पर्वत पर एक जंगली तथा सुनसान स्थान था; जहाँ मीलों तक कोई बस्ती नहीं थी और कोई उधर जाता नहीं था। कई पहाड़ियों के बीच की पहाड़ी इस काम के लिए चुनी गई थी। बम फेंकने का दायित्व प्रफुल्लचंद्र चक्रवर्ती ने अपने ऊपर लिया। एक बहुत बड़ी शिला के पीछे छिपकर प्रफुल्लचंद्र चक्रवर्ती को बम फेंकना था। उन्होंने बम की पिन खींचकर उसे पहाड़ी के नीचे दूर फेंका। उसे फेंकते ही सब लोग एक चट्टान की ओट में छिप गए। नीचे गिरते ही भारी आवाज के साथ बम का विस्फोट हुआ और एक चट्टान का टुकड़ा उड़कर

ऊपर की ओर आया, जहाँ वे सब छिपे हुए थे। वह शिलाखंड प्रफुल्लचंद्र चक्रवर्ती एवं उल्लासकर दत्त के ऊपर आकर गिरा। चट्टान का एक खंड टूटकर प्रफुल्ल की खोपड़ी में लगा। उस शिलाखंड के आघात से एक आँख सहित उसके मस्तक का कुछ भाग उड़ गया। प्रफुल्लचंद्र निश्चेष्ट भूमि पर पड़े थे और उनका मस्तक खून का फव्वारा बना हुआ था। घटनास्थल पर ही प्रफुल्लचंद्र चक्रवर्ती की मृत्यु हो गई। उल्लासकर दत्त भी घायल हुए; पर उनकी दशा गंभीर नहीं थी।

साँझ का अँधेरा घिर आया था। प्रफुल्ल का शव लाना संभव नहीं था। सभी के सामने समस्या यह थी कि क्रांतिकारी साथी प्रफुल्लचंद्र चक्रवर्ती के शव का क्या किया जाए? शव का दाह-संस्कार करने के लिए पर्याप्त मात्रा में सूखा ईंधन वहाँ मिलना मुश्किल था और यदि किसी प्रकार दाह करते भी तो धुआँ उठने के कारण उनके पकड़े जाने का भय था। औजारों के अभाव में साथी के शव को दफनाने के लिए उस पथरीली पहाड़ी भूमि को खोदना भी संभव नहीं था।

सभी क्रांतिकारियों ने यह निश्चय किया कि साथी के शव को खुले मैदान में यों ही छोड़ दिया जाए, जिससे वन्य पशु-पक्षी अच्छी दावत का आनंद उठा सकें। उन्होंने ऐसा ही किया और वहाँ से चले गए। अगले दिन वे जब वहाँ पहुँचे तो पाया कि लाश ठीक उसी प्रकार पड़ी है जैसी उन्होंने छोड़ी थी। उसके अगले दिन जब वे लोग वहाँ पहुँचे तो लाश वहाँ से गायब थी।

सभी क्रांतिकारी हैरान थे कि लाश कहाँ गई?

□

★ बहादुरशाह जफर और उसके बेटे

बहादुरशाह जफर

वीर मंगल पांडे ने क्रांति की जो ज्वालाएँ प्रज्वलित कीं, उनकी चिनगारियाँ अंबाला और मेरठ की छावनियों में भी जा पहुँचीं। मेरठ में क्रांतिकारी सेना ने फिरंगियों का सर्वस्वाहा करके दिल्ली की ओर कूच किया। भयंकर रक्तपात के पश्चात् दिल्ली का किला क्रांतिकारी सेना के हाथों में था। क्रांतिकारी सेना ने भारत के अंतिम मुगल सम्राट् बहादुरशाह जफर के सामने जाकर कहा—

"जहाँपनाह! एक बार दिल्ली का तख्त फिर से कुबूल करके हमारे बादशाह बनना स्वीकार कीजिए।"

बहादुरशाह ने उत्तर दिया—

"मेरे खजाने तो खाली हो चुके हैं, आप लोगों को वेतन कहाँ से दूँगा?"

देशभक्तों के स्वर गूँज उठे—

"हम भाड़े के सैनिक नहीं हैं। वेतन लेकर लड़नेवाले और होंगे। हम तो आजादी की कीमत अपने सिरों से देने आपके झंडे के नीचे आए हैं। आप हुक्म दें तो हम अंग्रेजों के सारे खजाने लूटकर आपके कदमों में डाल दें।"

क्रांतिकारी सेना ने बहादुरशाह को दिल्ली के तख्त पर फिर से आसीन किया। क्रांति की लपटें चारों ओर फैलने लगीं। ऐसा लगा कि हिंदुस्तान से अंग्रेजों के बोरिए-बिस्तर उठने वाले हैं; पर हमारी आपस की फूट से उनके पैर लड़खड़ाकर फिर से जम गए। अन्य केंद्रों से सहायता प्राप्त हो जाने के कारण दिल्ली पर अंग्रेजों

का फिर से अधिकार हो गया। बहादुरशाह जफर को कैद कर लिया गया।

बहादुरशाह जफर के साथ उसके चार शहजादे—मिर्जा मुगल, मिर्जा खिजर सुलतान, मिर्जा अबूबकर और मिर्जा अबदुल्ला भी कैद कर लिये गए। जब यह दल जेलखाने के निकट पहुँचा तो बहादुरशाह तथा बेगम जीनतमहल की पालकियों को एक तरफ बढ़ा दिया गया और चारों शहजादों को दूसरी दिशा में ले जाया गया। शहजादों के हाथ-पैर बँधे थे। चारों शहजादों का कत्ल करके मेजर हडसन स्वयं उनका खून पी गया। शहजादों का खून पीते हुए उसने कहा—

"मेरे हृदय में प्रतिहिंसा और प्रतिशोध की इतनी आग भड़क रही थी कि यदि मैं इन शहजादों का खून न पीता तो वह आग शांत न होती।"

इतने से ही हडसन की प्रतिशोध की ज्वाला शांत न हुई। चारों शहजादों के कटे हुए सिर एक थाल में रखवाकर वह बहादुरशाह के पास पहुँचा और बोला—

"आप बादशाह हैं। मैं आपको नजराना भेंट कर रहा हूँ। इसे स्वीकार कीजिए।"

बहादुरशाह अपने बेटों के कटे हुए सिर अपने हाथों में लेकर खून के घूँट पीकर रह गया। उसने होश सँभालकर कहा—

"अलहम्दुलिल्लाह! तैमूर की औलाद ऐसे ही सुर्खरू होकर बाप के सामने आया करती थीं।"

शहजादों की सिर कटी लाशें शहर कोतवाली के सामने लटका दी गईं और उनके कटे हुए सिर जेलखाने के सामने खूनी दरवाजे पर लटका दिए गए।

मेजर हडसन ने अपमान करने के अंदाज से बहादुरशाह जफर से कहा—

दमदमे में दम नहीं अब खैर माँगो जान की,
ऐ जफर ठंडी हुई अब तेग हिंदुस्तान की।

बहादुरशाह जफर अपमान के इस कोड़े से तिलमिला उठा। उसने ईंट का जवाब पत्थर से दिया—

गाजियों में बू रहेगी जब तलक ईमान की,
तख्ते-लंदन तक चलेगी तेग हिंदुस्तान की।

बहादुरशाह को कैद करके बर्मा भेज दिया गया। रंगून के कैदखाने में भारतवर्ष के उस अंतिम मुगल सम्राट् ने ७ नवंबर, १८६२ को प्राण त्याग दिए। □

★ भागीरथ वारगीर

दिल्ली के अंतिम मुगल सम्राट् बहादुरशाह जफर के दरबार में जब इंदौर का क्रांतिकारी नेता भागीरथ वारगीर पहुँचा तो वहाँ उसका बहुत सम्मान किया गया। उसकी वीरता की कहानियाँ बहादुरशाह जफर के कानों तक पहुँच चुकी थीं। उसकी पीठ थपथपाकर सम्राट् ने उसके आगमन का कारण पूछा, तो उसने बताया—

"इंदौर और महू के क्रांतिकारियों के हौसले पूरी बुलंदी पर हैं। कुछ देशी नरेश ही हैं, जो क्रांति सेना का साथ नहीं दे रहे। आप हमारे मुल्क के सम्राट् हैं। इस समय यदि आप देशी नरेशों को फरमान के रूप में कुछ पत्र लिख दें तो वे लोग क्रांतिकारियों के साथ हो जाएँगे और अंग्रेजों को हिंदुस्तान से अपने बोरिए-बिस्तर उठाने ही पड़ेंगे।"

भागीरथ वारगीर की बात सुनकर सम्राट् बहादुरशाह जफर ने कहा—

"सच पूछा जाए तो मैं अपने आपको इस मुल्क का कठपुतली बादशाह समझता था और यहाँ के असली मालिक अंग्रेज ही थे; लेकिन जब से आप लोगों ने आजादी की लड़ाई शुरू की है और मुझे उसकी बागडोर सँभाली है, मैं अपने आपको हिंदुस्तान का शहंशाह समझने लगा हूँ। मैंने राजस्थान के कुछ राजाओं को भी इसी मकसद के खत लिखे हैं। मैं आपके तुकोजीराव होलकर को भी इस मकसद का एक खत लिखे देता हूँ। वैसे तो इस समय हर राजा को अपना फर्ज समझकर खुद ही आजादी की जंग में कूद पड़ना चाहिए।"

सम्राट् बहादुरशाह जफर का पत्र लेकर भागीरथ वारगीर खुशी-खुशी इंदौर चल पड़ा। जब वह इंदौर राज्य के अंतर्गत हातौद के समीप साकल नामक स्थान पर पहुँचा तो देपालपुर के मामलेदार ने उसे गिरफ्तार करके अंग्रेजों के हवाले कर दिया। उसके साथ जो अन्य लोग गिरफ्तार किए गए, वे थे—अमीर खाँ पठान, दाजी बा भोंसला, बापू, रमजान खाँ पठान, मौर्य और कास्या। इन लोगों को

देपालपुर में ही फाँसी के फंदों पर झुला दिया गया।

इंदौर में जो क्रांति का झंडा बुलंद किया गया था, उसका संयोजक भागीरथ वारगीर ही था। वह संभाषणपटु और सूझबूझवाला व्यक्ति था। उसके इन्हीं गुणों से प्रभावित होकर सआदत खाँ ने उसे मुगल सम्राट् बहादुरशाह जफर के पास भेजा था। इस क्रांति योजना के अन्य सूत्रधार थे—रेसीडेंसी स्कूल का मौलवी अब्दुल समद, महिदपुर कंटिजेंट का कमांडर रहमत उल्ला तथा होलकर की सेना का जमादार शेर खाँ, हवलदार दुर्गाप्रसाद और तोपखाने का जमादार मोहम्मद अली।

□

★ भास्कर राव बाबासाहब नरगुंदकर

भास्कर राव बाबासाहब नरगुंदकर

उस दिन कर्नाटक के अंचल में स्थित नरगुंद राज्य में विषाद छा गया। नरगुंद के लोकप्रिय महाराज भास्कर राव बाबासाहब नरगुंदकर को निराशा ही नहीं हुई, उन्हें अपमान का कड़वा घूँट भी पीना पड़ा। बाबासाहब के कोई पुत्र नहीं था। राज्य का उत्तराधिकारी निश्चित करने के लिए उन्होंने धारवाड़ के कलेक्टर तथा बेलगाँव के कमिश्नर के नाम पत्र लिखकर प्रार्थना की कि उन्हें दत्तक पुत्र की अनुमति दी जाए। उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की गई। बाबासाहब ने बंबई की सरकार को भी इस आशय से पत्र लिखा; पर वहाँ से भी इनकार का ही उपहार मिला। इतना ही नहीं, पॉलिटिकल एजेंट जेम्स मेंशन ने बाबासाहब का अपमान करने के लिए उद्दंडतापूर्ण भाषा में उन्हें एक पत्र लिखा। यह पत्र पाकर बाबासाहब तिलमिला गए और वे अपमान का बदला लेने का उपाय सोचने लगे।

बाबासाहब नरगुंदकर अपने राज्य में बहुत लोकप्रिय थे। वे विद्वान्, साहसी, वीर और योद्धा थे। वे विद्वानों का आदर करते थे। उन्होंने अपने महल में संस्कृत

के लगभग चार हजार चुने हुए ग्रंथों का संग्रह कर रखा था। उनके स्वभाव की एक विशेषता यह भी थी कि वे किसीकी चुनौती को अस्वीकार करना नहीं जानते थे। यही कारण था कि पॉलिटिकल एजेंट जेम्स मेंशन के प्रति उनके मन में विद्वेषाग्नि भड़क उठी। उन दिनों उत्तर भारत में १८५७ का स्वाधीनता समर चल रहा था। बाबासाहब ने सोचा कि यह समय अच्छा है, जब दक्षिण भारत में भी यह अग्नि सुलगा दी जाए।

एक दिन बाबासाहब को मालूम हुआ कि जेम्स मेंशन पास के ही एक गाँव में ठहरा हुआ है। उन्होंने सोचा कि मेंशन से अपमान का बदला लेने के लिए यह समय अच्छा है। उन्होंने अपने पाँच-छह विश्वस्त वीरों के साथ जेम्स मेंशन पर धावा बोल दिया। जेम्स मेंशन भागा और एक मारुति मंदिर में छिप गया। बाबासाहब ने उसे खोज निकाला और यह कहकर कि मारुति भगवान् ने शिकार के लिए मुझे एक दानव दिया है, अपनी तलवार के वार से मेंशन का मस्तक उसके धड़ से अलग कर दिया।

बाबासाहब ने अपमान का बदला तो ले लिया था, पर अभी अंग्रेजों को सबक सिखाना बाकी था। उन्होंने जेम्स मेंशन के कटे हुए सिर को अपने भाले की नोक में खोंसकर उसे नरगुंद नगर में घुमाया और उसी भाले को चौराहे पर गाड़ दिया, जिससे आसपास के गाँवों के लोग भी आकर उसे देख सकें। पाँच दिन तक वह सिर प्रदर्शन के लिए टँगा रहा।

अंग्रेज लोग अपनी जाति के इस अपमान को कैसे सह सकते थे। अंग्रेज सेनापति मालकम ने सेना एकत्रित करके नरगुंद पर हमला बोल दिया। पहली लड़ाई में बाबासाहब ने अंग्रेजी सेना को पीछे धकेल दिया। अंग्रेजों ने अपनी सेना की संख्या बढ़ा दी।

अगले दिन बाबासाहब अपने कुछ साथियों सहित किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँचने के लिए किले के बाहर निकल गए। अंग्रेजों को इस बात का पता चल गया और उनका पीछा किया गया। बाबासाहब नरगुंदकर को गिरफ्तार कर लिया गया।

बाबासाहब के ऊपर पॉलिटिकल एजेंट जेम्स मेंशन की हत्या का मुकदमा चलाया गया। न्यायालय ने उन्हें फाँसी का दंड सुनाया।

१२ जून, १८५८ को बाबासाहब नरगुंदकर फाँसी पर झूलकर भारत माता की गोद में सदैव के लिए सो गए।

□

★ मदाम भीकाजी कामा

मदाम भीकाजी कामा

गौर वर्ण, उन्नत ललाट, अच्छा कद, बड़ी-बड़ी कजरारी आँखें एवं चेहरे पर हृदय की महानतायुक्त गांभीर्य के भाव धारण किए हुए, भारतीय बहुरंगी साड़ी में सज्जित वह युवती जब १८ अगस्त, १९०७ को जर्मनी के स्टुटगार्ट नगर में आयोजित 'अंतरराष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन' के मंच पर उपस्थित हुई, तो हजारों आँखें एक साथ उसकी ओर उठीं और पूरे सभाभवन में कानाफूसी प्रारंभ हुई—

"कोई भारतीय राजकुमारी मालूम पड़ती है!"

"काले आदमियों के देश भारत में भी इतना सौंदर्य, आश्चर्य है!"

"बहुत प्रभावशाली और सुसंस्कृत महिला है।"

कानाफूसियों का दौर उस समय समाप्त हुआ, जब भारत की प्रतिनिधि मदाम भीकाजी कामा ने अपने बैग में से छोटा-सा झंडा निकाला, उसे स्टैंड सहित टेबल पर रखा और कहना आरंभ किया—"संसार के स्वतंत्रता-प्रेमी महानुभावो! मेरा नियम है कि अपने देश का झंडा फहराकर ही मैं बोलना शुरू करती हूँ। भारत के महान् शहीदों के तप, त्याग और बलिदानों की गरिमा से युक्त स्वाधीनता के प्रतीक इस झंडे को मैंने आपके सामने फहराया है। मैं अपने सम्मुख बैठे हुए संसार के सभी स्वाधीनता-प्रेमी सदस्यों से निवेदन करती हूँ कि आप लोग इस झंडे के सम्मान के लिए खड़े हों और इसका अभिवादन करें।"

ऐसा लगा जैसे मदाम भीकाजी कामा के व्यक्तित्व और उनकी वाणी ने लोगों पर जादू कर दिया हो। पूरी सभा लहराकर एक साथ उठ खड़ी हुई और लोगों ने अपनी टोपियाँ उतारकर भारतीय झंडे का सम्मान किया। लोगों के बैठ जाने पर मदाम कामा ने फिर कहना प्रारंभ किया—

"आप स्वाधीनता-प्रेमी महानुभावों ने स्वाधीनता चाहनेवाले एक देश के झंडे का सम्मान किया, इसके लिए मैं अपनी ओर से और अपने समस्त देशवासियों की ओर से आपके प्रति आभार व्यक्त करती हूँ।

"मैं आप लोगों को बताना चाहती हूँ कि भारत, जहाँ समस्त संसार की मानवता का पाँचवाँ भाग रह·रहा है, वह आज ब्रिटिश साम्राज्यवाद की चक्की में पिसकर कराह रहा है। भारत के समस्त आर्थिक साधनों का दोहन करके ब्रिटेन गुलछर्रे उड़ा रहा है और भारतीय लोग दाने-दाने को मोहताज होकर सड़कों पर दम तोड़ रहे हैं। क्या साम्राज्यवाद और समाजवाद एक साथ रह सकते हैं? मेरा प्रस्ताव है कि—संसार की सारी स्वाधीनता-प्रेमी जनता संसार की मानवता के पाँचवें भाग, भारत की जनता, को ब्रिटिश साम्राज्य से मुक्त होने और समता तथा समाजवाद के पथ पर अग्रसर होने के प्रयत्न में सहयोग दे।"

मदाम कामा के भाषण की समाप्ति पर सभाभवन तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा। सभी लोगों ने प्रस्ताव के समर्थन में हाथ ऊँचे किए। केवल ब्रिटेन के प्रतिनिधि 'नहीं! नहीं!' करते हुए प्रस्ताव के विरोध में उठ खड़े हुए। उन्हें क्या पता था कि संसार-भर के समाजवादी देशों के सामने एक भारतीय महिला उन्हें इस तरह बेनकाब करेगी! उन्हें क्या पता था कि उनकी साम्राज्यवादी दाढ़ के नीचे लहूलुहान देश के पिछड़े वर्ग की एक प्रतिनिधि सिंहनी के समान गर्जना करके उन्हें बेआबरू करेगी! उन्हें क्या पता था कि अबला कही जानेवाली एक नारी इस प्रकार उनकी साम्राज्यलिप्सा और शोषक मनोवृत्तियों के विरुद्ध तीक्ष्ण प्रहार करेगी। एक को छोड़ सभी ब्रिटिश प्रतिनिधियों ने मदाम कामा के प्रस्ताव का घोर विरोध किया। केवल ब्रिटेन के उदारवादी सदस्य हिंडमैन ने उनके प्रस्ताव का समर्थन किया।

सभा का नियम था कि जिस प्रस्ताव को सर्वसम्मति प्राप्त नहीं होगी, वह स्वीकृत नहीं होगा। इस नियम के अंतर्गत और ब्रिटेन के प्रतिनिधियों के विरोध के कारण मदाम भीकाजी कामा का प्रस्ताव पारित नहीं हो सका। प्रस्ताव पारित नहीं हुआ, कोई बात नहीं; पर मदाम कामा ने सरेआम ब्रिटेन को बेनकाब करके संसार-भर के लोगों की सहानुभूति भारत के लिए अर्जित कर ली थी। ब्रिटेन के प्रतिनिधियों का विरोध तो प्रारंभ से ही था। वे लोग तो उस सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधिमंडल के प्रवेश का ही विरोध कर रहे थे। बड़ी कठिनाई से और कुछ देशों के प्रतिनिधियों के हस्तक्षेप के फलस्वरूप ही भारतीय प्रतिनिधिमंडल को अंतरराष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन में प्रवेश मिल सका था। मदाम कामा ने भारत की योग्यता को संसार के सामने उजागर कर दिया।

भारत का राष्ट्रीय झंडा

जर्मनी में आयोजित होनेवाले अंतरराष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व तीन सदस्यों ने किया था—मदाम कामा के अतिरिक्त दूसरे सदस्य

थे वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय, जो बहुत ही कुशाग्र बुद्धि और अंतरराष्ट्रीय ख्याति के व्यक्ति थे। तीसरे सदस्य थे सरदारसिंह राणा, जो फ्रांस में रहनेवाले भारत के महान् क्रांतिकारी व्यक्ति थे। इसके पहलेवाले सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व दादाभाई नौरोजी ने किया था। सभी लोग चाहते थे कि इस बार नरम दलीय लोगों के स्थान पर गरम दलीय लोग ही भारत का प्रतिनिधित्व करें। भारत के तीन क्रांतिकारियों— मदाम कामा, वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय और सरदारसिंह राणा ने सम्मेलन में भाग लेकर भारत की प्रतिष्ठा संसार के लोगों में बढ़ा दी।

मदाम कामा ने जर्मनी के स्टुटगार्ट नगर में आयोजित समाजवादी सम्मेलन मे जो झंडा फहराया था, वह भारत का पहला राष्ट्रीय झंडा था। उस झंडे का डिजाइन तैयार किया था भारत के ही महान् क्रांतिकारी वीर विनायक दामोदर सावरकर ने। झंडे में तीन पट्टियाँ थीं। हरा रंग भारत की धन-धान्यपूर्ण हरीतिमा का प्रतीक था। उस हरी पट्टी पर आठ कमल पुष्प अंकित थे। उस समय भारत आठ प्रांतों में बँटा हुआ था और आठ कमल भारतीय योग-साधना के प्रतीक भी हैं। झंडे के बीच की पट्टी केसरिया रंग की थी। केसरिया रंग भारत की वीरता का प्रतीक है। केसरिया रंग की पट्टी पर 'वंदेमातरम्' क. बलिदान मंत्र अंकित था। सबसे नीचे की पट्टी लाल रंग की थी। लाल रंग भारत में अनुराग का रंग माना जाता है। अनुराग एवं एकता की भावना के प्रदर्शन के लिए लाल पट्टी पर एक ओर सूर्य और दूसरी ओर चंद्रमा अंकित थे। ये हिंदू-मुसलिम एकता के प्रतीक थे। लाल रंग वैसे खूनी संघर्ष का प्रतीक भी माना जा सकता है, जिसके माध्यम से हिंदू और मुसलमान मिलकर अपनी मातृभूमि को मुक्त करने के लिए कृत संकल्प थे। किसी भी अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारत का झंडा फहराए जाने का वह प्रथम अवसर था।

क्रांति का उदय

जिस महान् क्रांतिकारिणी ने अंतरराष्ट्रीय जगत् में भारत को स्थापित किया, उसके जन्म और पारिवारिक पृष्ठभूमि का कुछ हाल जान लेना बड़ा उपयोगी होगा। बंबई के एक प्रसिद्ध पारसी व्यापारी सोहराबजी फ्रामजी पटेल के घर २४ सितंबर सन् १८६१ को एक कन्या का जन्म हुआ, जिसका नाम उन्होंने 'भीकाजी' रखा। यही कन्या आगे चलकर मदाम कामा के नाम से विश्व-विश्रुत हुई। बड़े लाड़-प्यार से कन्या का लालन-पालन हुआ। घर में उसे 'मुन्नी' के नाम से पुकारा जाता था। वह पढ़ने-लिखने में बहुत होशियार थी और विद्यालय का पूरा काम किए बिना न तो भोजन करती थी और न शयन करती थी। हर विषय में उसे सर्वोच्च अंक प्राप्त होते थे। बोलती भी खूब थी। वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में वह प्रथम

पुरस्कार प्राप्त किया करती थी। बचपन में ही उसने कई भाषाएँ सीख ली थीं।

सोहराबजी फ्रामजी के नौ बच्चे थे, पर उनकी पुत्री भीकाजी स्वभाव में अपने सभी भाई-बहनों से भिन्न थी। स्वतंत्रता संग्राम की कहानियाँ सुनने में उसे बड़ा आनंद आता था और शहीदों के प्रति वह अगाध श्रद्धा रखती थी। जैसे-जैसे उसे अंग्रेजों द्वारा किए जानेवाले अत्याचारों का ज्ञान होता गया, उसके मन में उनके प्रति घृणा व विद्वेष के भाव उत्पन्न होने लगे और उसके विचार क्रांतिकारी रूप धारण करने लगे। उसके पिता को चिंता हुई कि कहीं यह लड़की क्रांति के क्षेत्र में पदार्पण कर परिवार के ऊपर कोई मुसीबत न ले आए। उन्होंने उसकी शादी करके उसकी जीवनधारा को मोड़ देना चाहा। बंबई के ही एक प्रसिद्ध वकील के.आर. कामा के साथ उन्होंने अपनी पुत्री की शादी करके सोचा कि ऐश्वर्यशील जीवन व्यतीत करने के कारण अब इसके विचारों में परिवर्तन आ जाएगा।

एक घर : दो आदर्श

श्रीमती कामा के दांपत्य की गाड़ी थोड़े दिन तो घिसटते-घिसटते चली, पर धीरे-धीरे तीव्र गतिरोध उत्पन्न हो गया। उनके पति उनसे भिन्न विचारों के व्यक्ति थे। ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति उनकी निष्ठा थी और वे उसकी आलोचना या उसके विरुद्ध कोई कार्य पसंद नहीं करते थे। श्रीमती कामा के विचार इसके ठीक विपरीत थे। वे भारत में अंग्रेजी राज्य को किसी भी प्रकार सहन नहीं कर रही थीं और चाहती थीं कि उसका उन्मूलन शीघ्र ही हो जाए।

श्रीमती कामा उन सभी गतिविधियों में भाग लेने लगीं, जो भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध चल रही थीं। उनके पति रुस्तमजी कामा को यह सबकुछ पसंद नहीं आता था। उन्होंने श्रीमती कामा को चेतावनी दी कि वे इस प्रकार की गतिविधियों में भाग नहीं लिया करें। श्रीमती कामा और सबकुछ कर सकती थीं, पर स्वदेशानुराग नहीं छोड़ सकती थीं। उन्होंने ऐसे कार्यों में और अधिक भाग लेना प्रारंभ कर दिया। पति-पत्नी में ठनने लगी। घर युद्धभूमि का दृश्य उपस्थित करने लगा। तूफान की परिणति है शांति। घर में शांति इस अर्थ में हुई कि अब उन दोनों में बोलचाल भी बंद हो गई।

जान पर खेलकर जनसेवा

उन्हीं दिनों बंबई में प्लेग की भयंकर बीमारी फैल गई। भारी संख्या में लोग मरने लगे। बड़े घरों के लोगों को तो सेवा-शुश्रूषा करनेवाले लोग भी मिल जाते थे, पर सामान्य जनों और गरीबों की देखभाल करनेवाला कोई नहीं था।

अपने घरवालों को छोड़-छोड़कर लोग भाग रहे थे। इस चुनौती को स्वीकार किया श्रीमती कामा ने। वे प्लेग को ललकारकर मैदान में कूद पड़ीं। उन दिनों प्लेग के कीटाणुओं से बचने के लिए किसी निरोधात्मक टीके का आविष्कार नहीं हुआ था। इसकी चिंता किए बिना ही श्रीमती कामा प्लेग के रोगियों की अथक सेवा करती रहीं। वे अपने हाथों से उनके जख्म साफ करतीं और पट्टियाँ बाँधती थीं। उनके सिरहाने बैठकर वे उन्हें धैर्य तथा साहस प्रदान करती थीं। हजारों मरनेवालों को उन्होंने जीवन की राह दिखाई। उन्होंने यह भी प्रेरणा दी कि हमारा जीवन देश का जीवन है।

प्लेग के रोगियों की सेवा करते-करते स्वयं श्रीमती कामा पर प्लेग का आक्रमण हो गया। मरने से तो वे बच गईं, पर बहुत अशक्त हो गईं और कई वर्षों के प्रयत्न से भी उनका खोया हुआ स्वास्थ्य लौटकर नहीं आया।

यूरोप की भूमि पर

श्रीमती कामा के सभी शुभचिंतकों और परिवारवालों ने यही निश्चित किया कि अच्छे उपचार एवं स्वास्थ्य-सुधार के लिए उन्हें यूरोप भेज देना चाहिए। श्रीमती कामा देश को छोड़ना नहीं चाहती थीं; पर एक प्रकार से जाने के लिए उन्हें बाध्य किया गया। आखिर १९०१ के अप्रैल माह में वे यूरोप के लिए प्रस्थित हो गईं।

एक-एक वर्ष जर्मनी, फ्रांस, स्कॉटलैंड आदि देशों में रहकर सन् १९०५ में श्रीमती कामा लंदन पहुँच गईं।

उन दिनों लंदन में भारत के प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता दादाभाई नौरोजी रह रहे थे। लगभग डेढ़ वर्ष तक श्रीमती कामा उनके निजी सचिव के रूप में कार्य करती रहीं। धीरे-धीरे अन्य भारतीय क्रांतिकारियों से उनका परिचय हुआ। इन क्रांतिकारियों में श्यामजी कृष्ण वर्मा, सरदारसिंह राणा और विनायक दामोदर सावरकर थे। जब श्यामजी कृष्ण वर्मा ने 'दि इंडियन सोशियोलॉजिस्ट' पत्र प्रकाशित करना प्रारंभ किया तो श्रीमती कामा बड़े उत्साह के साथ उसके लिए लेख लिखने लगीं। श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा ही स्थापित 'इंडियन होमरूल सोसाइटी' में काम करने के लिए वे अपना बहुत समय देने लगीं।

पेरिस में

लंदन में इधर भारतीय क्रांतिकारियों की गतिविधियाँ बढ़ रही थीं तो उधर उनके विरुद्ध पुलिस की सरगर्मियाँ भी बढ़ रही थीं। लंदन अब उनके लिए सुरक्षित स्थान नहीं रह गया था। श्यामजी कृष्ण वर्मा एवं मदाम कामा लंदन छोड़कर फ्रांस

चले गए और पेरिस में रहकर क्रांति कार्य करने लगे। प्रसिद्ध क्रांतिकारी लाला हरदयाल को भी ब्रिटिश शासन ने इंग्लैंड से निष्कासित कर दिया। मदाम कामा इसपर बहुत क्रुद्ध हुईं। प्रसिद्ध क्रांतिकारी सरदारसिंह राणा भी पहले से ही फ्रांस में थे। सावरकर को भी लंदन छोड़कर फ्रांस पहुँचना पड़ा। फ्रांस अब भारतीय क्रांतिकारियों का गढ़ हो गया।

स्टुटगार्ट के अंतरराष्ट्रीय मंच पर

यह पहले ही बताया जा चुका है कि १९०७ में जर्मनी के स्टुटगार्ट नगर में आयोजित अंतरराष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन में किस प्रकार मदाम कामा ने भारत की स्वाधीनता की जोरदार वकालत की और अंग्रेजों के झूठे प्रचार का पर्दाफाश किया। उस सम्मेलन में मदाम कामा की एक उपलब्धि यह भी थी कि रूस के क्रांतिकारी प्रतिनिधियों और विशेष रूप से महान् नेता लेनिन से उनका परिचय स्थापित हुआ।

अमेरिका में धुआँधार प्रचार

जिस प्रकार आध्यात्मिक के क्षेत्र में स्वामी विवेकानंद ने यूरोप और अमेरिका में भारत के गौरव का डंका बजाया, उसी प्रकार राजनीतिक क्षेत्र में पराधीन भारत की स्वाधीन होने की आकांक्षा को सर्वाधिक प्रचारित किया मदाम कामा ने। जीवन के प्रत्येक क्षण का उपयोग वे देश के काम के लिए कर रही थीं। देश के ऊपर होने वाले दमन तथा अत्याचार की कहानियाँ सुनकर वे रो उठती थीं और देश के किसी लाड़ले की वीरतापूर्ण गाथा सुनकर वे खुशी के मारे नाच उठती थीं। वे जानती थीं कि अपनी स्वाधीनता के लिए अमेरिका ने संघर्ष किया है और वह स्वाभाविक रूप से उन देशों के प्रति सहानुभूति रखेगा, जो अपनी स्वाधीनता के लिए संघर्ष कर रहे हैं। इसी विचार से वे जर्मनी के समाजवादी सम्मेलन की समाप्ति के पश्चात् अमेरिका चली गईं।

मदाम कामा की ख्याति पहले ही अमेरिका पहुँच चुकी थी। जब वे वहाँ पहुँचीं तो अमेरिका के लोगों ने जी भरकर उनका स्वागत किया, उनको सुना और उनको सराहा।

न्यूयार्क में मदाम कामा के कई भाषण हुए। उन दिनों भारत के एक अन्य महान् क्रांतिकारी मौलवी बरकतुल्ला अमेरिका में रह रहे थे। उन्होंने भी मदाम कामा के क्रांतिकारी भाषणों का भरपूर लाभ उठाया और उन्हें भरपूर सहयोग दिया। मदाम कामा के अमेरिका प्रवास के समय लगभग वे उन्हींके साथ रहे। न्यूयार्क के

प्रेस रिपोर्टर्स ने जब मदाम कामा से साक्षात्कार किया तो वे उनकी योग्यता, उनकी लगन एवं भारत की आजादी के प्रति उनकी उत्कट भावना को देखकर अत्यंत प्रभावित हुए और उनकी प्रशंसा किए बिना न रह सके। मदाम कामा ने उन्हें बताया कि भारत के लोग यद्यपि अनपढ़ और भूखे हैं, पर पेट की भूख से कहीं अधिक भूख उनको आजादी की है। उन्होंने यह भी आशा व्यक्त की कि भारत संघर्ष करेगा और आजादी प्राप्त करके रहेगा।

२८ अक्तूबर, १९०७ को मदाम कामा का भाषण मिनर्वा क्लब द्वारा वालडोर्फ एस्टोरिया होटल में रखा गया। वहाँ भाषण देते हुए उन्होंने लोगों से कहा कि आप लोग रूस के बारे में बहुत कुछ जानते हैं, पर भारत के बारे में थोड़ा भी नहीं जानते। इसका कारण बताते हुए उन्होंने कहा कि ग्रेट ब्रिटेन भारत के रक्त की बूँद-बूँद चूसकर भी संसार में यह ढिंढोरा पीट रहा है कि भारत हमारे शासन में सुखी है और वह स्वाधीनता नहीं चाहता। उन्होंने लोगों से अपील की कि हर सभ्य और स्वाधीन देश का फर्ज है कि वह स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए भारत की सहायता करे।

अमेरिका के कई राज्यों में मदाम कामा को आमंत्रित किया गया।

लंदन में पुनः सक्रिय

अपने अमेरिका प्रवास के पश्चात् मदाम कामा कुछ समय के लिए फिर लंदन पहुँच गईं। यह जानते हुए भी कि गिरफ्तार होने के खतरे के साथ-साथ लंदन में उनकी जान को भी खतरा है, वे लंदन पहुँचे बिना मानी नहीं। इसका मुख्य कारण यह था कि भारत के बहुत बड़े-बड़े कांग्रेसी नेता निर्वासित होकर लंदन पहुँच रहे थे और उनके द्वारा मदाम कामा भारत की सही स्थिति भी जानना चाहती थीं। भारत के भावी स्वाधीनता संग्राम के स्वरूप के संबंध में उनसे विचार-विमर्श भी करना चाहती थीं। १९०७ में सूरत में संपन्न हुए कांग्रेस अधिवेशन में गरम दलीय लोगों के बढ़ते हुए प्रभाव के समाचार सुनकर उन्हें प्रसन्नता हुई। भारत में होनेवाले कांग्रेस के आगामी अधिवेशन को प्रभावित करने की दृष्टि से उन्होंने लंदन के कैक्सटन हॉल में भारतीयों का एक सम्मेलन आयोजित किया। इस सम्मेलन में लाला लाजपतराय, विपिनचंद्र पाल, खापर्टे, गोकुलचंद नारंग और आगाखाँ जैसे भारत के महान् नेता उपस्थित थे; पर सबसे अधिक ओजस्वी भाषण मदाम कामा का ही था। उनके भाषण का एक-एक शब्द अंगार की शक्ल में निकलता था। वे खुले रूप से यह कहती थीं कि अंग्रेजों को भारत से निकालने के लिए हथियार उठाना कोई हिंसक कार्य नहीं; क्योंकि एक हिंसक से निबटने के लिए और कोई सिद्धांत उपयोगी हो ही नहीं सकता। इस मामले में मदाम कामा ने श्यामजी कृष्ण

वर्मा से भी एक कदम आगे बढ़कर उग्रता को प्रोत्साहित किया था। शेर की माँद में घुसकर ही वे शेर को ललकार रही थीं। भारत के क्रांतिकारियों को भी वे प्रोत्साहित कर रही थीं और वहाँ कोई कांड उपस्थित हो जाने पर वे लंदन में ही बैठी-बैठी यह निर्देशित करती रहती थीं कि क्रांतिकारियों के लिए कौन-सा वकील या बैरिस्टर ठीक रहेगा।

चाहे लंदन में रहनेवाले भारतीय हों, चाहे भारत में रहनेवाले—उन सभी को मदाम कामा का एक ही संदेश था—

'हमारे जीवन की सार्थकता देश के लिए मर-मिटने में है। हम भारत के हैं और भारत भारतीयों के लिए है।'

न केवल भारत, वरन् संसार के सभी देशों के क्रांतिकारियों के प्रति मदाम कामा की सहानुभूति थी और आयरलैंड, रूस, मिस्र एवं जर्मनी के क्रांतिकारियों के साथ उनका संपर्क निरंतर बना हुआ था। जिन देशों में वे नहीं जा सकती थीं, वहाँ भी उनकी ख्याति पहुँच चुकी थी। लंदन में तो घर-घर में लोग उनका नाम जानते थे। उनकी इतनी ख्याति से ब्रिटेन की सरकार चिंतित भी हो उठी। सरकार के जासूस मदाम कामा के पीछे छाया की भाँति लगे रहते थे।

सन् १९०८ में जब विनायक दामोदर सावरकर की प्रेरणा से लंदन के 'इंडिया हाउस' में प्रथम स्वाधीनता संग्राम की अर्द्ध शताब्दी का समारोह मनाया तो मदाम कामा ने बहुत-सा धन एकत्रित कर उस युद्ध के पीड़ित परिवारों की सहायतार्थ भेजा। उन्होंने सावरकर द्वारा लिखित महान् ग्रंथ 'भारतीय स्वतंत्रता संग्राम-१८५७' को ब्रिटिश विरोध के बावजूद प्रकाशित कराया और गोपनीय रूप से उसके वितरण का कार्य किया। सभी देशों में उसकी प्रतियाँ पहुँचाई गईं। उसकी एक प्रति मदाम कामा ने मैक्सिम गोर्की के पास रूस भी भेजी थी। उस ग्रंथ के संस्करण बराबर निकलते रहे। भारत में उसका अंग्रेजी में ही एक संस्करण सुभाषचंद्र बोस ने तथा अपने समय में भारत के महान् क्रांतिकारी भगतसिंह ने हिंदी में अनुवाद करके (एक संस्करण) गोपनीय ढंग से निकाला था। हर प्रकार के क्रांतिकारी साहित्य के प्रकाशन में मदाम कामा सहयोग देती थीं और किसी-न-किसी प्रकार वे उसको भारत भी पहुँचाती थीं।

पुनः पेरिस में

लंदन में कई कार्य संपन्न करके मदाम कामा १ मई, १९०९ को पुनः पेरिस पहुँच गईं। पेरिस अब पुनः क्रांतिकारियों का गढ़ हो गया। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन को बल प्रदान करने तथा भारत की आवाज दूसरे देशों तक पहुँचाने के

लिए मदाम कामा ने पेरिस से एक अखबार 'वंदेमातरम्' का प्रकाशन प्रारंभ किया। इसका संपादक उन्होंने लाला हरदयाल को नियुक्त किया। 'वंदेमातरम्' का प्रथम अंक सितंबर १९०९ में प्रकाशित हुआ। उसके प्रकाशन और वितरण के लिए मदाम कामा को बहुत श्रम करना पड़ता था। उनका शरीर भी मशीन जैसा कार्य कर रहा था।

'वंदेमातरम्' की बढ़ती हुई लोकप्रियता और उसकी उग्र भावना को देखकर पेरिस में भी उसके प्रकाशन में बहुत व्यवधान उत्पन्न किए गए। सन् १९१० के जनवरी से अगस्त तक 'वंदेमातरम्' के अंक जिनेवा से प्रकाशित किए गए और वहाँ से भी हटाकर उसके प्रकाशन का स्थान हॉलैंड करना पड़ा।

नारी-जागरण की अग्रदूत

मदाम कामा स्वयं तो भारतीय स्वाधीनता के लिए अथक परिश्रम कर ही रही थीं, वे चाहती थीं कि प्रत्येक देश की महिलाएँ जाग्रत होकर अपने-अपने देश के लिए कार्य करें। महिलाओं द्वारा राजनीति के क्षेत्र में भाग लेने का सुखद परिणाम उनकी कल्पना में यह था कि इससे पुरुषों को अधिक बल और प्रेरणा प्राप्त होगी। एक बार जब वे मिस्र की राष्ट्रीय सभा में भाग लेने के लिए वहाँ गईं तो सभा में एक भी महिला को न देखकर उन्होंने कहा—

"मैं यहाँ मिस्र का केवल आधा प्रतिनिधित्व देख रही हूँ। शेष आधा प्रतिनिधित्व कहाँ है?

"मैं मिस्र के सपूतों से पूछती हूँ कि आप लोगों की माताएँ कहाँ हैं? आप लोगों की बहनें कहाँ हैं? आप लोग यह न भूलें कि पालना झुलानेवाले हाथ ही व्यक्ति का निर्माण करते हैं। आप लोग यह न भूलें कि राष्ट्र के निर्माण में महिलाओं का बहुत योगदान रहता है।"

साथियों को बचाने के प्रयास

मदाम कामा उन व्यक्तियों में से नहीं थीं, जो स्वयं दूर रहकर दूसरों को आग में कूदने का उपदेश देते रहते हैं। क्रांति उनके खून की हर बूँद में थी और उनका खून खौलता हुआ खून था। वे बराबर इस प्रयत्न में रहती थीं कि यदि अपना गला फँसाकर साथियों को बचाया जा सकता है तो उन्हें अवश्य बचाया जाए।

वीर सावरकर लंदन में गिरफ्तार करके भारत ले जाए जा रहे थे। जब उनका जहाज ८ जुलाई, १९१० को फ्रांस के बंदरगाह मार्सेलिस के निकट पहुँचा तो वे जहाज से समुद्र में कूद पड़े और बरसती हुई गोलियों से स्वयं को बचाते

हुए किनारे लगकर फ्रांस की भूमि पर जा पहुँचे। उन्हें आशा थी कि वहाँ उन्हें भागने के लिए कार लिये हुए मदाम कामा और श्यामजी कृष्ण वर्मा मिल जाएँगे; पर जब वे वहाँ नहीं मिले तो उन्हें बड़ी निराशा हुई। अंग्रेज सिपाहियों ने वीर सावरकर को पकड़कर फिर जहाज की कोठरी में डाल दिया और जहाज को शीघ्र ही वहाँ से ले गए।

जैसाकि वीर सावरकर को आशा थी, मदाम कामा ने उन्हें फ्रांस के तट से कार में बैठाकर ले जाने की योजना बना रखी थी। उनकी कार फ्रांस के तट पर बिलकुल ठीक समय पर पहुँची थी; पर उनको यह जानकर बड़ी निराशा हुई कि उस दिन जहाज अपने समय से बहुत पहले ही किनारे लग गया था और समय से बहुत पहले ही वह वहाँ से चल भी दिया। इसका कारण यह था कि जब वीर सावरकर समुद्र में कूद पड़े तो उनका पीछा करने के लिए जहाज को अपनी गति बढ़ानी पड़ी, जिसके कारण वह किनारे पर समय से पहले पहुँच गया और जब वीर सावरकर को फ्रांस की भूमि पर पकड़ लिया गया तो किसी अन्य मुसीबत से बचने के लिए जहाज वहाँ से शीघ्र ही चल दिया।

इसके पश्चात् भी मदाम कामा ने मामले को हेग की अंतरराष्ट्रीय अदालत में पहुँचाकर वीर सावरकर को छुड़ाना चाहा; पर उस अंतरराष्ट्रीय अदालत ने भी उस समय न्याय नहीं किया। मदाम कामा का तर्क था कि जब सावरकर ने स्वयं को फ्रांस की पुलिस को समर्पित कर दिया तो ब्रिटिश पुलिस को फ्रांस की पुलिस से उन्हें लेने का कोई अधिकार नहीं था। वे चाहती थीं कि ब्रिटेन सावरकर को फ्रांस के सुपुर्द कर दे; पर इस प्रयत्न में उन्हें सफलता नहीं मिली। मदाम कामा को बड़ी निराशा हुई। सावरकर के प्रति उन्हें पुत्रवत् स्नेह था। उन्होंने सावरकर को फ्रांस में अपने घर पर रखकर बीमारी के दिनों में उनकी अच्छी सेवा की थी और उन्हें बिलकुल चंगा कर दिया था।

भारत में भी उन दिनों क्रांतिकारी घटनाएँ बड़ी तीव्रता से घट रही थीं और किसी-न-किसी रूप में मदाम कामा उनसे जुड़ी हुई थीं।

नासिक के कलेक्टर मि. जैक्सन की हत्या २१ दिसंबर, १९०९ को क्रांतिकारी युवक कान्हरे द्वारा कर दी गई। इसी प्रकार टिन्नेवेली के न्यायाधीश मि. ऐश की हत्या १७ जून, १९११ को एक क्रांतिकारी वांची अय्यर ने कर दी। दोनों मामलों की जब छानबीन हुई तो पुलिस इस निष्कर्ष पर पहुँची कि दोनों ही पिस्तौलें ब्राउनिंग मॉडल की थीं और वे पिस्तौलें सरदारसिंह राणा एवं विनायक दामोदर सावरकर ने चतुर्भुज अमीन द्वारा लंदन से भारत भेजी थीं। ब्राउनिंग मॉडल की बीस पिस्तौलें भारत आई थीं, जिन्हें खरीदने के लिए मदाम कामा ने पैसा जुटाया था। बड़े आश्चर्य की बात

तो यह रही कि जब मि. ऐश को मारकर वांची अय्यर ने आत्महत्या कर ली तो तलाशी लेने पर उसके पास से फ्रांस से मदाम कामा द्वारा प्रकाशित अखबार 'वंदेमातरम्' के अप्रैल १९११ के अंक की एक प्रति निकली थी।

जब यह पता लगा कि ब्राउनिंग पिस्तौलोंवाले मामले में सरदारसिंह राणा के फँसने की आशंका है तो उन्होंने किसीसे परामर्श लिये बिना एक योजना की रचना कर डाली। सही बात तो यही थी कि वे बीस ब्राउनिंग पिस्तौलें सरदारसिंह राणा और सावरकर द्वारा ही सरदारसिंह राणा के संदूक में रखकर इंडिया हाउस के रसोइए चतुर्भुज अमीन द्वारा भारत भेजी गई थीं और ऊपरवाले पेंदे पर अन्य सामान रख दिया गया था।

मदाम कामा ने जिस कहानी की रचना की, वह यही थी कि एक दिन वे फ्रांस स्थित ब्रिटिश कौंसिल के दफ्तर में पहुँचीं और अपने नाम का परिचय पत्र भेजकर उसपर लिख दिया—'मि. जैक्सन व मि. ऐश की हत्या के संबंध में कुछ जानकारी देने'। जब यह परिचय ब्रिटिश कौंसिल के पास पहुँचा तो वे स्वयं खुशी-खुशी मदाम कामा की अगवानी के लिए पहुँचे। उनके मन में इस बात की खुशी थी कि अब कोई नया सुराग हाथ लगेगा।

ब्रिटिश कौंसिल के सामने मदाम कामा ने अपना बयान इस प्रकार दिया—

"मि. जैक्सन और मि. ऐश की हत्या जिन पिस्तौलों से हुई हैं, वे मैंने ही भारत में भेजी थीं। सरदारसिंह राणा और किसी अन्य का उन्हें भारत भेजने में कोई हाथ नहीं था। यह ठीक है कि वह संदूक सरदारसिंह राणा का था; पर वह बहुत दिन से मेरे पास पड़ा था और सरदारसिंह को बिना कुछ बताए ही उस संदूक का उपयोग मैंने पिस्तौलें भेजने के लिए किया। इस संबंध में सावरकर को भी मैंने कुछ नहीं बताया। वे दोनों लोग निर्दोष हैं और पिस्तौलें भेजने की सारी जिम्मेदारी मुझपर है।"

ब्रिटिश कौंसिल इस बयान को सुनकर बहुत हैरान हुआ। उसने बयान की रसीद मदाम कामा को देकर उन्हें बिदा कर दिया। यह स्पष्ट हो गया कि अपने साथियों को बचाने के लिए मदाम कामा ने उस कहानी की रचना की थी।

मदन की याद

मदनलाल धींगरा को फाँसी हुए बहुत समय व्यतीत हो चुका था; पर मदाम कामा उसे भुलाए नहीं भूल पाती थीं। उसे बिलकुल अपने बेटे की तरह समझती थीं। जब १७ अगस्त, १९०९ को उसे फाँसी हुई थी तो कुछ दिन तक मदाम कामा पागलों जैसा व्यवहार करती रही थीं। मदनलाल धींगरा की याद में भी वे एक

अखबार निकालती थीं, जिसका नाम उन्होंने 'मदंस तलवार' रखा था। यह अखबार बर्लिन से प्रकाशित होता था।

भारत के डॉ. अविनाश भट्टाचार्य जब सन् १९१३ में मदाम कामा से मिलने फ्रांस पहुँचे तो मदनलाल धींगरा का जिक्र भी निकल पड़ा। उस समय भी धींगरा की याद करके उनकी आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे। 'मेरे प्यारे बच्चे को उन दुष्टों ने मार दिया' कहकर वे बहुत देर तक रोती रहीं। वे अंग्रेजों को कोसती रहीं कि ये अंग्रेज लोग संसार में दूसरों की स्वतंत्रता के सबसे बड़े शत्रु हैं।

अंग्रेजों के लिए मत लड़ो

१९१४ में जब प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ गया तो इंग्लैंड ने भारत से हिंदुस्तानी फौजें लाकर यूरोप के मोरचे पर अड़ा दीं। ये फौजें फ्रांस के बंदरगाह पर भी उतरा करती थीं। मदाम कामा स्वयं बंदरगाह पर पहुँचकर या जब सैनिक टोलियों से बाजारों में भेंट हो जाती थी तो उन्हें समझाना प्रारंभ कर देती थीं—

"मेरे वीर बच्चो! तुम लोग उस देश की तरफ से लड़ने जा रहे हो, जिसने हमारी भारत माता को कैद कर रखा है । यदि अंग्रेजों की तरफ से लड़ोगे तो भारत माता के बंधन और दृढ़ होते चले जाएँगे। याद रखो, यह युद्ध हमारा नहीं है। तुम्हें धोखे में रखा जा रहा है। तुम्हें मरने के लिए मोरचे पर भेजा जा रहा है। अपनी मातृभूमि को गुलाम बनानेवालों की ओर से तुम लोग मत लड़ो।"

जब अंग्रेजों को मदाम कामा के इस प्रचार के विषय में ज्ञात हुआ तो वे बहुत चिंतित हुए। फ्रांसीसी लोग भी बहुत चिंतित हुए। युद्ध में इंग्लैंड और फ्रांस मित्र देश थे। पहले तो फ्रांस की सरकार ने मदाम कामा की गतिविधियों पर कुछ पाबंदियाँ लगाईं और जब उन्हें संतोष नहीं हुआ तो उन्हें पेरिस से हटाकर विशी नामक स्थान पर एक पुराने किले में नजरबंद कर दिया गया। उन्हें चार साल तक कई असुविधाओं के बीच नजरबंद रखा गया।

मदाम कामा का कंकाल भारत लौटा

युद्ध की समाप्ति पर मदाम कामा को नजरबंदी से छोड़ा गया। अत्यधिक श्रम करने के कारण पहले ही उनका स्वास्थ्य काफी गिर चुका था, नजरबंदी की हालत ने तो उनके स्वास्थ्य का सर्वनाश ही कर दिया। जब सरदारसिंह राणा उनसे मिले तो उनकी हालत देखकर रो दिए। उनका शरीर सूखकर कंकाल मात्र रह गया था।

नजरबंदी की यातनाओं के साथ-साथ गरीबी ने भी मदाम कामा को झकझोर डाला था। फ्रांस में अपने आखिरी दिन उन्हें बहुत ही गरीबी में बिताने पड़े। गरीबी

के कारण ही पेरिस में पहलेवाला अच्छा मकान छोड़कर उन्हें एक गली में अँधेरे मकान में रहना पड़ा। अपना अधिकांश समय वे एक लंबा-सा गाउन पहने घर में ही बिताती थीं। उनके सभी शुभचिंतकों ने उन्हें परामर्श दिया कि उन्हें भारत लौट जाना चाहिए। सभी ने प्रयत्न किया और उन्हें भारत लौटने की अनुमति मिल गई।

मदाम कामा ने मातृभूमि के लिए जलयान द्वारा यात्रा की। अस्वस्थ तो वे थीं ही, समुद्री यात्रा ने उन्हें और अधिक बीमार कर दिया। जिस समय उन्होंने भारत छोड़ा था, उस समय वे युवती थीं। अब सत्तर वर्ष की वृद्धा होकर वे स्वदेश लौट रही थीं। उन्होंने अपनी जवानी का एक-एक क्षण भारत माता की स्वाधीनता के चिंतन और प्रयत्नों में ही व्यतीत किया था।

भारत पहुँचकर मदाम कामा को अस्पताल में ही शरण लेनी पड़ी। लगभग आठ महीने अस्पताल में रहने के पश्चात् १६ अगस्त, १९३६ को मदाम कामा का देहावसान हो गया।

भारत की जिस आजादी के लिए मदाम कामा ने अपने जीवन और जवानी का एक-एक क्षण होम कर दिया, उसका उदय उनकी मृत्यु के ग्यारह वर्ष पश्चात् हुआ। भारत के स्वाधीनता संग्राम में मदाम कामा का स्थान बहुत ऊँचा है। मदाम कामा फाँसी या गोली लगने से शहीद नहीं हो पाईं; पर यह सत्य है कि उनकी मृत्यु किसी शहादत से कम नहीं है।

□

★ वीरांगना भीमाबाई

ब्रिटिश हुकूमत अपनी राज्य-हड़प नीति के अंतर्गत इंदौर के होलकर राज्य पर घात लगाए बैठी थी। उसका प्रयत्न था कि जैसे ही कोई अवसर मिले, वह इंदौर राज्य पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में ले ले।

इंदौर के शासक महाराजा यशवंतराव होलकर बड़ी चुस्ती से राज्य-संचालन कर रहे थे। अंग्रेजों की कुदृष्टि का उनको भी अनुमान था; लेकिन एक अवसर आया कि वे भी राजकाज की ओर से लापरवाह हो गए। हुआ यह कि वे अपनी एक अतीव सुंदर दासी तुलसाबाई के प्रति आसक्त हो गए और राजकाज की ओर से उदासीन होकर वे अपना अधिकांश समय तुलसाबाई के साथ व्यतीत करने लगे। तुलसाबाई जहाँ अद्वितीय सुंदरी थी, वहीं वह चालाक और महत्त्वाकांक्षी भी थी। उसने महाराजा को अपने प्रेमजाल में फाँसने के लिए उनकी पुत्री भीमाबाई को

अपना मोहरा बनाया और उसे माता के समान प्यार करने लगी।

भीमाबाई युवती हो गई थी और वह तुलसाबाई के मंतव्य को भलीभाँति समझने लगी थी। वह अपने पिता यशवंतराव होलकर को यथासंभव तुलसाबाई से दूर रखने का प्रयत्न करने लगी; यहाँ तक कि वह राजकाज में भी उनकी सहायता करने लगी। तुलसाबाई को भीमाबाई का यह हस्तक्षेप पसंद नहीं आया। उसने भीमाबाई का पत्ता काटने के लिए महाराजा यशवंतराव को परामर्श दिया कि भीमाबाई की शादी कर दी जाए। महाराजा यशवंतराव तुलसाबाई की बात को टालते नहीं थे। उन्होंने अपनी पुत्री भीमाबाई का विवाह कर दिया।

दुर्भाग्य यह हुआ कि कुछ समय पश्चात् भीमाबाई के पति का असमय में ही निधन हो गया। रिश्तेदार लोग उसके राज्य पर घात लगाने लगे। भीमाबाई ने राज्य-शासन स्वयं अपने हाथों में ले लिया। वह अपनी योग्य दादी महारानी अहिल्याबाई होलकर की पौत्री थी। शासन-प्रबंध उसको विरासत में मिला था। उसने अपने शासनकाल में कृषि, उद्योग और व्यापार संबंधी अनेक सुधार किए। शासन-संचालन की उसकी योग्यता देखकर स्वयं पेशवा और महाराजा सिंधिया उसके प्रशंसक हो गए। अपने राज्य का संचालन करने के अतिरिक्त वह अपने पिता महाराजा यशवंतराव से भी संपर्क बनाए हुए थी और अंग्रेजों की चाल के विरुद्ध उन्हें सावधान करती रहती थी।

अंग्रेजों ने इसका बदला लेने के लिए भीमाबाई के राज्य पर ही आक्रमण कर दिया। भीमाबाई के व्यक्तित्व में एक कुशल योद्धा भी छिपा हुआ था। उसने अंग्रेजी सेना के साथ छापामार युद्ध की नीति अपनाई तथा कई युद्धों में अंग्रेजी सेनाओं को परास्त किया और उन्हें दूर तक खदेड़ा भी।

भीमाखेड़ी गाँव के युद्ध में उसने अंग्रेजी सेना को करारी शिकस्त दी। कहते हैं कि इसीके कारण उसका नाम 'भीमाखेड़ी' पड़ा।

भीमाबाई के अंत के विषय में इतिहास मौन है। फिर भी एक वीरांगना के रूप में भीमाबाई ने इतिहास में अपना यश सुरक्षित रखा है।

□

★ भूपेंद्रनाथ दत्त

कलकत्ता की पुलिस उस क्रांतिकारी को पकड़ने का साहस नहीं कर पा रही थी। लुक-छिपकर कार्य करने के स्थान पर वह खुल्लमखुल्ला अंग्रेजी साम्राज्य

को ललकार रहा था और उसके विरुद्ध विद्रोह की आग भड़का रहा था। उसके शब्द थे—

भूपेंद्रनाथ दत्त

"यदि यह न्यायोचित है कि कोई व्यक्ति आत्मरक्षा के लिए बल-प्रयोग कर सकता है, तो वही काम यदि कोई राष्ट्र करता है तो उसे न्यायोचित क्यों नहीं ठहराया जाता? यदि कोई व्यक्ति अपनी जान बचाने के लिए किसी चोर, डाकू या हमलावर की जान ले सकता है तो एक देश की जान बचाने और उसे मुक्त करने के लिए यदि कुछ लोगों को मौत के घाट उतार भी दिया जाए तो इसे अपराध क्यों माना जाता है? युद्ध या इसी प्रकार के कुछ उपाय भले ही अच्छे न माने जाएँ, परंतु आज की स्थितियों में उनसे बचे रहना भी मुश्किल है। जब युद्ध आवश्यक ही हो जाए तो उसे नकारना कायरता है।"

वह तरुण क्रांतिकारी था भूपेंद्रनाथ दत्त, जो इस प्रकार के शब्दों से अंग्रेजी साम्राज्य पर आक्रमण कर उसे निस्तेज कर रहा था। आश्चर्य की बात यह कि सरकार उसे गिरफ्तार करने में स्वयं को असमर्थ पा रही थी। वह सरकार, जो स्वयं को सिंह कहलाने में गर्व का अनुभव करती थी, भूपेंद्रनाथ दत्त ने उस सिंह पर ही हमला कर दिया—

"तुम्हें सिंह कहकर कौन पुकारता है? हम तुम्हें ब्रिटिश सिंह क्यों कहें? तुम्हारे देश में न तो बाघ होते हैं और न ही सिंह। तुम्हारे देश में तो खच्चर, गीदड़ और कुत्ते होते हैं। बचपन में जब हम तुम्हारे देश की किताबें पढ़ते थे तो उनमें इन जानवरों के विषय में पढ़ा करते थे और आज राजनीति के क्षेत्र में भी हमारा इन्हीं जानवरों के स्वरूप से पाला पड़ रहा है।"

ब्रिटिश सरकार तिलमिला गई, जब उसने देखा कि यह क्रांतिकारी खुल्लमखुल्ला हमको खच्चर, गीदड़ और कुत्ता कह रहा है। आखिर उसने कानून क्यों बनाए थे? कानून के शिकंजों से उसने डॉ. भूपेंद्रनाथ दत्त को पकड़ना चाहा। कलकत्ता की अदालत में उसपर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया।

भूपेंद्रनाथ दत्त किसी मामूली धातु का नहीं, असली इस्पात का बना हुआ क्रांतिकारी था। स्वामी विवेकानंद की रगों में जो खून बह रहा था, वही तो भूपेंद्रनाथ की रगों में भी बह रहा था। विवेकानंद का तेज और विद्रोही स्वभाव

उनके इस छोटे भाई ने भी पाया था। अभी तक तो वह 'युगांतर' पत्र के संपादकीय लेखों के माध्यम से लोगों को चौंका रहा था, और जब उसे अभियुक्त के कठघरे में खड़ा किया गया तो अदालत में भी उसने विस्फोट किया—

"'मैं इस न्यायालय की तनिक भी परवाह नहीं करता। यह न्यायालय पतित और निकम्मा है। मैं इसकी कार्यवाही में कोई रुचि नहीं लेना चाहता। ये सब लोग तानाशाही के गुर्गे हैं—वह तानाशाही, जिसने हमारे देश पर अत्याचारों की बाढ़ छोड़ रखी है।"

कलकत्ता के चीफ प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट मि. किंग्सफोर्ड ने तो सोचा था कि 'युगांतर' पत्र का संपादक घबराएगा, वह अपने बचाव के लिए वकील और दया की भीख माँगेगा; पर उसके स्थान पर उस क्रांतिकारी संपादक ने तो अपनी भावनाओं का बम भरी अदालत में फोड़ दिया। वह उनमें से नहीं था, जो कहकर नकारता। उसने सिंह गर्जना करते हुए स्वीकार किया—

"मैं भूपेंद्र दत्त, घोषित करता हूँ कि मैं ही 'युगांतर' का संपादक हूँ और जितने भी लेख इस पत्र में प्रकाशित हुए हैं, उन सबके लिए मैं अकेला ही उत्तरदायी हूँ। मैंने वही किया है, जो अपने देश के हित में मुझे करना चाहिए था। इसके अतिरिक्त न तो मैं कोई और वक्तव्य देना चाहता हूँ और न ही अदालत की कार्यवाही में भाग लेना चाहता हूँ।"

अपने विषय में इतनी खरी बात सुनकर अदालत के कानों के कीड़े झड़ गए। जज साहब ने अभियुक्त को धमकाते हुए कहा—

"आपके विरुद्ध अदालत के अपमान का अभियोग भी चलाया जाएगा।"

इस धमकी के उत्तर में भूपेंद्रनाथ का कथन था—

"आप जो उचित समझें, करें। यदि जेल की सजा कुछ महीने और बढ़ा दी गई तो भी क्या फर्क पड़ता है!"

और सचमुच ही अदालत ने २४ जुलाई, १९०७ को मुकदमे का फैसला सुना दिया। प्रेसीडेंसी जज मि. किंग्सफोर्ड क्रांतिकारियों को लंबी-लंबी और क्रूर सजाएँ देने के लिए बदनाम ही था। उसने डॉ. भूपेंद्रनाथ दत्त को एक वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुना दी। भूपेंद्रनाथ दत्त ने हँसते हुए इस सबको स्वीकार किया। जब पुलिस इंस्पेक्टर उनको पकड़ने के लिए बढ़ा तो उन्होंने उसे झिड़क दिया और स्वयं ही निर्भीकतापूर्वक पुलिस गाड़ी की तरफ बढ़ चले।

सारे देश में डॉ. भूपेंद्रनाथ दत्त का सम्मान बहुत बढ़ गया। 'वंदेमातरम्' और 'संध्या' पत्रिकाओं ने भूपेंद्रनाथ दत्त के सम्मान में संपादकीय लेख लिखे। लोग अपने प्रिय क्रांतिकारी को सजा मिलने के कारण दुःखी थे; पर उसके शब्द

उनको प्रेरणा दे रहे थे—

"अंग्रेजी साम्राज्य बिना बुनियाद के खड़ा हुआ एक कच्चा भवन है, जो तनिक से धक्के से ही भूमिसात् होकर बिखर जाएगा। इसकी शक्ति बढ़ा-चढ़ाकर बताई गई है। यह हमारे धक्के की प्रतीक्षा कर रहा है। निर्भय बनो और अपना कर्तव्य करो।"

□

★ मंगल पांडे

ब्रह्म देश (बर्मा) पर विजय तथा सिख युद्ध की समाप्ति के पश्चात् अंग्रेजों ने भारतवर्ष पर निष्कंटक राज्य करने के सपने देखे होंगे; पर उन्हें क्या पता था कि सन् १८५७ का वर्ष उनकी आशाओं पर तुषारपात का वर्ष सिद्ध होगा।

मंगल पांडे

देशव्यापी युद्ध की गोपनीय तैयारी हो जाने के पश्चात् किसी उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा की जाने लगी। म्यान में पड़ी भारतीय तलवारें बाहर निकल पड़ने को आतुर हो रही थीं। वीरों के भाले शत्रु के रक्त के प्यासे हो रहे थे। भारतीय बंदूकें और तोपें अग्निवर्षा के लिए विकल हो रही थीं। वीरों की भुजाएँ फड़क रही थीं। आजादी के दीवानों को प्रतीक्षा के पल वर्ष जैसे लग रहे थे। आखिर एक दीवाने के धैर्य का बाँध टूट गया और वह सामूहिक अभियान की प्रतीक्षा किए बिना ही अंग्रेजों को ललकारता हुआ रणभूमि में कूद पड़ा।

२९ मार्च, १८५७ का दिन अंग्रेजों के लिए दुर्भाग्य के दिन के रूप में उदित हुआ। पाँचवीं कंपनी की चौंतीसवीं रेजीमेंट का १४४६ नं. का सिपाही वीरवर मंगल पांडे अंग्रेजों के लिए प्रलय-सूर्य के समान निकला। बैरकपुर की संचलन भूमि में प्रलयवीर मंगल पांडे का रणघोष गूँज उठा—

''बंधुओ! उठो! उठो! तुम अब भी किस चिंता में निमग्न हो? उठो, तुम्हें अपने पावन धर्म की सौगंध! चलो, स्वातंत्र्य लक्ष्मी की पावन अर्चना हेतु इन अत्याचारी शत्रुओं पर तत्काल प्रहार करो।''

मंगल पांडे के बदले हुए तेवर देखकर अंग्रेज सारजेंट मेजर ह्यूसन उसके पथ को अवरुद्ध करने के लिए आगे बढ़ा। उसने उस विद्रोही को उसकी उद्दंडता का पुरस्कार देना चाहा। अपनी कड़कती आवाज में उसने मंगल पांडे को खड़ा रहने का आदेश दिया। वीर मंगल पांडे के अरमान मचल उठे। वह शिवशंकर की भाँति सन्नद्ध होकर रक्तगंगा का आह्वान करने लगा। उसकी सबल बाहुओं ने बंदूक तान ली। उसकी सधी हुई उँगलियों ने बंदूक का घोड़ा अपनी ओर खींचा और घुड़ड़ घूँऽऽऽ का तीव्र स्वर घहरा उठा। मेजर ह्यूसन घायल कबूतर की भाँति भूमि पर तड़प रहा था। उसका रक्त भारत की धूल चाट रहा था। १८५७ के क्रांतिकारी ने एक फिरंगी की बलि ले ली थी। विप्लव महायज्ञ के पुरोधा मंगल पांडे की बंदूक पहला 'स्वाहा' बोल चुकी थी। स्वातंत्र्य यज्ञ की वेदी को दस्यु-देह की समिधा अर्पित हो चुकी थी।

ह्यूसन को धराशायी हुआ देख लेफ्टिनेंट बॉब वहाँ जा पहुँचा। उस अश्वारूढ़ गोरे ने मंगल पांडे को घेरना चाहा। पहला ग्रास खाकर मंगल पांडे की बंदूक की भूख भड़क उठी थी। उसने दूसरी बार मुँह खोला और लेफ्टिनेंट बॉब घोड़े सहित भू-लुंठित होता दिखाई दिया। गिरकर भी बॉब ने अपनी पिस्तौल मंगल पांडे की ओर सीधी करके गोली चला दी। विद्युत् गति से वीर मंगल पांडे गोली का वार बचा गया और बॉब खिसियाकर रह गया। अपनी पिस्तौल को मुँह की खाती हुई देख बॉब ने अपनी तलवार खींच ली और वह मंगल पांडे पर टूट पड़ा। मंगल पांडे भी कच्चा खिलाड़ी नहीं था। बॉब ने मंगल पांडे पर प्रहार करने के लिए तलवार तानी ही थी कि पांडे की तलवार का भरपूर हाथ उसपर ऐसा पड़ा कि बॉब का कंधा और तलवारवाला हाथ जड़ से कटकर अलग जा गिरा। एक बलि मंगल पांडे की बंदूक ले चुकी थी और दूसरी बलि उसकी तलवार ने ले ली।

लेफ्टिनेंट बॉब को गिरा हुआ देख एक दूसरा अंग्रेज मंगल पांडे की ओर बढ़ा ही था कि मंगल पांडे के साथी एक भारतीय सैनिक ने अपनी बंदूक डंडे की भाँति उस अंग्रेज की खोपड़ी पर दे मारी। अंग्रेज की खोपड़ी खुल गई। अपने आदमियों को गिरते हुए देख कर्नल व्हीलर मंगल पांडे की ओर बढ़ा; पर सभी क्रुद्ध भारतीय सिंह गर्जना कर उठे— "खबरदार, जो कोई आगे बढ़ा! आज हम तुम्हारे अपवित्र हाथों को ब्राह्मण की पवित्र देह का स्पर्श नहीं करने देंगे।"

कर्नल व्हीलर जैसा आया था वैसा ही लौट गया। इस सारे कांड की सूचना अपने जनरल को देकर, अंग्रेजी सेना को बटोरकर ले आना उसने अपना धर्म समझा।

वीर मंगल पांडे ने अपने कर्तव्य की पूर्ति कर दी थी। उसने शत्रु के रक्त से

भारतभूमि का तर्पण किया था। मातृभूमि की स्वाधीनता जैसे महत् कार्य के लिए अपनी रक्तांजलि देना भी उसने अपना पावन कर्तव्य समझा। उसने अपनी बंदूक अपनी छाती से अड़ाकर गोली छोड़ दी। गोली छाती में सीधी न जाती हुई पसली की तरफ फिसल गई और घायल सिंह अंग्रेजी सेना द्वारा बंदी बना लिया गया।

अंग्रेजों ने भरसक प्रयत्न किया कि वे मंगल पांडे से क्रांति योजना के विषय में उसके साथियों के नाम-पते पूछ सकें; पर वह मंगल पांडे था, जिसका मुँह अपने साथियों को फँसाने के लिए खुला ही नहीं। मंगल होकर वह अपने साथियों का अमंगल कैसे करता! फौजी अदालत ने न्याय का नाटक रचा और फैसला सुना दिया गया। ८ अप्रैल का दिन मंगल पांडे की फाँसी के लिए निश्चित किया गया। बैरकपुर के जल्लादों ने मंगल पांडे के पवित्र खून से अपने हाथ रँगने से इनकार कर दिया। तब कलकत्ता से चार जल्लाद बुलाए गए।

८ अप्रैल, १८५७ के सूर्य ने उदित होकर मंगल पांडे के बलिदान का समाचार संसार में प्रसारित कर दिया। भारत के एक वीर पुत्र ने आजादी के यज्ञ में अपने प्राणों की आहुति दे दी। वीर मंगल पांडे के पवित्र प्राण-हव्य को पाकर स्वातंत्र्य यज्ञ की लपटें भड़क उठीं। क्रांति की ये लपलपाती हुई लपटें फिरंगियों को लील जाने के लिए चारों ओर फैलने लगीं।

□

★ मदनलाल धींगरा

मदनलाल धींगरा

उस नौजवान क्रांतिकारी का नाम मदनलाल धींगरा था। वह एक सामान्य किस्म का नौजवान था, जो बोलता कम था और अपने काम से काम रखता था। उसने भावुक हृदय पाया था। घंटों तक वह आईने के सामने बैठा रहता और अपनी छवि निहारता रहता था। लंदन के किसी पार्क में बैठ जाता तो घंटों तक बैठा रहता था और फूलों-पत्तियों को निहारा करता था। कुछ लोग उसे कवि समझते थे; पर

उसने कोई कविता लिखी नहीं थी। हाँ, लंदन की जासूस पुलिस उसकी गतिविधियों पर दृष्टि अवश्य रखती थी। इसके दो कारण थे—पहला कारण तो यह था कि वह लंदन में श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा स्थापित 'इंडिया हाउस' में रहता था। यह स्थान इंग्लैंड में भारतीय क्रांतिकारियों का अड्डा माना जाने लगा था। मदनलाल पर पुलिस के संदेह का दूसरा कारण यह था कि वह रहस्यात्मक प्रवृत्ति का व्यक्ति दिखाई पड़ता था। वह घूमता भी बहुत था। बहुत सज-सँवरकर निकलता था। लड़के और लड़कियाँ दोनों ही उसके मित्र बनने के इच्छुक रहते थे। मदनलाल धींगरा भारत में अमृतसर के एक संपन्न खत्री परिवार का लड़का था। पिता एक प्राइवेट डॉक्टर थे और उनका कार्य बहुत अच्छा चलता था। उसके भाई भी नामी डॉक्टर थे, जिन्होंने इंग्लैंड से डॉक्टरी पास की थी। भारत में ही बी.ए. पास कर लेने के पश्चात् मदनलाल ने दो-एक छोटी-मोटी नौकरियाँ भी कीं; पर उसे संतोष नहीं हुआ और उसकी महत्त्वाकांक्षा ने उसे लंदन पहुँचा दिया। वहाँ वह इंजीनियरिंग की शिक्षा प्राप्त करने लगा। लंदन में उसे 'इंडिया हाउस' में रहने की सुविधा प्राप्त हो गई।

उन दिनों इंग्लैंड में भारत के एक तेजवंत नौजवान विनायक दामोदर सावरकर की बड़ी धूम थी। वह युवक लंदन में रहकर भारतीय नौजवानों को क्रांति के लिए दीक्षित भी कर रहा था और भारत के क्रांतिकारियों से संपर्क बनाए रखकर वहाँ हथियार भी भेजता रहता था। यह सावरकर का ही जीवट था कि इंग्लैंड में रहते हुए उसने १८५७ के प्रथम भारतीय स्वाधीनता संग्राम की अर्द्ध शताब्दी धूमधाम से मना डाली। यह कैसे अद्‌भुत संयोग की बात थी कि १९०८ में १० मई रविवार को ही पड़ी—ठीक वही दिन, जब रविवार, १० मई, १८५७ को मेरठ में क्रांति भड़क उठी थी। लंदन के इंडिया हाउस से प्रचारित निमंत्रण पत्र सभी भारतीयों के पास इस प्रकार पहुँचाया गया कि भारतीयों के अतिरिक्त और लोगों को उसकी गंध न लगे। निमंत्रण पत्र इस प्रकार था—

'१८५७ के प्रथम भारतीय स्वाधीनता संग्राम का अर्द्ध शताब्दी समारोह मनाने के लिए—
इंग्लैंड में प्रवासी भारतीयों की एक सभा
इंडिया हाउस में
रविवार, १० मई, १९०८ को
संध्या समय ठीक चार बजे
आयोजित की गई है।
आप सभी और आपके भारतीय मित्रगण सादर आमंत्रित हैं।

बड़े उत्साह के साथ इंग्लैंड में रहनेवाले भारतीय निश्चित तिथि को नियत समय पर लंदन के 'इंडिया हाउस' पहुँचे। सावरकर के अतिरिक्त कई अन्य

वक्ताओं के ओजस्वी भाषण हुए और स्वाधीनता संग्राम में काम आए वीरों को 'शहीद' कहकर पुकारा गया तथा उनकी स्मृति में श्रद्धांजलि अर्पित की गई। भारत को स्वाधीन करने की योजनाओं पर भी विचार-विमर्श हुआ। समारोह में भाग लेनेवालों को स्वाधीनता संग्राम की स्मृति के प्रतीकस्वरूप बैज बाँटे गए। मदनलाल धींगरा भी उत्सव में उत्साह के साथ सम्मिलित हुआ था और बड़े गर्व के साथ उसने अपने कोट पर वह बैज लगाया।

अगले दिन जब मदनलाल अपने कॉलेज पहुँचा तो बड़ी शान के साथ वह अपने कोट में वह बैज लगाए पहुँच गया, जो उसे पिछले दिन 'इंडिया हाउस' में मिला था। कक्षा के प्राध्यापक ने उससे वह बैज निकाल देने के लिए कहा। मदनलाल अकड़ गया और बोला—

"यह हमारी आजादी के संघर्ष और शहीदों के प्रति सम्मान का प्रतीक है, मैं इसे नहीं हटाऊँगा।"

मदनलाल के इस उत्तर से पूरी कक्षा में रोष की लहर दौड़ गई। कई अंग्रेज विद्यार्थी मदनलाल पर टूट पड़े और उसके साथ हाथापाई प्रारंभ कर दी। एक अंग्रेज विद्यार्थी ने मदनलाल के कोट से वह बैज निकाल लेना चाहा; पर मदनलाल ने उसके साथ संघर्ष किया और यह कहता हुआ वह कक्षा से बाहर चला गया—

"तेरा गला नहीं काटा तो मैं भी मदनलाल ही क्या, देख लूँगा तुझे!"

बात आई-गई हो गई। मदनलाल ने इस घटना का उल्लेख 'इंडिया हाउस' में सावरकर से किया। सावरकर ने बताया कि कक्षा की घटना तो छोटी घटना थी; पर ऐसी हर घटना के पीछे वास्तविक हाथ सर कर्जन वायली का रहता है, जो हम सभी भारतीय नौजवानों के कार्यों की जासूसी करता रहता है और हमें तंग करता रहता है। मदनलाल ने तैश में आकर कहा—"यदि मैं कर्जन वायली को दुनिया से ही उठा दूँ तो कैसा रहे?"

सावरकर ने कहा—"यह प्याले का तूफान है या एक क्रांतिकारी के संकल्पी हृदय का तूफान?"

मदनलाल का उत्तर था—

"इसकी परीक्षा आप करके देख लें कि यह कौन-सा तूफान है!"

सावरकर ने कहा—"जमीन पर अपना सीधा हाथ रख दो।"

मदनलाल ने जमीन पर अपना सीधा हाथ रख दिया। सावरकर ने एक तेज नुकीला सूआ मदनलाल की हथेली में दे मारा, जो हथेली के पार हो गया। मदनलाल मुसकराता रहा, उसके चेहरे पर शिकन भी नहीं आई। वह परीक्षा में खरा उतरा था। सावरकर ने हाथ से वह सूआ निकालकर फेंक दिया और मदनलाल को

बाँहों में भरकर गले से लगा लिया। दोनों की आँखों में आनंदाश्रु उमड़ पड़े। भावी योजना पर दोनों में कुछ बातचीत भी हुई। कुछ दिनों पश्चात् मदनलाल ने 'इंडिया हाउस' छोड़ दिया और वह एक अंग्रेज मकान मालकिन कु. मुरी हैरिस के साथ १०८, लीडबुरी रोड पर रहने लगा। 'इंडिया हाउस' के उसके साथियों को उसके इस प्रकार के व्यवहार से क्षोभ भी हुआ। वे उसकी उदासीनता का कारण नहीं समझ सके।

मदनलाल के मस्तिष्क में केवल कर्जन वायली ही घूम रहा था। कर्जन वायली पहले भारतीय सेना में एक अफसर था और रिटायर होने के पश्चात् वह इंग्लैंड पहुँच गया। वहाँ सन् १९०१ में भारत के 'सेक्रेटरी ऑफ स्टेट' का निजी सचिव नियुक्त कर दिया गया था। भारत सचिव ने उस समिति में भी उसे सदस्य के रूप में चुना, जो भारतीय विद्यार्थियों की गतिविधियों पर नजर रखने के लिए बनाई गई थी। अपनी इस भूमिका का निर्वाह करने के क्रम में कर्जन वायली भारतीय विद्यार्थियों को बहुत तंग करता था। यही कारण था कि वह भारतीय नौजवानों की आँखों में खटक रहा था। मदनलाल ने भारतीयों के रास्ते से उस काँटे को साफ कर देने का संकल्प कर रखा था।

मदनलाल खामोश नहीं बैठा। जनवरी में उसने एक कोल्ट रिवॉल्वर खरीद लिया। थोड़े दिन पश्चात् ही उसने किसी अन्य व्यक्ति से बेल्जियम की बनी हुई एक पिस्तौल खरीद ली। लंदन में एक संस्थान था, जहाँ निशाना लगाना सिखाया जाता था। मदनलाल उस संस्थान का सदस्य बन गया और नियमित रूप से निशाना साधना सीखने लगा।

लंदन में ब्रिटिशभक्त भारतीयों की एक संस्था थी, जिसका नाम था 'इंडियन नेशनल एसोसिएशन'। इस संस्था का उद्देश्य यही था कि इंग्लैंड में रहनेवाले भारतीय युवकों को अंग्रेजी साम्राज्य और अंग्रेजी संस्कृति का भक्त बनाया जाए। इस संस्था में युवकों को नैतिक रूप से पतित करने के प्रयत्न भी किए जाते थे। इस संस्था की सचिव कुमारी ऐमा जोसेफाइन बैक थी, जो बहुत ही चालाक महिला थी। मदनलाल धींगरा इस संस्था का सदस्य भी बन गया और उसने कुमारी ऐमा जोसेफाइन बैक से मित्रता कर ली। वह 'इंडियन नेशनल एसोसिएशन' का प्रभावशाली सदस्य माना जाने लगा।

अपनी योजना को क्रियान्वित करने के लिए मदनलाल ने क्या-क्या नहीं किया। उसने अपने शत्रु सर कर्जन वायली से भी मित्रता कर ली। जब कर्जन वायली भारत में था, तब मदनलाल धींगरा के पिता डॉक्टर साहिब दित्ता की मित्रता उससे थी। मदनलाल ने इस स्थिति का लाभ उठाया। कर्जन वायली भी लाभ उठाना

चाहता था। वह इंडिया हाउस की गतिविधियों के विषय में उससे पूछताछ करता रहता था। मदनलाल उसे उतनी ही बातें बताता था, जितनी बातें बताने की अनुमति वह सावरकर से लिया करता था।

मदनलाल ने ८ जून, १९०९ को वायली को मारने का इरादा बनाया। ८ जून को भारत में अंग्रेजी हुकूमत ने विनायक दामोदर सावरकर के भाई गणेश दामोदर सावरकर को, जो बाबाराव सावरकर के नाम से अधिक लोकप्रिय थे, आजन्म कारावास का दंड सुना दिया। मदनलाल को इस दिन कर्जन वायली को मारने का अच्छा अवसर हाथ नहीं लगा। इस कारण उसने अपना विचार किसी आगामी दिन के लिए स्थगित कर दिया।

१ जुलाई, १९०९ को 'इंडियन नेशनल एसोसिएशन' का वार्षिकोत्सव मनाया जाने वाला था। मदनलाल ऐमा जोसेफाइन बैक से मिला और उसे यह जानकर हर्ष हुआ कि कर्जन वायली भी उत्सव में सम्मिलित होने वाला है।

१ जुलाई, १९०९ को गुरुवार का दिन था। उस दिन मदनलाल ने अपना सायंकालीन भोजन कुछ पहले ही कर लिया और वह निशानेबाजी के क्लब में जा पहुँचा। उस दिन उसने अभ्यास के लिए बारह निशाने लगाए, जिनमें से सभी ठीक बैठे। उसे बहुत आत्मसंतोष हुआ।

निशानेबाजी के क्लब से मदनलाल अपने कमरे पर पहुँचा और अपने कपड़े बदले। एक बढ़िया सूट पहनकर उसने टाई लगाई और सिर पर आसमानी रंग का साफा बाँधा। आँखों पर उसने एक गहरे रंग का चश्मा लगाया। दोनों भरे हुए रिवॉल्वर उसने होशियारी के साथ जेबों में डाले और दो चाकू भी उसने अपने साथ रख लिये। स्वतंत्रता की देवी के चरणों में शत्रु की बलि देने की पूरी तैयारी के साथ वह घर से चल दिया।

'इंडियन नेशनल एसोसिएशन' का वार्षिकोत्सव इंपीरियल इंस्टीट्यूट के जहाँगीर हॉल में होने वाला था। मदनलाल वहाँ रात्रि के आठ बजे जा पहुँचा। वह संस्था की सचिव कुमारी ऐमा से मिला। मदनलाल के आगमन से वह बहुत प्रसन्न हुई। संस्था के अन्य सदस्यों के साथ भी वह हँस-हँसकर बातचीत करता रहा; पर उसका ध्यान हमेशा प्रमुख द्वार की ओर रहा, जिधर से कर्जन वायली आने वाला था। उत्सव के छुटपुट सांस्कृतिक कार्यक्रम चलते रहे।

रात्रि के दस बजे कर्जन वायली सपत्नीक वहाँ पहुँच गया। उसके पहुँचने से सभा में हर्ष छा गया। उत्सव के कार्यक्रम समाप्त हुए। वह कुछ भारतीय नौजवानों से मिलता रहा। मदनलाल को देखकर उसने हाथ उठाकर 'हैलो' कहा। अवसर का लाभ उठाकर मदनलाल उसके बिलकुल निकट पहुँच गया। वायली

मंच की सीढ़ी पर खड़ा था। मदनलाल ने उससे कुछ कहना चाहा। कर्जन वायली कुछ झुका और उसने अपना कान मदनलाल के मुँह के निकट कर दिया। इससे अच्छा अवसर उसे और कब मिलता। मदनलाल ने झट से अपनी पिस्तौल निकाली और कर्जन वायली के सीने में दो गोलियाँ दाग दीं। कर्जन वायली चीख के साथ सीढ़ियों पर लुढ़क गया। मदनलाल ने तीन गोलियाँ कर्जन वायली के चेहरे पर भी दाग दीं। उसकी एक आँख बाहर निकल पड़ी और चेहरा विकृत हो गया। उसे गिरा हुआ देख कावसजी लालक्का नाम का एक भारतीय पारसी मदनलाल को पकड़ने के लिए लपका। मदनलाल ने पिस्तौल की आखिरी गोली उसके ऊपर खाली कर दी। लालक्का भूमि पर गिर पड़ा। इस बीच कई लोग झपट पड़े और उन्होंने मदनलाल को दबोच लिया। उसके पास एक भरा हुआ रिवॉल्वर तथा दो चाकू और निकले। वह किसी और की जान लेना ही नहीं चाहता था। कर्जन वायली घटनास्थल पर ही मर गया और कावसजी लालक्का की मृत्यु कुछ दिन पश्चात् अस्पताल में हो गई।

इसी बीच पुलिस घटनास्थल पर पहुँच गई और उसने मदनलाल धींगरा को गिरफ्तार कर लिया। मदनलाल इतना शांत था जैसे कुछ हुआ ही नहीं। उसका चश्मा गिर पड़ा था। उसने वह उठाया और पोंछकर आँखों पर चढ़ा लिया। एक डॉक्टर भी बुलाया गया। डॉक्टर ने मदनलाल की धड़कनों और नाड़ी की जाँच की। दोनों की गतियाँ बिलकुल सामान्य पाई गईं। उलटा वह डॉक्टर ही सिर से पैर तक काँप रहा था। गिरफ्तार हो जाने पर मदनलाल ने इतना ही कहा कि मैं कावसजी लालक्का को मारना नहीं चाहता था। स्वयं को बचाने के लिए ही मैंने उसे मारा है। मदनलाल एक लिखित वक्तव्य भी अपनी जेब में रखकर ले गया था। तलाशी के समय वह वक्तव्य पुलिस के हाथों लगा और पुलिस ने उसे कहीं छिपा दिया। मदनलाल ने एक दूरदर्शिता यह की थी कि उस वक्तव्य की एक प्रति उसने सावरकर के पास छोड़ दी थी।

अगले ही दिन लंदन के सभी समाचार-पत्रों में कर्जन वायली की हत्या का समाचार प्रकाशित हो गया। सारा इंग्लैंड स्तब्ध रह गया। इस समाचार को भारत पहुँचने में देर नहीं लगी। देशभक्त भारतीयों और क्रांतिकारियों के वक्ष गर्व से फूल गए। कुछ अंग्रेजपरस्त भारतीयों ने मदनलाल के इस कृत्य की निंदा भी की। स्वयं मदनलाल के पिता ने तार से लंदन समाचार भेजा—

'मैं मदनलाल को अपने पुत्र रूप में अस्वीकार करता हूँ। उसने मेरे नाम को कलंकित किया है।'

मदनलाल के भाई ने भी इसी प्रकार का बयान दिया—

'मदनलाल ने बहुत बड़ा गुनाह किया है। उससे अब मेरा कोई संबंध नहीं है।'

क्या हुआ, जो मदनलाल को स्वयं उसके पिता और भाई ने अस्वीकार कर दिया! करोड़ों देशभक्त भारतीयों ने तो उसे अपनी पूरी श्रद्धा के साथ अपना लिया। सारे संसार में जहाँ-जहाँ भारतीय थे, मदनलाल उन सबका प्यारा बन गया।

लंदन में भी मदनलाल के कृत्य की निंदा करने के लिए कैक्सटन हॉल में ५ जुलाई, १९०९ को एक सभा हुई। विनायक दामोदर सावरकर अपने साथियों के साथ इस सभा में पहुँचे और मंच के बिलकुल निकट ही उन लोगों ने अपने-अपने आसन सँभाले। आगाखाँ ने खड़े होकर अपना प्रस्ताव रखा—

"यह सभा सर्वसम्मति से मदनलाल धींगरा के दुष्कृत्य की घोर निंदा करती है और···"

आगाखाँ अपना वाक्य पूरा भी नहीं कर पाए थे कि मंच के पास से एक आवाज कड़क उठी—

"मैं इस प्रस्ताव का विरोध करता हूँ। इसे सभा का सर्वसम्मत मत नहीं कहा जा सकता। अभी अदालत ने अपना फैसला नहीं दिया है। उसके पहले निंदा का प्रस्ताव पास करना अदालत की तौहीन है।"

लोगों ने विरोध करनेवाले की ओर देखा। विरोध विनायक दामोदर सावरकर ने किया था। उनके समर्थन में उनके साथियों ने हाथ उठाए थे। सावरकर की मुद्रा को देखकर कुछ लोग वहाँ से खिसकने लगे। उन्हें आशंका हुई थी कि कहीं सावरकर भी मदनलाल की तरह कोई कांड न कर बैठें। एक अंग्रेज नौजवान यह बरदाश्त नहीं कर पाया। वह मुक्का तानकर सावरकर की तरफ यह कहता हुआ लपका—

"एक अंग्रेज के मुक्के का स्वाद चखकर देखो।"

यह कहते हुए उसने सावरकर के चेहरे पर जोरदार घूँसा मार दिया। सावरकर का चश्मा टूट गया और मुँह से खून गिरने लगा। सावरकर का क्रांतिकारी साथी तिरुमल आचार्य इसे बरदाश्त नहीं कर पाया। उसके हाथ में एक डंडा था। मुक्का मारनेवाले अंग्रेज को उसने ललकारा—

"एक हिंदुस्तानी के डंडे का भी स्वाद चखकर देखो।"

यह कहते हुए उसने अंग्रेज नौजवान के सिर पर डंडा दे मारा। उसकी खोपड़ी खुल गई। सभा में हंगामा मच गया। जिसको जिधर रास्ता मिला, भाग खड़ा हुआ। मदनलाल के कृत्य के विरुद्ध निंदा का प्रस्ताव पारित नहीं हो सका।

लंदन की हाई कोर्ट में मदनलाल धींगरा के विरुद्ध मुकदमा प्रस्तुत किया

गया। उसने अपने बचाव में कोई रुचि नहीं ली। वह इस प्रकार अदालत में पहुँचा जैसे मुकदमा उसपर नहीं, किसी दूसरे पर चलाया जा रहा हो। उसने अदालत में वही बात दुहराई—

"मैं कावसजी लालक्का को मारना नहीं चाहता था, आत्मरक्षा के क्रम में वह मारा गया है।"

मदनलाल को लंदन की ब्रिक्स्टन जेल में रखा गया। जेल में सावरकर ने उससे भेंट की। मदनलाल ने कहा—

"फाँसी के बाद आप लोग मेरा संस्कार हिंदू पद्धति से करें। मेरा सारा सामान बेचकर जो पैसा प्राप्त हो, वह राष्ट्रीय कोष में जमा कर दें।"

१० जुलाई, १९०९ को मदनलाल को अदालत में फिर प्रस्तुत किया गया। उसने बहुत संक्षिप्त बयान दिया—

"मैंने जो कुछ किया है, वह ठीक ही किया है। अंग्रेज लोगों को भारत को अपने अधिकार में रखने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। यदि जर्मन लोग इंग्लैंड पर अधिकार कर लें तो अंग्रेज लोग वही कार्य करेंगे, जो मैंने किया है। आप लोग मुझे मृत्युदंड दे सकते हैं। मेरी मृत्यु अंग्रेजी शासन के विरुद्ध विद्रोह की आग भड़काने के लिए हवा का काम करेगी।"

उस दिन शाम को निकलनेवाले समाचार-पत्रों ने मदनलाल धींगरा के इस वक्तव्य को प्रकाशित किया।

२५ जुलाई तक मुकदमे की कार्यवाही समाप्त हो गई। उस दिन मुकदमे की कार्यवाही में केवल बीस सेकंड लगे। ज्यूरी की सर्वसम्मत राय पर न्यायाधीश महोदय ने फैसला सुना दिया—मृत्युदंड। मृत्युदंड की तारीख भी १७ अगस्त, १९०९ निश्चित कर दी गई।

यह लिखा जा चुका है कि सर कर्जन वायली को मारने के दिन मदनलाल एक लिखित वक्तव्य अपनी जेब में रखकर ले गया था, जिसे पुलिसवालों ने अपने अधिकार में लेकर गायब कर दिया था। उसका प्रकाशन इंग्लैंड की प्रतिष्ठा के प्रतिकूल होता। अंग्रेजों ने सारे संसार में यह प्रचार कर रखा था कि भारतीय लोग हमारे राज्य में सुखी हैं और वे आजादी प्राप्त करने के कोई प्रयत्न नहीं कर रहे हैं। मदनलाल के वक्तव्य से अंग्रेजों के इस प्रचार की पोल खुल जाती। इसलिए वह वक्तव्य गायब कर दिया गया था।

सावरकर के पास मदनलाल के उस वक्तव्य की एक प्रति थी। उस क्रांतिकारी के मस्तिष्क में एक विचार कौंध गया कि क्या अच्छा हो, यदि फाँसी के पूर्व मदनलाल का वक्तव्य समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो जाए, इससे मरनेवाले के मन

को शांति मिलेगी। सावरकर ने अपने क्रांतिकारी मित्र ज्ञानचंद वर्मा से इस संबंध में विचार-विमर्श किया। वक्तव्य की प्रति लेकर ज्ञानचंद चुपचाप फ्रांस खिसक गया और वहाँ उसकी प्रतियाँ छपवाकर संसार-भर के प्रमुख पत्रों में प्रकाशन के लिए भेज दी गईं। इधर लंदन के एक लोकप्रिय दैनिक 'दि डेली न्यूज' और अन्य देशों के समाचार-पत्रों में यह वक्तव्य प्रकाशित होकर संसार-भर में फैल गया। इंग्लैंड की पुलिस फनफना कर रह गई। उधर जेल में जब मदनलाल को अपना वक्तव्य समाचार-पत्रों में पढ़ने को मिला तो खुशी के मारे अपनी कोठरी में वह नाचने लगा। वक्तव्य इस प्रकार था—

'मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मैंने एक अंग्रेज का खून बहाया है और वह इसलिए बहाया है कि मैं भारतीय देशभक्त नौजवानों को अमानवीय रूप से फाँसी के फंदों पर लटकाए जाने और उन्हें आजन्म कालेपानी की सजा दिए जाने का बदला ले सकूँ।

'इस प्रयत्न में अपनी अंतरात्मा के अतिरिक्त मैंने किसी और से परामर्श नहीं लिया और अपने कर्तव्य के अतिरिक्त किसी अन्य से साँठ-गाँठ नहीं की।

'मेरा विश्वास है कि जिस देश को संगीनों के बल पर दबाकर रखा जाता हो, वह हमेशा ही आजादी की लड़ाई लड़ता रहता है। जिस देश के हथियार छीन लिये गए हों, वह खुली लड़ाई लड़ने की स्थिति में नहीं होता। मैं खुली लड़ाई नहीं लड़ सकता था, इस कारण मैंने आकस्मिक रूप से आक्रमण किया। मुझे बंदूक रखने की मनाही थी, इस कारण मैंने पिस्तौल चलाकर आक्रमण किया।

'हिंदू होने के नाते मैं यह विश्वास करता हूँ कि मेरे देश के प्रति किया गया अपराध ईश्वर का अपमान है। मेरी मातृभूमि का कार्य ही भगवान् राम का कार्य है। मातृभूमि की सेवा ही भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा है। मुझ जैसे धनहीन व बुद्धिहीन व्यक्ति के पास अपने रक्त के अतिरिक्त मातृभूमि को समर्पित करने के लिए और क्या था! इसी कारण मैं मातृवेदी पर अपनी रक्तांजलि अर्पित कर रहा हूँ।

'भारतवर्ष के लोगों को सीखने के लिए इस समय एक ही सबक है और वह यह कि मृत्यु का आलिंगन किस प्रकार किया जाए तथा यह सबक सिखाने का एक ही तरीका है कि स्वयं ही मरकर दिखाया जाए, इसीलिए मैं मरकर दिखा रहा हूँ और अपनी शहादत पर मुझे गर्व है।

'यह पद्धति उस समय तक चलती रहेगी, जब तक पृथ्वी के धरातल पर हिंदू और अंग्रेज जातियों का अस्तित्व है (पराधीनता का यह अस्वाभाविक संबंध समाप्त हो जाए तो अलग बात है)।

'ईश्वर से मेरी एक ही प्रार्थना है कि वह मुझे नया जीवन भी भारत माता की गोद में ही प्रदान करे और मेरा वह जीवन भी भारत माता की आजादी के पवित्र कार्य के लिए समर्पित हो। मेरे जन्म और बलिदान का यह क्रम उस समय तक चलता रहे, जब तक भारत माता आजाद न हो जाए। मेरी मातृभूमि की आजादी मानवता के हित चिंतन और परमपिता परमेश्वर के गौरव संवर्द्धन के लिए होगी।

मदनलाल धींगरा।'

समाचार-पत्रों में मदनलाल के इस वक्तव्य को पढ़कर दुनिया की आँखें खुल गईं। उसे मालूम हो गया कि भारतीय नौजवान अपने देश की आजादी की लड़ाई लड़ रहे हैं और मातृवेदी पर वे अपने प्राणों की आहुतियाँ अर्पित कर रहे हैं।

१७ अगस्त, १९०९ का दिन आ पहुँचा। इंग्लैंड में रहनेवाले भारतीय अपने देश के इस क्रांतिवीर को खो देने के विचार से दुःखी थे। उस दिन सभी ने उपवास रखने का संकल्प किया। उनमें से बहुत से लोग सिसकियाँ भर-भरकर रो रहे थे। उन लोगों को अधिक पश्चात्ताप हो रहा था, जो मदनलाल के बदले हुए व्यवहार का अर्थ नहीं समझ पाए थे और उसे बुरा-भला कहने लगे थे।

सावरकर और उनके साथी क्रांतिकारी १७ अगस्त को सक्रिय हो उठे थे। उन लोगों ने एक परचा छपवा लिया था, जिसकी प्रतियाँ चौराहों पर खड़े होकर वे हर आने-जानेवाले को बाँट रहे थे और उसे पढ़ने का आग्रह कर रहे थे। उस परचे पर लिखा था—

'आज सन् १९०९ का १७ अगस्त का दिन है। इस दिन का महत्त्व प्रत्येक देशभक्त भारतीय के वक्ष पर खून से लिखा जाना चहिए। आज के दिन ही हमारा सर्वोत्तम मित्र और सर्वोत्कृष्ट देशभक्त मदनलाल धींगरा पैंटोनविले जेल में फाँसी पर लटकाया जाएगा। उसकी आत्मा हमारा पथ-प्रदर्शन करेगी। उसका पवित्र नाम हमारे इतिहास के पृष्ठों को अलंकृत करेगा। हमारे दुश्मन हमारे मित्र का वध कर रहे हैं; लेकिन उन्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि वे हमारी आजादी की लड़ाई को समाप्त नहीं कर सकते।'

और सचमुच ही १७ अगस्त, १९०९ को भारत माता के एक महान् सपूत मदनलाल धींगरा को ब्रिटिश हुकूमत ने लंदन की पैंटोनविले जेल में फाँसी के फंदे पर झुला दिया।

हम सोचें कि मदनलाल धींगरा के वंशधर हम लोग उस मातृभूमि के कितने काम आ रहे हैं, जिस मातृभूमि के सम्मान की रक्षा के लिए उसने अपने प्राणों की भेंट चढ़ाकर अकिंचनता का अनुभव किया।

□

★ मौलवी महमूद-उल-हसन

★ मौलाना मोहम्मद बरकतुल्ला

मौलाना मोहम्मद बरकतुल्ला

एक मुसलिम नौजवान सन् १८९७ में भारत से इंग्लैंड पहुँचा। उसका नाम मौलाना मोहम्मद बरकतुल्ला था और वह भोपाल के रहनेवाले शेख कुदरतुल्ला का पुत्र था। कुछ दिन खंडवा और बंबई में अध्यापन-कार्य करने के उपरांत मोहम्मद बरकतुल्ला इंग्लैंड पहुँच गया। कुछ पत्रिकाओं के संपादन में उसने सहयोग दिया। उसके लिखे हुए लेख 'लंदन टाइम्स' में छपने लगे और उसकी ख्याति इंग्लैंड में फैल गई। अंततोगत्वा वह लिवरपूल विश्वविद्यालय के ओरिएंटल कॉलेज में प्रोफेसर हो गया।

मोहम्मद बरकतुल्ला क्रांतिकारी खयालों का युवक था। लंदन में जब श्यामजी कृष्ण वर्मा पहुँचे तो उनसे उसके घनिष्ठ संबंध स्थापित हो गए। अफगानिस्तान के राजकुमार सरदार नसरुल्ला खाँ उन दिनों लंदन में रह रहे थे। उनसे भी बरकतुल्ला का परिचय हुआ और अपने बाद के जीवन में इस परिचय का उसे बहुत लाभ मिला।

इंग्लैंड में रहते हुए मोहम्मद बरकतुल्ला ने मुसलिम भाईचारे के लिए बहुत कार्य किया। वे भारत के पक्ष को लेकर ही मुसलमानों को संगठित करना चाहते थे। उनकी राष्ट्रवादी विचारधारा को इंग्लैंड में खुलकर सामने आने के लिए यथेष्ट अवसर नहीं मिल रहे थे। उनके ऊपर निगरानी भी रखी जाने लगी थी। सात वर्ष इंग्लैंड में रहने के पश्चात् अमेरिका के लोग उनके विचारों से प्रभावित होने लगे थे और उन्हें अमेरिका बुलाने में अमेरिकनों का ही हाथ था।

अमेरिका में मोहम्मद बरकतुल्ला को एक महाराष्ट्रियन क्रिश्चियन मि. सैमुअल लुकास जोशी का सहयोग प्राप्त हो गया और दोनों ने मिलकर 'पान आर्यन एसोसिएशन' नाम से एक समिति का गठन किया। इसका उद्देश्य बाहर फैली हुई

भारतीय प्रतिभाओं का संगठन करके भारत के लिए उनका उपयोग करना था। आयरलैंड के कुछ क्रांतिकारी भी उन दिनों अमेरिका में रह रहे थे। वे भी ब्रिटिश दासता से अपने देश को मुक्त कराना चाहते थे। वे भी बरकतुल्ला को उनके ध्येय में सहयोग प्रदान करने लगे।

भारत की एक महान् क्रांतिकारिणी मदाम भीकाजी कामा उन दिनों फ्रांस में रहकर भारतीय क्रांतिकारियों को अपने यहाँ प्रश्रय दे रही थीं और वे स्वयं भी भारत की आजादी के लिए संसार के विभिन्न देशों में घूम-घूमकर वातावरण तैयार कर रही थीं। इसी क्रम में वे अमेरिका पहुँचीं और न्यूयार्क में मोहम्मद बरकतुल्ला से उनकी भेंट हुई। न्यूयार्क में उन्होंने कई जोशीले भाषण दिए और अंग्रेजी बदनीयती का पर्दाफाश किया। मोहम्मद बरकतुल्ला निरंतर उनके साथ रहे। मदाम कामा के क्रांतिकारी विचारों से वे बहुत प्रभावित हुए।

न्यूयार्क से निकलनेवाले पत्र-पत्रिकाओं में बरकतुल्ला के लेख छपने लगे और भारत की आजादी की वे जोरदार वकालत करने लगे। उनकी ख्याति भारत में भी पहुँच रही थी। भारत में उत्तर प्रदेश के सहारनपुर नगर के निकट देवबंद में एक मुसलिम विद्यालय था, जिसके प्रधानाचार्य महमूद-उल-हसन बहुत विद्वान् तथा प्रसिद्ध व्यक्ति थे और उनके शिष्यगण कई देशों में फैलकर गोपनीय रूप से भारत की आजादी के लिए प्रयत्न कर रहे थे। अफगानिस्तान के राजघराने पर भी उनका काफी प्रभाव था। महमूद-उल-हसन साहब ने जब मोहम्मद बरकतुल्ला की ख्याति सुनी तो एक पत्र लिखकर चाहा कि वे जापान पहुँचनेवाले एक भारतीय मिशन के सदस्य के रूप में जांपान पहुँचें और वहाँ भारत की आजादी के लिए वातावरण का निर्माण करें। इस अनुरोध को स्वीकार करके मोहम्मद बरकतुल्ला न्यूयार्क से फरवरी १९०९ में टोकियो के लिए प्रस्थित हो गए।

भारतीय मिशन के सदस्य के रूप में मोहम्मद बरकतुल्ला ने जापान में जो कार्य किया, वह तो किया ही, उसके अतिरिक्त भी उन्होंने अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व से जापानियों को इतना अधिक प्रभावित किया कि उन्हें टोकियो विश्वविद्यालय में हिंदुस्तानी का प्रोफेसर नियुक्त किया गया। जापान में उन्होंने 'इसलामिक बिरादराना' नाम की एक समिति का गठन किया और इसी नाम का एक समाचार-पत्र निकाला। अंग्रेजों के खिलाफ उनकी घृणा इतनी अधिक बढ़ गई थी कि वे स्वयं तो उनके विरुद्ध लिखते ही थे, यदि और कोई भी उनके विरुद्ध लिखता था तो वे उसका उद्धरण अपने पत्र 'इसलामिक बिरादराना' में करते थे। 'स्पेक्टेटर' से एक अंश जो उन्होंने उद्धृत किया था, इस प्रकार था—

'एक रोमन कवि ने, जो ईसा से दो सौ वर्ष पहले हुआ था, अपने समय

के एंग्लो सेक्शन को समुद्री भेड़िया बताया, जिसका घर समुद्र है और जिसका मित्र तूफान है तथा जो विश्व की लूट-खसोट पर आश्रित है। दो हजार वर्ष बीत गए, पर इस जाति की लुटेरी भावना कम नहीं हुई। यदि इसमें कुछ और जुड़ गया तो यही बात कि पाखंड परिष्कृत हो गया है; जिसने बर्बरता की धार को और तेज कर दिया है।'

भला यह कैसे संभव था कि अंग्रेज लोग अपनी इतनी तीखी आलोचना को प्रसारित होते देख मोहम्मद बरकतुल्ला के खिलाफ कोई कदम न उठाते! उन्होंने जापान सरकार पर जोर डालना प्रारंभ किया कि वह बरकतुल्ला को नौकरी से निकाल दे। उन्होंने 'इसलामिक बिरादराना' के भारत प्रवेश पर भी प्रतिबंध लगा दिया। मोहम्मद बरकतुल्ला ने यह सब होते देख अपने एक जापानी शिष्य की सहायता से ऐसा प्रबंध किया कि एक दूसरा पत्र 'अल-इस्लाम' निकालकर उसे चारों ओर प्रसारित करने लगे। ब्रिटिश हुकूमत का दबाव जापानी सरकार पर निरंतर पड़ रहा था कि वह मोहम्मद बरकतुल्ला की नौकरी समाप्त करके उसे जापान से बाहर निकाल दे। उन दिनों इंग्लैंड और जापान इस प्रकार संधिसूत्र में बँधे हुए थे कि वे एक-दूसरे के शत्रुओं को प्रश्रय नहीं देंगे। जापान सरकार मोहम्मद बरकतुल्ला को निकालने के लिए विवश हो गई।

मोहम्मद बरकतुल्ला ने अपना प्रबंध पहले से ही कर रखा था। वे सानफ्रांसिस्को स्थित 'युगांतर आश्रम' के गदर पार्टी के लोगों के संपर्क में थे और 'गदर' की प्रतियाँ उन्हें मिलती रहती थीं। गदर पार्टी के एक सदस्य भगवानसिंह स्वयं जापान पहुँचे और बरकतुल्ला के साथ मिलकर उन्होंने कुछ योजना बनाई। दोनों वैंकोवर जानेवाले 'कामागाटामारू' जहाज के भीतर क्रांतिकारियों से मिले और उन्हें प्रोत्साहित किया। भगवानसिंह के साथ ही बरकतुल्ला ने जापान छोड़ा और २३ मई, १९१४ को वे दोनों सानफ्रांसिस्को जा पहुँचे। उसी दिन 'कामागाटामारू' जहाज भी भारतीय विप्लववादियों को लेकर वैंकोवर पहुँचा।

भगवानसिंह तथा मोहम्मद बरकतुल्ला ने 'गदर पार्टी' को अधिक संगठित तथा सशक्त बनाया। वे 'गदर' पत्र के संपादकीय विभाग में कार्य करने लगे। सड़कों पर पहुँचकर आने-जानेवालों को भी वे उसकी प्रतियाँ बेचने लगे। उन दोनों ने मिलकर कैलिफोर्निया में भारतीयों की अनेक सभाओं में ओजस्वी भाषण दिए और विद्रोह फैलाने के लिए भारत पहुँचने की प्रेरणा दी। प्रवासी भारतीय अपने-अपने काम-धंधे और विद्याध्ययन छोड़कर मातृभूमि की मुक्ति के लिए भारत पहुँचने लगे।

बरकतुल्ला के क्रांतिकारी विचारों का प्रसार बहुत तेजी के साथ हो रहा था।

उनकी ख्याति जर्मनी में भी पहुँची। जर्मनी में उन दिनों भारत के प्रसिद्ध क्रांतिकारी राजा महेंद्रप्रताप रहकर भारत की मुक्ति के लिए जर्मन सहयोग प्राप्त करने में लगे हुए थे। वे एक मिशन अफगानिस्तान ले जाने वाले थे। उन्होंने भारतीय मुक्ति मिशन का सदस्य बनने के लिए बरकतुल्ला को आमंत्रित किया। गदर पार्टी के लोगों से अनुमति लेकर, बरकतुल्ला जर्मनी पहुँचकर बर्लिन में १० फरवरी, १९१५ को राजा महेंद्रप्रताप से जा मिले।

बर्लिन भी उन दिनों भारतीय क्रांतिकारियों का अड्डा बना हुआ था। वहाँ एक भारतीय राष्ट्रीय पार्टी कार्य कर रही थी, जिसके अध्यक्ष भारत के प्रसिद्ध क्रांतिकारी वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय थे। पार्टी के अन्य महत्त्वपूर्ण सदस्यों में से लाला हरदयाल, द्वारकानाथ दास, भूपेंद्रनाथ दत्त, हरंबलाल गुप्ता, जोधसिंह तथा महाजन आदि थे। इस पार्टी के कुछ सदस्यों को तथा मोहम्मद बरकतुल्ला और राजा महेंद्रप्रताप को लेकर बर्लिन समिति का गठन हुआ। जर्मन सरकार से उनके कुछ अनुबंध भी हुए। राजा महेंद्रप्रताप ने जर्मनी के सम्राट् कैसर विलहेल्म द्वितीय से भेंट की और उन्हें इस बात के लिए राजी किया कि वे भारतीय क्रांतिकारियों की सब तरह से सहायता करें। अभी तक भारतीय राष्ट्रीय पार्टी जर्मन हथियार केवल बंगाल भेजने की ही योजना बना रही थी। बरकतुल्ला ने उसे बताया कि गदर पार्टी का संगठन भी अत्यंत दृढ़ और उतना ही क्रांतिकारी है, अत: विप्लव फैलाने के लिए पंजाब पहुँचानेवाले गदर पार्टी के सदस्यों को भी हथियारों से लैस किया जाए। भारतीय राष्ट्रीय पार्टी इस कार्य के लिए सहमत हुई।

राजा महेंद्रप्रताप के नेतृत्व में एक जर्मन मिशन अफगानिस्तान भेजा गया, जिसमें मौलाना मोहम्मद बरकतुल्ला के अतिरिक्त कुछ जर्मन और ऑस्ट्रियाई सदस्य भी थे। यह मिशन १९१५ के पूर्वार्द्ध में कुस्तुनतुनिया पहुँचा और राजा महेंद्रप्रताप तथा बरकतुल्ला की भेंट तुर्की के प्रधानमंत्री सुल्तान हिलमी पाशा तथा युद्धमंत्री गाजी अनवर पाशा के साथ कराई गई। तुर्की से भारत के क्रांतिकारी मौलाना ओबीदुल्ला सिंधी इस मिशन के साथ चले और यह मिशन १९१५ के अक्तूबर महीने में काबुल पहुँच गया।

अफगानिस्तान की गद्दी पर उस समय अमीर हबीबुल्ला खाँ था। राजा महेंद्रप्रताप और मौलाना बरकतुल्ला की भेंट अमीर हबीबुल्ला खाँ के साथ हुई। इस भेंट में राजा महेंद्रप्रताप की योजना के अनुसार, अफगानिस्तान में एक 'अस्थायी आजाद हिंद सरकार' की स्थापना २९ अक्तूबर, १९१५ को की गई; जिसके राष्ट्रपति राजा महेंद्रप्रताप, प्रधानमंत्री मौलाना मोहम्मद बरकतुल्ला और गृहमंत्री मौलाना ओबीदुल्ला सिंधी थे। विदेशमंत्री डॉ. चंपक रमन पिल्लई थे। इस अस्थायी

आजाद हिंद सरकार ने अपनी एक 'आजाद हिंद फौज' भी बनाई, जिसमें सरहदी पठानों को भी सम्मिलित किया गया था। आजाद हिंद फौज के सैनिकों की संख्या छह हजार तक पहुँच गई थी। इस फौज ने सरहद के मार्ग से भारत में अंग्रेजी राज्य पर आक्रमण भी किया था; पर अंग्रेजों ने इस आक्रमण को विफल कर दिया। बहुत से सैनिक मारे गए और बहुतों को फाँसी के दंड मिले।

राजा महेंद्रप्रताप और मौलाना मोहम्मद बरकतुल्ला ने अफगान सरकार द्वारा अपना काम बनते न देखकर दो व्यक्तियों का एक मिशन रूस भेजा। इस मिशन में खुशी मोहम्मद तथा डॉ. मथुरासिंह को छद्म नाम से रूस भेजा गया। राजा महेंद्रप्रताप और बरकतुल्ला ने सोने की ठोस चादर पर पत्र लिखकर रूस के जार के पास भेजा। रूस का जार अंग्रेजों के प्रभाव में था। उसने इस मिशन के दोनों सदस्यों को गिरफ्तार करा लिया और डॉ. मथुरासिंह को अंग्रेजों को सौंप दिया गया। अंग्रेजों ने लाहौर में उन्हें फाँसी दे दी।

अब राजा महेंद्रप्रताप एवं मोहम्मद बरकतुल्ला ने स्वयं ही एक डेलीगेशन के रूप में रूस पहुँचने की योजना बनाई और वे वहाँ जा पहुँचे। इन दोनों भारतीय क्रांतिकारियों ने रूस के जन नेता लेनिन से भेंट करके भारत की आजादी के लिए उनकी सहानुभूति अर्जित की। लेनिन बरकतुल्ला से बहुत प्रभावित हुए और उनका उपयोग भी उन्होंने रूस के मुसलमानों को संगठित करने के लिए किया। 'पेट्रोग्राड प्रावदा' के संवाददाता के साथ बातचीत करते हुए मौलाना मोहम्मद बरकतुल्ला ने कहा था—

"मैं न कम्युनिस्ट हूँ और न सोशलिस्ट, पर अभी मेरा राजनीतिक कार्यक्रम एशिया से अंग्रेजों को भगाने का है। मैं एशिया में यूरोपीय पूँजीवाद का अप्रतिम दुश्मन हूँ, जिसका मुख्य प्रतिनिधि अंग्रेज है। इसमें मैं कम्युनिस्टों के साथ सहयोग करना चाहता हूँ और इस संबंध में हम लोग सच्चे सहयोगी हैं।"

बरकतुल्ला सन् १९२२ तक, अर्थात् तीन वर्ष सोवियत रूस में रहे। वहाँ से वे बर्लिन चले गए और वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय को भारत-मुक्ति के कार्यों में सहयोग देने लगे। बर्लिन में बरकतुल्ला ने 'इंडिया इंडिपेंडेंस पार्टी' नाम की संस्था गठित की और भारत की आजादी के लिए सीधा काम करने लगे। कुछ दिन के लिए वे स्विट्जरलैंड और फ्रांस भी गए; पर फ्रांस की सरकार ने अंग्रेजों के दबाव में आकर उन्हें फ्रांस से निष्कासित कर दिया। उन्होंने ब्रसेल्स (बेल्जियम) में साम्राज्यवाद विरोधी लोगों में हिंदुस्तान गदर पार्टी का प्रतिनिधित्व किया। वहाँ पंडित जवाहरलाल नेहरू से उनकी भेंट हुई।

राजा महेंद्रप्रताप मोहम्मद बरकतुल्ला को साथ लेकर सानफ्रांसिस्को पहुँचे

और हिंदुस्तान गदर पार्टी ने इन दोनों क्रांतिकारी नेताओं का स्वागत किया। निरंतर संघर्ष और मधुमेह की बीमारी के कारण मौलाना मोहम्मद बरकतुल्ला काफी अशक्त हो गए थे। जब वे स्वागत के उत्तर में भाषण देने खड़े हुए तो उनसे बोला नहीं गया। वे इतना ही कह पाए—

"महेंद्रप्रताप बोलेंगे।"

मौलाना का स्वास्थ्य तेजी के साथ गिरता गया। २७ सितंबर, १९२७ को भारत की आजादी की कामना करते हुए उस क्रांतिकारी ने अपने जीवन की अंतिम साँस ली। इस प्रकार मौलाना मोहम्मद बरकतुल्ला के रूप में भारत का एक ऐसा महान् सपूत उठ गया, जो भारत की आजादी के लिए जीवन-भर संघर्ष करते हुए भी थका नहीं और भारत की आजादी के प्रति जिसका विश्वास कभी हिला नहीं। □

★ राजा महेंद्रप्रताप

राजा महेंद्रप्रताप

आगरा से मथुरा जानेवाली ट्रेन के एक डिब्बे में यात्रियों के बीच देश की राजनीतिक स्थिति पर बातचीत चल रही थी। वे प्रथम विश्वयुद्ध के दिन थे। यूरोप में इंग्लैंड और जर्मनी में ठन गई थी। एक यात्री का कथन था—

"इस समय अपने पूरे हौसले से जर्मन सेनाएँ जिस तेजी के साथ आगे हैं, इससे तो लगता है कि इंग्लैंड को परास्त कर देंगी।"

दूसरे यात्री ने टिप्पणी की—

"जर्मन सेनाओं की यह तेजी हमेशा कायम रहनेवाली नहीं है। अंग्रेज लोग संसार के सबसे ज्यादा चालाक राजनीतिज्ञ हैं। उनसे पार पाना बड़ा मुश्किल है।"

एक तीसरा यात्री, जो अभी तक इन चर्चाओं को केवल सुन ही रहा था, अब खामोश नहीं रह सका और उसने अपना अभिमत इस प्रकार प्रकट किया—

"जर्मनी की यह तेजी कायम रहे या न रहे, युद्ध में इसकी विजय हो या पराजय, वह तो बहुत आगे की बात है; अभी जो हमें साफ दिखाई दे रहा है, वह

यह है कि भारतवर्ष को स्वाधीन होने का यह बहुत अच्छा अवसर है।''

इस नए यात्री की टिप्पणी सुनकर शेष यात्री कुछ चौंककर उसकी ओर देखने लगे। एक ने तो उससे सवाल कर ही दिया—

''जनाब! क्या आप बताएँगे कि इस युद्ध के दौरान भारत को स्वाधीन होने के अवसर कैसे प्राप्त हो सकते हैं?''

उसे उत्तर मिला—

''जो देश अंग्रेजों के खिलाफ लड़ रहे हैं, हम उनसे साँठ-गाँठ कर लें। राजनीति का तो बना-बनाया सिद्धांत है कि दुश्मन का दुश्मन अपना दोस्त होता है। ऐसे मौके पर अगर हम युद्ध में अंग्रेजों को मदद देने के स्थान पर उनके खिलाफ बगावत कर दें तो अंग्रेज लोग दो पाटों के बीच पिस जाएँगे और हमारी आजादी का रास्ता साफ हो जाएगा।''

नए वक्ता के इस कथन को सुनकर शेष यात्री आश्चर्य के साथ उसकी तरफ देखते रह गए। दो-एक यात्री तो घूर-घूरकर उसकी तरफ देखकर उसका नाम-धाम पूछने लगे। वक्ता भी कच्चा खिलाड़ी नहीं था। वह समझ गया कि नाम-धाम पूछनेवाले लोग ब्रिटिश गुप्तचर लगते हैं। उसने उन्हें अपना सही नाम न बताकर गलत पता-ठिकाना बता दिया। उसे जाना तो मथुरा था, पर दो स्टेशन पहले ही वह उतर गया।

प्रथम विश्वयुद्ध के दिनों में भारत की आजादी के इस स्वप्नद्रष्टा का नाम राजा महेंद्रप्रताप था। राजा महेंद्रप्रताप वृंदावन के राजा थे। युद्ध की स्थिति का भारत के पक्ष में पूरा लाभ उठाने के लिए उन्होंने एक दिन भी व्यर्थ खोना उचित नहीं समझा। अपनी निजी संपत्ति में से जो कुछ वे बेच सकते थे, वह बेचकर थोड़ा धन जमा किया और बंबई पहुँचकर जहाज द्वारा यूरोप के लिए प्रस्थान कर दिया। उन्होंने यह व्यवस्था भी कर ली कि जब आवश्यकता पड़े, उन्हें यूरोप में धन प्राप्त होता रहे।

राजा महेंद्रप्रताप फ्रांस और स्विट्जरलैंड होते हुए फरवरी १९१५ में जर्मनी पहुँच गए।

जर्मनी उन दिनों भारतीय क्रांतिकारियों का अड्डा बना हुआ था। भारतीयों द्वारा निर्मित 'बर्लिन समिति' भारत की आजादी के लिए अच्छी तरह से कार्य कर रही थी। उसकी प्रेरणा से जर्मन सरकार जहाजों में भर-भरकर हथियार और काफी धन भारत भेज रही थी, जिससे अंग्रेजों के विरुद्ध बगावत की आग भड़काई जा सके। भारतीय क्रांतिकारियों में से उस समय जर्मनी में लाला हरदयाल का अच्छा प्रभाव था।

लाला हरदयाल की ख्याति राजा महेंद्रप्रताप ने सुन रखी थी। जर्मनी पहुँचकर राजा महेंद्रप्रताप उनसे मिले। यह दो महान् क्रांतिकारियों का मिलन था। लाला हरदयाल के माध्यम से राजा महेंद्रप्रताप को जर्मनी के सम्राट् कैसर विलहेल्म से भेंट करने में सफलता मिली। शेष काम उनका खुद का था। उन्होंने कैसर पर अपना अच्छा रंग चढ़ा दिया।

राजा महेंद्रप्रताप यह समझते थे कि जर्मनी की सीधी सहायता से भारत को अधिक लाभ होने वाला नहीं है; क्योंकि एक तो भारत जर्मनी से बहुत दूर है और दूसरी बात यह कि जो जर्मन जहाज हथियार भर-भरकर भारत जा रहे थे, वे या तो अंग्रेजों द्वारा पकड़े जा रहे थे या नष्ट किए जा रहे थे। राजाजी को यह समझते भी देर नहीं लगी कि जर्मनी जो भी सहायता देगा, उसके बदले में भारत से कुछ हिस्सा भी माँगेगा। इन सब बातों को सोचते हुए राजा महेंद्रप्रताप ने जर्मनी के सम्राट् कैसर के सामने यह प्रस्ताव रखा कि जर्मनी अफगानिस्तान के ऊपर अपने प्रभाव का उपयोग करके उसे राजी करे कि वहाँ आजाद हिंद सरकार कायम की जाए, जो भारत की आजादी के लिए सक्रिय कार्य करे। भारत और अफगानिस्तान की सीमाएँ मिली होने के कारण अफगानिस्तान का उपयोग भारत में छलाँग लगाने के लिए किया जा सकता था। कैसर राजा महेंद्रप्रताप के इस प्रस्ताव से पूर्णरूप से सहमत हो गया और परिणामस्वरूप अफगानिस्तान के अमीर के पास भेजे जाने के लिए एक 'इंडो-जर्मन मिशन' का निर्माण हुआ, जिसमें भारतीयों के अतिरिक्त जर्मन सदस्य भी थे। कैसर ने राजा महेंद्रप्रताप को अफगानिस्तान के अमीर के नाम पत्र तथा कुछ नक्शें आदि दिए। खर्च के लिए काफी धनराशि भी राजा महेंद्रप्रताप को दी गई। राजा महेंद्रप्रताप के साथ जर्मनी से भारत के महान् क्रांतिकारी मौलाना मोहम्मद बरकतुल्ला भी भेजे गए। ये बरकतुल्ला भोपाल के रहनेवाले थे और कई देशों में घूमते हुए जर्मनी पहुँच गए थे।

इंडो-जर्मन मिशन में सदस्यों की संख्या काफी हो गई थी, इसलिए राजा महेंद्रप्रताप ने अलग-अलग समूहों को भिन्न-भिन्न मार्गों से अफगानिस्तान पहुँचने के लिए प्रेरित किया। इसमें उनकी एक दूरदर्शिता यह भी थी कि ये सदस्य जिन देशों में से होकर जाने वाले थे, वहाँ भारत के पक्ष में वातावरण निर्मित होने के काफी अच्छे अवसर थे। राजा महेंद्रप्रताप ने दूसरी दूरदर्शिता यह की थी कि जो पत्र और नक्शे आदि उनको दिए गए थे, उनकी फोटोकॉपियाँ भी उन्होंने करा ली थीं। कुछ भारतीय नरेशों के नाम भी कैसर ने पत्र दिए थे।

राजा महेंद्रप्रताप स्वयं विएना के मार्ग से चले। विएना में उन्होंने मिस्र के पदच्युत बादशाह खेदीव अब्बास हिलमी से भेंट की। वहाँ से वे बुखारेस्ट, सोफिया

और एड्रियानोपल होते हुए तुर्क राज्य में प्रविष्ट होकर कुस्तुनतुनिया पहुँच गए। तुर्की में राजा महेंद्रप्रताप का अच्छा आदर-सत्कार हुआ और कुस्तुनतुनिया में उन्होंने वहाँ के सभी बड़े-बड़े राजनीतिक एवं धार्मिक नेताओं से भेंट की। सभी ने उन्हें भारत की आजादी के अभियान में सहयोग देने का वचन दिया।

राजा महेंद्रप्रताप की यह यात्रा निरापद नहीं थी। वे मई १९१५ में कुस्तुनतुनिया से रवाना हुए। अंग्रेज जासूस उनके पीछे पड़ गए थे, जो उनकी गतिविधियों पर नजर रखे हुए थे और उनकी सूचनाएँ भारत की ब्रिटिश हुकूमत के पास भी भेज रहे थे। बगदाद से आगे की यात्रा में राजा महेंद्रप्रताप को बहुत अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। रास्ता पहाड़ी और जंगली था। एक बार तो डाकुओं ने राजाजी के दल पर आक्रमण कर दिया। राजाजी के साथी इधर-उधर भागने के क्रम में लूट लिये गए; पर राजाजी ने डाकुओं का मुकाबला करके अपने पास का धन और नक्शे आदि बचा लिये।

सितंबर १९१५ के प्रारंभ में ही राजा महेंद्रप्रताप अफगान सीमा में प्रविष्ट हो गए। ६ सितंबर को पराह के अफगानों ने उनका भव्य स्वागत किया। हिरात के गवर्नर की ओर से भी उनका स्वागत किया गया।

अंततोगत्वा अफगानिस्तान की राजधानी काबुल पहुँचकर उन्होंने वहाँ के अमीर हबीबुल्ला खाँ से भेंट की और जर्मनी, तुर्की तथा अन्य देशों से लाए हुए पत्र एवं संदेश उनको दिए।

अफगानिस्तान में उस समय हबीबुल्ला खाँ अमीर था। राजा महेंद्रप्रताप ने अपनी सारी योजना उसके सामने रखी। वह राजा महेंद्रप्रताप एवं मौलाना मोहम्मद बरकतुल्ला के विचारों से सहमत हुआ और इंडो-जर्मन मिशन के तुर्की के सदस्यों ने भी उसपर प्रभाव डाला। वह अफगानिस्तान में 'अस्थायी आजाद हिंद सरकार' की स्थापना के लिए सहमत हो गया, पर अफगानिस्तान की ओर से भारत की अंग्रेज सरकार के विरुद्ध युद्ध घोषित करने की बात टालता रहा। भारत की पहली स्वाधीन सरकार की स्थापना अफगानिस्तान में २९ अक्तूबर, १९१५ को हुई। इस 'अस्थायी आजाद हिंद सरकार' के प्रथम राष्ट्रपति राजा महेंद्रप्रताप और प्रथम प्रधानमंत्री मौलाना मोहम्मद बरकतुल्ला थे। मौलाना ओबीदुल्ला सिंधी को गृहमंत्री बनाया गया। विदेशमंत्री बनाए गए डॉ. चंपक रमन पिल्लई। डॉ. मथुरासिंह को भी मंत्रिपरिषद् में सम्मिलित किया गया। इस 'अस्थायी आजाद हिंद सरकार' ने अफगानिस्तान में प्रथम 'आजाद हिंद फौज' का भी गठन किया, जिसकी संख्या लगभग छह हजार तक पहुँच गई थी।

अफगानिस्तान का अमीर हबीबुल्ला खाँ दोहरी चाल चल रहा था। इधर तो

उसने आजाद हिंद सरकार की स्थापना करा दी थी और उधर अंग्रेजों से मिला हुआ था। वह राजा महेंद्रप्रताप एवं उनकी सरकार की गतिविधियों की सूचनाएँ अंग्रेजों के पास भेजता रहता था। अंग्रेजों का मित्र होने के कारण ही वह अफगानिस्तान की ओर से भारत की अंग्रेज सरकार के विरुद्ध युद्ध की घोषणा नहीं कर रहा था। यदि उसका वश चलता तो वह भारत के इन क्रांतिकारियों को गिरफ्तार करके अंग्रेजों के सुपुर्द कर देता। इन क्रांतिकारियों ने अफगानिस्तान के जन-जीवन में अपनी घुसपैठ कर रखी थी। स्वयं हबीबुल्ला खाँ का पुत्र राजकुमार अमानुल्ला खाँ भारतीय क्रांतिकारियों का अच्छा मित्र था। अमीर का छोटा भाई नसरुल्ला खाँ भी इन लोगों के साथ था। अफगानिस्तान की राजनीतिक पार्टी 'जमायते-सियासिया' के सदस्य भी भारतीयों के मित्र थे। अफगानिस्तान के कमांडर इन चीफ जनरल नादिर खाँ की सहानुभूति भी इनके साथ थी और यही कारण था कि अमीर हबीबुल्ला खाँ की इनके विरुद्ध कुछ चल नहीं रही थी। आजाद हिंद सरकार की मंत्रिपरिषद् के सदस्य डॉ. मथुरासिंह तो काबुल के चीफ़ मेडिकल ऑफीसर भी नियुक्त किए गए थे।

अफगानिस्तान स्थित 'अस्थायी आजाद हिंद सरकार' ने एक ओर तो तुर्की के माध्यम से भारत की आजादी के प्रयत्न जारी रखे और दूसरी ओर उसने रूस से भी संबंध जोड़ने के प्रयत्न किए। राजा महेंद्रप्रताप की प्रेरणा से एक मिशन रूस के जार के पास भेजा गया। इस मिशन में डॉ. मथुरासिंह और खुशी मोहम्मद (छद्म नाम से) सम्मिलित थे। जार के नाम भेजा गया पत्र सोने की ठोस चादर के ऊपर अंकित था।

उस समय रूस में जारशाही कायम थी। रूस के जार और अंग्रेजों के बीच मित्रता के संबंध थे। यही कारण था कि इस भारतीय मिशन को रूस में कोई सहयोग नहीं मिला। मिशन के सदस्यों को ताशकंद में गिरफ्तार करके अंग्रेजों को सौंप दिया गया। डॉ. मथुरासिंह को भारत पहुँचा दिया गया। वहाँ जाकर मुकदमा चलाया गया और उन्हें फाँसी के फंदे पर झुला दिया गया।

निराशा के बाद निराशा हाथ लगने पर भी राजा महेंद्रप्रताप अपने प्रयत्न नहीं छोड़ रहे थे। उनके द्वारा बनाई गई आजाद हिंद फौज ने कबाइली इलाके में प्रवेश करके भारत के अंग्रेजी प्रशासन पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेजी हुकूमत पर यह एक बहुत बड़ा आघात था; पर उसके सौभाग्य से उसी समय यूरोप के मोरचे पर जर्मनी की पराजय होने लगी। इसका परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजों के हौसले बढ़ गए और अपने मित्र देश जर्मनी की पराजय के कारण अस्थायी आजाद हिंद सरकार के हाथ विफलता ही लगी।

स्थितियों ने राजा महेंद्रप्रताप को फिर बर्लिन जाने के लिए विवश किया।

बर्लिन पहुँचकर उन्होंने जर्मन सम्राट् कैसर के सामने प्रस्ताव रखा कि भारत स्थित अंग्रेजी हुकूमत पर आक्रमण करने के लिए एक अंतरराष्ट्रीय समाजवादी सेना गठित की जाए, जिसमें भारतीयों और अफगानियों के अतिरिक्त जर्मन एवं रूसी सैनिक भी सम्मिलित हों। कैसर को राजा महेंद्रप्रताप का यह विचार पसंद नहीं आया और उनकी योजना क्रियान्वित नहीं हो सकी। उसके पश्चात् वे कुस्तुनतुनिया और बुडापेस्ट में अपने 'प्रेम-धर्म' का प्रचार करने लगे।

प्रथम महायुद्ध समाप्त होने के पश्चात् राजा महेंद्रप्रताप रूस पहुँच गए। रूस में उस समय तक क्रांति हो चुकी थी और जारशाही का तख्ता पलट दिया गया था। १९१८ में जर्मनी होते हुए वे रूस पहुँचे थे। रूस के महान् नेता लेनिन से उनकी मित्रता स्थापित हुई। लेनिन ने उन्हें परामर्श दिया कि धर्म-प्रचार के द्वारा स्वाधीनता के प्रयास करने के स्थान पर वे भारत वापस जाएँ और वहाँ वर्णभेद तथा सांप्रदायिकता मिटाकर सामूहिक शक्ति संगठित करके भारत की आजादी के प्रयत्न करें। उन दिनों राजा महेंद्रप्रताप का भारत पहुँचना संभव नहीं था; क्योंकि उनका नाम युद्ध अपराधियों की सूची में सम्मिलित कर लिया गया था और भारत में जहाँ-जहाँ भी उनकी जायदाद थी, वह जब्त कर ली गई थी।

सन् १९१९ में अफगानिस्तान में सत्ता-परिवर्तन हुआ। वहाँ के अमीर हबीबुल्ला खाँ की हत्या कर दी गई और उसका पुत्र अमानुल्ला खाँ अफगानिस्तान का अमीर बना। अमानुल्ला खाँ राजा महेंद्रप्रताप का मित्र था। उसके अमीर बनते ही राजा महेंद्रप्रताप फिर अफगानिस्तान पहुँच गए। वहाँ उन्हें नागरिक अधिकार प्रदान किए गए।

जो बात अमीर हबीबुल्ला खाँ के शासनकाल में संभव नहीं हो सकती थी, वह अमानुल्ला खाँ के शासनकाल में संभव हो गई। राजा महेंद्रप्रताप और तुर्क नेताओं की प्रेरणा से अफगान सेना ने भारत पर आक्रमण कर दिया। अफगान सेनाओं का नेतृत्व जनरल नादिर खाँ कर रहे थे। अंग्रेजों ने इस समय कूटनीति से काम लिया। उन्होंने युद्ध करने के बजाय अफगानिस्तान के साथ संधि कर ली। आक्रमण २९ मई, १९१९ को किया गया और ८ अगस्त, १९१९ को संधि हो गई। राजा महेंद्रप्रताप का यह प्रयत्न भी निष्फल हो गया।

अब राजा महेंद्रप्रताप ने अफगानिस्तान छोड़ दिया और वे हिंदचीन होते हुए चीन पहुँच गए। वे 'प्रेम-धर्म' का तो प्रचार कर ही रहे थे, 'संसार संघ' की कल्पना भी उनके मस्तिष्क में थी।

भारत की आजादी के मार्ग में कठिनाइयाँ उपस्थित होने के कारण राजा महेंद्रप्रताप ने कुछ समय 'संसार संघ' की स्थापना के प्रचार में लगाया। वे एशिया

के उन सभी देशों में घूम रहे थे, जहाँ-जहाँ भारतीय रह रहे थे। भारत के पक्ष में राजनीतिक चेतना का प्रसार भी वे निरंतर कर रहे थे। सन् १९२५ में जापान के कोब नामक स्थान पर भारत के क्रांतिकारी आनंदमोहन सहाय से उन्होंने भारत की आजादी की समस्याओं पर गहरा विचार-विमर्श किया।

जापान में उन दिनों भारत के दो महान् क्रांतिकारी कार्य कर रहे थे—एक थे लॉर्ड हॉर्डिंग्ज बम केस की ख्यातिवाले क्रांतिकारी श्री रासबिहारी बोस, जो टोकियो में रहकर भारत के पक्ष में वातावरण तैयार कर रहे थे और दूसरे क्रांतिकारी थे श्री आनंदमोहन सहाय, जो कोब में रहकर जापानी नौजवानों में उग्रवादी विचारों का संचार करके अंग्रेजों के विरुद्ध उनको भड़का रहे थे। इन्हीं दोनों के प्रयत्नों द्वारा जापान के नागासाकी नगर में सन् १९२६ में 'एशियाई युवक अधिवेशन' का आयोजन किया गया। इस अधिवेशन में भारत के श्री के.आर. सब्बरवाल और विद्याधर बख्शी भी सम्मिलित हुए। राजा महेंद्रप्रताप उस समय मंचूरिया में थे। अधिवेशन का निमंत्रण पाकर वे भी एक जहाज द्वारा नागासाकी के लिए चल पड़े। इस बात से समारोह के आयोजकों को बड़ा दुःख और आश्चर्य हुआ कि जब राजा महेंद्रप्रताप को लानेवाला जहाज नागासाकी पहुँचा तो उन्हें जापानी अधिकारियों ने किनारे पर उतरने की अनुमति नहीं दी। संभवतः ऐसा अंग्रेजों के अनुरोध पर हुआ होगा। राजा महेंद्रप्रताप के पास अफगानिस्तान द्वारा प्रदत्त पासपोर्ट भी था। नागासाकी की पुलिस का स्पष्टीकरण था कि राजा महेंद्रप्रताप को नागासाकी में न उतरने देने का आदेश हमें टोकियो से प्राप्त हुआ है। स्पष्ट है कि टोकियो स्थित अंग्रेज कौंसल की यह करतूत थी। वे लोग राजा महेंद्रप्रताप के प्रभाव को जानते थे।

राजा महेंद्रप्रताप को जब नागासाकी में नहीं उतरने दिया गया तो वे उसी जहाज से जापान के दूसरे नगर ओसाका चले गए। जहाज का गंतव्य ओसाका ही था। कुछ जापानी मित्रों के प्रयत्नों से राजाजी को ओसाका नगर में उतरने की अनुमति मिल गई। केवल जहाज के ठहरने के समय तक ही उन्हें ओसाका में ठहरने की अनुमति मिली थी। ओसाका में वे एक होटल में ठहर गए; पर उन्हें होटल से बाहर जाने की अनुमति नहीं थी।

नागासाकी में एशियाई युवक अधिवेशन समाप्त हो जाने पर रासबिहारी बोस और आनंदमोहन सहाय ओसाका पहुँचकर राजाजी से मिले। उन्होंने बहुत प्रयत्न किया कि राजाजी को ओसाका में अधिक दिन तक ठहरने की अनुमति मिल जाए, पर उनके प्रयत्न सफल नहीं हुए। जब वापसी यात्रा के लिए जहाज चलने का समय हुआ तो ओसाका की पुलिस ने राजाजी से जहाज पर सवार होने के लिए कहा। राजाजी ने ओसाका छोड़ने से इनकार कर दिया और कहा कि मैं महात्मा

गांधी के देश का व्यक्ति हूँ और उनके सिद्धांत के अनुसार में अनुचित आज्ञा का पालन नहीं करूँगा और सत्याग्रह करूँगा। न जाने के लिए राजाजी भूमि पर लेट गए। जापानी पुलिस अधिकारियों ने उन्हें बलपूर्वक उठाकर अपने कंधों पर लादा और एक कार में डालकर उन्हें बंदरगाह तक ले गए तथा जहाज में छोड़ आए।

वापसी यात्रा में कोब तक राजाजी के साथ आनंदमोहन सहाय भी थे। जापानी युवक बंदरगाह पर उनसे मिलने पहुँचे। उन्होंने श्री आनंदमोहन सहाय से कहा कि यदि आप हमें अनुमति दें तो हम लोग राजा महेंद्रप्रताप को ले जा सकते हैं और हम उन्हें ऐसे स्थान पर रख सकते हैं, जहाँ पुलिस को उनकी गंध ही नहीं लगेगी। स्वयं राजा महेंद्रप्रताप ने इस प्रकार जाने से इनकार कर दिया।

कुछ दिन के लिए राजा महेंद्रप्रताप मौलाना बरकतुल्ला को साथ लेकर अमेरिका के सानफ्रांसिस्को नगर भी गए, जहाँ गदर पार्टी के लोगों ने इन दोनों का स्वागत किया। राजा महेंद्रप्रताप के ओजस्वी विचारों से गदर पार्टी के लोग बहुत प्रभावित हुए।

अपना शेष समय राजा महेंद्रप्रताप ने संसार के विभिन्न देशों में अपनी कल्पना के 'आर्यान' देश की स्थापना के प्रचार में लगाया। वे आर्य लोगों के सभी एशियाई देशों को मिलाकर 'आर्यान' की कल्पना कर रहे थे।

सन् १९३७ में जब भारत के आठ प्रांतों में कांग्रेसी मंत्रिमंडलों की स्थापना हुई तो भारतवासियों ने कांग्रेस पर बहुत जोर डाला कि वह राजा महेंद्रप्रताप को भारत आने की अनुमति ब्रिटिश हुकूमत से प्राप्त करे। कांग्रेस को इस प्रयत्न में सफलता नहीं मिल सकी। राजा महेंद्रप्रताप को भारत में आने की अनुमति सन् १९४६ में मिल सकी, जब अंग्रेजों ने भारत से अपने बोरिए-बिस्तर उठा लेने का निर्णय ले लिया।

भारत को राजा महेंद्रप्रताप जैसे क्रांतिकारी और देशभक्त पर गर्व है।

□

★ मैना

बिठूर के राजमहल में अपनी पुत्री मैना को छोड़ते हुए नानासाहब पेशवा का दिल भर आया। अंग्रेजों की विजय का क्रम प्रारंभ हो चुका था तथा छिन्न-भिन्न सेना को एकत्रित कर एक और संगठित मोरचा लेने के आयोजन की दृष्टि से नानासाहब का बिठूर छोड़ना आवश्यक हो गया था। वे मैना से बोल उठे—

"बेटी! तुम्हें इस महल में अकेली छोड़ते हुए मेरी आत्मा नहीं मान रही है। मैं तो फिर कहता हूँ कि तुम मेरे साथ चलो। यह महल किसी सेवक की देखरेख में हम छोड़ सकते हैं।"

मैना

"पिताजी! हम महल को किसी सेवक की देखरेख में छोड़ दें या सूना छोड़ दें, इससे क्या अंतर पड़ता है! प्रश्न तो इस बात का है कि यहाँ रहकर क्रांतिकारियों को जो सूचनाएँ समय-समय पर मैं दे सकती हूँ, वे सूचनाएँ सेवक तो नहीं दे सकता! इसीलिए मैं स्वयं यहाँ रहना चाहती हूँ।"

"पर बेटी! तुम्हारे यहाँ अकेले रहने में खतरा भी हो सकता है। इन वहशी अंग्रेजों में तनिक भी मानवता नहीं होती।"

"पिताजी! यदि मैं अपने प्राणों की रक्षा नहीं कर सकी तो कोई बात नहीं, पर अपने सम्मान की रक्षा करना मैं भलीभाँति जानती हूँ। आप यह क्यों भूल जाते हैं कि मैं एक क्रांतिकारी की बेटी हूँ!"

"तुम्हारे इस आश्वासन पर मैं निश्चिंत होकर जा रहा हूँ, बेटी। तुम्हें यह तो मालूम है न कि मुझे कहाँ जाना है?"

"हाँ, पिताजी! आपका गंतव्य मुझे भलीभाँति मालूम है। मैं ईश्वर से प्रार्थना करती रहूँगी कि वह आपको सफलता प्रदान करे।"

अपनी बेटी से बिदा लेकर नानासाहब चले गए। बिठूर के राजमहल में मैना अकेली रह गई। कुछ सेवक उसकी सेवा के लिए छोड़ दिए गए। एक दिन गुप्तचरों की सूचना पर अंग्रेज सेनापति हे ने बिठूर के राजमहल पर छापा मारकर सेवकों को कैद कर लिया। मैना उनके हाथ नहीं लग सकी। सेनापति ने निर्णय लिया कि राजमहल को गोलों के प्रहार से गिरा दिया जाए। जैसे ही उसने अपने तोपचियों को तोपें चलाने का आदेश दिया, उसी समय मैना महल के एक झरोखे से प्रकट हुई और कड़कती हुई आवाज में बोल उठी—

"ठहरो! यह दुष्कृत्य बंद करो!"

मैना को प्रकट हुआ देख सेनापति हे आश्चर्यचकित रह गया। वह बोला—

"हमने महल का कोना-कोना छान डाला था। तब तो हमें कोई मिला नहीं

था। यह लड़की कहाँ से आ टपकी?''

एक सैनिक ने अपना मत प्रकट किया—

''हुजूर! यह लड़की कहीं से टपकी हुई मालूम नहीं पड़ती। मेरा तो खयाल है, यह धरती फोड़कर बाहर निकली है।''

''हाँ, मैं धरती की बेटी हूँ।'' मैना का उत्तर था। अब उसका वार्त्तालाप सेनापति हे के साथ होने लगा—

''लड़की, तू क्या चाहती है?''

''मैं चाहती हूँ कि इस महल को गिराया न जाए।''

''इस महल को बचाने में तुम्हारा क्या उद्देश्य है?''

''और इसे गिराने में तुम्हारा क्या उद्देश्य है?''

''यह महल भयंकर विद्रोही नानासाहब का है। सरकार ने इसे नष्ट करने की आज्ञा दी है।''

''सरकार का नुकसान नानासाहब ने किया है या किसी मकान ने? नानासाहब का बदला इस जड़ पदार्थ से लेना कौन-सी वीरता है?''

''युद्ध में आदर्श की बातें नहीं बघारी जातीं।''

''अब मुझे ज्ञात हो गया कि सेनापति हे केवल सेनापति हैं, वे इनसान नहीं हैं।''

''लड़की! तुम मेरा नाम कैसे जानती हो?''

''आप मेरे पिता के दरबार में आया करते थे। मैं नानासाहब की पुत्री मैना हूँ। आपकी पुत्री 'मेरी' से घनिष्ठ मित्रता रही है।''

''हाँ, हाँ, अब तुम्हें पहचाना। तुम मेरी की सहेली हो। वह तुम्हारी बहुत तारीफ किया करती थी। मुझे याद है कि जब मेरी पुत्री की मृत्यु हुई थी तो उसके शोक में तुमने दो दिन तक खाना नहीं खाया था।''

''मैंने आपके उस मानवीय रूप का ध्यान करके ही तो महल न गिराने की प्रार्थना की है।''

''मैं नहीं समझ पाता कि इस मामले में मैं तुम्हारी सहायता कैसे करूँ? मुझे कंपनी सरकार की आज्ञा का पालन भी तो करना है।''

सेनापति हे और मैना में बातें चल ही रही थीं कि प्रधान सेनापति जनरल आउटरम भी वहाँ पहुँच गया। महल को गिरा हुआ न देखकर उसे आश्चर्य हुआ। उसने जनरल हे से पूछा—

''अभी तक नानासाहब का महल क्यों नहीं गिराया गया?''

''नानासाहब की लड़की मैना उपस्थित होकर इस महल को न गिराने की

प्रार्थना कर रही है।''

''आप इस लड़की पर दयावंत क्यों हो रहे हैं?''

''यह मेरी पुत्री की घनिष्ठ सहेली रही है।''

''मुझे इस मामले में कोई रुचि नहीं है। मैं अब अपने सामने इस महल को गिरा हुआ देखना चाहता हूँ।''

''जनरल आउटरम, क्या नानासाहब का यह महल किसी प्रकार बच सकता है?''

''गवर्नर जनरल की आज्ञा के बिना किसी प्रकार भी नहीं। आपको मालूम होना चाहिए कि नानासाहब पर सरकार का बहुत अधिक क्रोध है।''

''क्यों न लॉर्ड केनिंग को तार देकर इस महल को न गिराने की अनुमति ले ली जाए!''

''नहीं, हरगिज नहीं! मैं आपके प्रस्ताव से सहमत नहीं हूँ। मैं आज्ञा देता हूँ कि तोपें दागी जाएँ और इस महल को ध्वस्त किया जाए। पहले इस लड़की को गिरफ्तार किया जाए।''

जनरल आउटरम की आज्ञा से कई गोरे सैनिक महल की तरफ झपटे और उन्होंने महल का कोना-कोना छान मारा; पर मैना का कहीं पता नहीं चला। जनरल आउटरम के आदेश से तोपें दागी गईं और देखते-ही-देखते वह राजमहल ध्वस्त हो गया। आउटरम ने समझा कि लड़की मकान के नीचे दबकर मर गई होगी। वह चला गया।

रात्रि का समय था। चाँदनी छिटकी हुई थी। जो महल कभी अपनी आभा पर इठलाया करता था, आज वही ध्वस्त होकर अपने दुर्भाग्य पर आँसू बहा रहा था। उसे सांत्वना दे रही थी किशोरी मैना, जो तलघर से प्रकट होकर स्वयं भी अपने गिरे हुए महल को देख रही थी। उसे यह ज्ञात नहीं हो सका था कि कोई उसे भी देख रहा है। महल के दो अंग्रेज प्रहरियों ने उसे देख लिया था। वे दबे पाँव उसकी ओर बढ़े और उसे गिरफ्तार कर लिया। सिंहनी जाल में फँस चुकी थी। उसे जनरल आउटरम के समक्ष प्रस्तुत किया गया। आउटरम बोल उठा—

''आखिर तुम हमारे जाल में उलझ ही गईं। अब तुम्हारे हित में यही है कि तुम अपने पिता नानासाहब और क्रांतिकारियों के पते-ठिकाने बता दो, अन्यथा हम तुम्हें जिंदा जला देंगे।''

''तुम मेरे शरीर को जला सकते हो, मेरी आत्मा को नहीं। अग्नि का भयंकर दाह भी मुझसे भेद निकलवाने में असमर्थ रहेगा।''

''लड़की, अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है! तुम अपना जीवन नष्ट करने पर

क्यों तुली हुई हो? क्रांतिकारियों के भेद बता दो। हम तुम्हें छोड़ भी देंगे और भारी पुरस्कार भी देंगे।''

''अपना बलिदान स्वयं ही मेरा पुरस्कार होगा। एक सच्चे क्रांतिकारी को मृत्यु-भय या प्रलोभन, कोई भी कर्तव्य से विचलित नहीं कर सकता। मेरी मृत्यु ब्रिटिश शासन के पतन का कारण बनेगी।''

ब्रिटिश शासन के पतन की बात सुनकर आउटरम तिलमिला उठा। उसने सैनिकों को आज्ञा दी कि वे लड़की को वृक्ष से बाँधकर, उसकी चिता तैयार करके आग लगा दें। सैनिकों ने अपने जनरल की आज्ञा का पालन किया। जब लपटें उठकर मैना के मुखमंडल की ओर बढ़ने लगीं तो आउटरम बोल उठा—

''अभी भी समय है। यदि तुम अपने पिता का पता बता दो तो हम तुम्हें बचा सकते हैं।''

मैना ने मुँहतोड़ उत्तर दिया—

''एक जन्म तो क्या, कई जन्मों तक भी तुम मुझे इसी प्रकार जलाते रहो, तो भी मैं अपने पिता और अन्य क्रांतिकारियों के भेद नहीं बता सकती। भारत की वीरांगनाओं को तो आग की लपटें चंदन की भाँति शीतल लगती हैं। इतना याद रखना कि अब तुम्हारे दिन आ गए। तुम्हारे अत्याचार ही तुम्हें ले डूबेंगे।''

मैना अविचल खड़ी रही। लपटें उठती रहीं। वह स्वयं भी किसी लपट से क्या कम थी!

□

★ रंगो बापूजी गुप्ते

रंगो बापूजी गुप्ते

इंग्लैंड की राजधानी लंदन में एक भारतीय व्यक्ति जहाँ भी जाता, लोगों के आकर्षण और मनोरंजन का केंद्र बन जाता था। महाराष्ट्रीयन ढंग की पंडिताऊ धोती, घुटनों तक लटकनेवाला बंद गले का कोट, कंधे पर झूलता हुआ दुपट्टा, सिर पर भारी पगड़ी, घनी और काली मूँछें तथा माथे पर आड़ा तिलक—यह थी उसकी वेशभूषा एवं बाह्याकृति। लोगों का अनुमान था, वह व्यक्ति अंग्रेजी नहीं जानता होगा। पर जब वे उसे धाराप्रवाह अंग्रेजी बोलते हुए देखते तो दंग रह जाते थे। उस व्यक्ति का नाम था रंगो बापूजी गुप्ते। वह भारत में महाराष्ट्र के सतारा राज्य के राजा प्रतापसिंह की ओर से उनके कार्य के लिए लंदन गए थे। लंदन में उनकी भेंट अजीमुल्ला खाँ से हुई, जो नानासाहब पेशवा के कार्य से वहाँ गए हुए थे।

परिस्थितियाँ ही व्यक्ति को बागी बनाती हैं। रंगो बापूजी गुप्ते अपने राजा की वकालत के लिए लंदन गए थे; पर वहाँ पहुँचकर वे पूर्णरूप से बागी बन गए। उनके मन में अंग्रेजों के प्रति घृणा और विद्वेष के भाव जाग्रत हो गए। संपूर्ण इंग्लैंड में उन्हें व्यक्तिगत स्वतंत्रता के दर्शन होते थे, पर भारत में इसके विपरीत दशा थी; जहाँ भारतीयों को किसी भी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं थी। अंग्रेजों के आचरण के इस विरोधाभास ने उन्हें अंग्रेजों का कट्टर शत्रु बना दिया। इंग्लैंड में यद्यपि उन्हें अपने कार्य में सफलता तो नहीं मिली, पर अपने हृदय में वैचारिक क्रांति का लहराता हुआ सागर लेकर वे सागर-संतरण करके भारत लौट आए।

फ्रांस की राज्य क्रांति में जो महत्त्व रूसो एवं वाल्टेयर का है, वही स्थान १८५७ की भारतीय सशस्त्र क्रांति में अजीमुल्ला खाँ और रंगो बापूजी गुप्ते का है। अजीमुल्ला खाँ ने उत्तर भारत में और रंगो बापूजी गुप्ते ने महाराष्ट्र में क्रांति की संरचना करके अंग्रेजी साम्राज्य के लिए मुसीबत पैदा कर दी। इन महानुभावों ने लोगों को केवल उकसाया ही नहीं, वे स्वयं भी क्रांति यज्ञ में कूद पड़े।

सन् १८५३ में लंदन से लौटने के पश्चात् रंगो बापूजी गुप्ते ने कोल्हापुर, बेलगाँव, धारवाड़ और सतारा के संपूर्ण क्षेत्र में बड़े गोपनीय ढंग से उग्र क्रांति का प्रसार किया। सन् १८५८ में उनके एक निकट के मित्र ने विश्वासघात करके उन्हें अंग्रेजों के हाथों गिरफ्तार कराने का प्रयत्न किया; पर इस विश्वासघात की गंध पाकर वे फरार हो गए।

पता नहीं कब और कहाँ इस महान् क्रांतिकारी का देहावसान हो गया। □

★ रघुनाथशाह ★ शंकरशाह

गढ़ा मंडला के राजा शंकरशाह और उनके पुत्र रघुनाथशाह को बंदी बनाकर जब अंग्रेजों ने उन्हींके नगर में घुमाया तो उनकी प्रजा हाहाकार कर उठी। अपने राजा और राजकुमार का अपमान न सह सकने के कारण कई व्यक्ति अपने घरों में छिप गए और कई लोगों ने अपने हाथों से अपने मुँह ढक लिये।

घुड़सवार सेना के पहरे के बीच अत्याचारी अंग्रेज राजा शंकरशाह और उनके पुत्र को वधस्थल तक ले गए। गाँव के बाहर तोपें लगा दी गई थीं और उनके मुँह से विद्रोहियों को बाँधकर उन्हें गोलों से उड़ा दिया गया था। पहले कुछ विद्रोही सैनिकों को तोप के मुँह से बाँधकर उड़ाया गया और फिर राजा शंकरशाह एवं उनके पुत्र रघुनाथशाह को दो पृथक्-पृथक् तोपों के मुँह से रस्सियों के सहारे कस दिया गया। तोपची लोग जलते हुए पलीते लेकर तैयार हो गए। वे अपने अंग्रेज अफसर के आदेश की प्रतीक्षा कर रहे थे।

आदेश देने के पूर्व अंग्रेज अफसर ने राजा शंकरशाह और उनके पुत्र रघुनाथशाह से पूछा—"आप लोगों की आखिरी इच्छाएँ क्या हैं?"

पिता-पुत्र ने एक-दूसरे की ओर देखा। उत्तर पिता ने दिया—

"जिस कविता को लिखने के कारण हम लोगों को मृत्युदंड दिया जा रहा है, हम लोग अपनी मृत्यु के पूर्व वह कविता सुनाना चाहते हैं।"

अंग्रेज अफसर इस उत्तर को सुनकर जल-भुन गया। उसने उन दोनों को वह कविता सुनाने की अनुमति दे दी। एक कवित्त पिता ने और दूसरा कवित्त पुत्र ने सुनाया। वे कवित्त थे—

(१)

मूँद मुख डंडिन को चुगलों को चबाइ खाइ
खूँद दौड़ दुष्टन को शत्रु संहारिका।
मार अँगरेज रेज कर देइ मात चंडी
बचे नाहिं बैरी बाल-बच्चे संहारिका।
संकर की रक्षा क दास प्रतिपाल कर
वीनती हमारी सुन अय मात पालिका।
खाइ लेइ म्लेच्छन को झेल नाहिं करो अब
भच्छन ततच्छन कर बैरिन को कालिका।

(२)

कालिका भवानी माय अरज हमारी सुत
डार मुंडमाल गरे खण्ग कर धर ले।
सत्य के प्रकासन औ' असुरन विनासन को
भारत-समर माँहि चंडिके सँवर ले।
झुंड-झुंड बैरिन के रुंड-मुंड झारि-झारि
सोनित की धारन ते खप्पर तू भर ले।
कहै रघुनाथ माँ फिरंगिन को काटि-काटि
किलक-किलक माँ कलेऊ खूब कर ले।

कविता पाठ समाप्त होते ही अंग्रेज अफसर ने तोपचियों को पलीते लगाने का संकेत कर दिया। दोनों तोपों ने भीषण गर्जना की और राजा शंकरशाह एवं उनके पुत्र रघुनाथशाह की हड्डियाँ तथा मांस के लोथड़े दूर-दूर तक बिखर गए। दर्शकों की ओर से एक भयावह चीत्कार उठी और फिर सभी कुछ शांत हो गया।

राजा शंकरशाह ने अपने एक बेईमान कर्मचारी गिरधारी दास को अपने राज्य से निकाल दिया था। गिरधारी दास ने ही आपत्तिजनक कवित्त लिखने की सूचना अंग्रेजों को दी और अंग्रेजी में उन पदों का भावार्थ भी उन्हें समझा दिया। परिणाम था पिता-पुत्र का बलिदान। यह बलिदान झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के बलिदान के ठीक तीन मास पश्चात्, अर्थात् १८ सितंबर, १८५८ को हुआ।

□

★ ठाकुर रणमतसिंह

उसकी रगों में शुद्ध क्षत्रिय रक्त उबाल खा रहा था। मातृभूमि के शत्रुओं से दो-दो हाथ करने के लिए उसकी भुजाएँ फड़क रही थीं। सन् १८५७ का प्रथम स्वाधीनता संग्राम प्रारंभ होकर अपने अंत की ओर बढ़ रहा था। अंग्रेजों ने अपनी स्थिति सँभाल'ली थी और उनका विजय अभियान तेजी के साथ चल रहा था। ठाकुर रणमतसिंह ने अंग्रेजों से टक्कर लेने का संकल्प कर डाला।

रणमतसिंह रीवा नरेश महाराज रघुराजसिंह की सेना में सरदार के उच्च पद पर आसीन थे। उन दिनों प्रत्येक देशी रियासत में एक अंग्रेज पोलिटिकल एजेंट रहकर उस रियासत की गतिविधियों पर दृष्टि रखा करता था। ठाकुर रणमतसिंह ने पोलिटिकल एजेंट ओसवान के विरुद्ध बगावत कर दी। उनके साथियों ने ओसवान के बंगले पर आक्रमण कर दिया। ओसवान अपने प्राण बचाने में सफल हो गया।

ठाकुर रणमतसिंह का शिकार उनके हाथों से निकल गया। एक अंग्रेज न सही तो दूसरा सही। उन्होंने नागोद राज्य के रेजीडेंट पर हमला बोल दिया। यह रेजीडेंट भी भागकर अजयगढ़ राज्य की शरण में पहुँच गया। अजयगढ़ नरेश ने अपनी शरण में आए हुए अंग्रेज की रक्षा करने हेतु रणमतसिंह का सामना करने के लिए केशरीसिंह बुंदेला के नेतृत्व में एक सेना भेज दी। भेलसाँय स्थान पर भयंकर युद्ध हुआ। ठाकुर रणमतसिंह शत्रु सेना को काटते हुए केशरीसिंह के सामने जा पहुँचे। दो दिग्गजों की तलवारबाजी देखते ही बनती थी। आखिर ठाकुर रणमतसिंह ने अपनी तलवार के एक वार से केशरीसिंह के दो टुकड़े कर डाले।

इस विजय से प्रोत्साहित होकर ठाकुर रणमतसिंह ने नौगाँव की अंग्रेजी छावनी पर हमला बोल दिया। वे वीरवर तात्या टोपे से अपना संबंध स्थापित करना चाहते थे। अपने इस मनसूबे को वे पूरा नहीं कर सके। उन्होंने बरौंधा नामक स्थान पर अंग्रेजी सेना का मुकाबला करके उसको तहस-नहस कर दिया।

कई बार जाल डालने पर भी अंग्रेज ठाकुर रणमतसिंह को गिरफ्तार करने में सफल नहीं हो रहे थे। आखिर उन्होंने वही नीच चाल चली, जो वे हमेशा चलते आए थे। ठाकुर रणमतसिंह एक दिन जब अपने एक मित्र विजयशंकर नाग के घर जलपा देवी के मंदिर के तहखाने में विश्राम कर रहे थे, तो धोखे से उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और सन् १८५९ में अनंत चतुर्दशी के दिन आगरा जेल में उन्हें फाँसी पर झुला दिया गया। उनका जन्म सन् १८२५ में हुआ था।

□

★ जगत्सेठ रामजीदास गुड़वाला

वह आधुनिक भामाशाह था, जिसके दिल में देश की आजादी के लिए तड़प थी और जो न केवल अरबों रुपयों की संपत्ति देश की आजादी के लिए न्योछावर करने के लिए तैयार था, अपितु उसके उर्वर मस्तिष्क में गुप्तचर विभाग और सैन्य संगठन की योजनाएँ भी थीं। उसका नाम था जगत् सेठ रामजीदास गुड़वाला।

जगत्सेठ रामजीदास गुड़वाला

सेठ रामजीदास गुड़वाला का सम्मान भारत के अंतिम मुगल सम्राट् बहादुरशाह जफर के दरबार में बहुत अधिक था। उन्हें शासन की ओर से कई उपाधियाँ दी गई थीं और दरबार में उनके बैठने के लिए विशेष आसन की व्यवस्था की जाती थी। उनके रहने के मकान में भी फौज की विशेष व्यवस्था होती थी। दीपावली के समय सेठजी अपने घर पर जश्न मनाते थे, जिसमें मुगल सम्राट् बहादुरशाह स्वयं उपस्थित होते थे और सेठ साहब सम्राट् को दो लाख अशर्फियों का नजराना भेंट करते थे।

उस समय सम्राट् बहादुरशाह जफर के दरबार में अधिकांश दरबारी स्वार्थी व अय्याश थे तथा वे स्वयं चाहते थे कि सल्तनत समाप्त हो और उन्हें कुछ बनने का मौका मिले।

सेठ रामजीदास गुड़वाला ने कई बार करोड़ों रुपए बहादुरशाह जफर को इसलिए दिए कि वे एक सुसंगठित फौज का निर्माण करके अंग्रेजों से लोहा लें और मातृभूमि को उनकी दासता से मुक्त करें। गुप्तचर विभाग का निर्माण तो सेठ साहब ने स्वयं किया था, जो अंग्रेजों और उनके पिट्ठू भारतीयों की गतिविधियों की खबरें लाकर देता था।

सन् १८५७ की क्रांति की सफलता के लिए सेठ रामजीदास गुड़वाला ने दो बार करोड़ों रुपए सहयोग के रूप में और अरबों रुपए कर्ज के रूप में बहादुरशाह जफर को दिए। इसके अतिरिक्त फौज को रसद देने के लिए तो उनका भंडार खुला ही रहता था।

अंग्रेज अधिकारी भी सेठ रामजीदास गुड़वाला के प्रभाव से परिचित थे और वे स्वयं सहायता के लिए सेठ साहब के पास पहुँचे थे; पर सेठ साहब ने उन्हें किसी भी प्रकार की सहायता देने से इनकार कर दिया था।

अपनी सफलता के दौर में अंग्रेजों ने जो पहला काम किया, वह यह कि उन्होंने दिल्ली के चाँदनी चौक में सरेआम शिकारी कुत्ते छोड़कर सेठ रामजीदास गुड़वाला को उनसे नोचवाया और घायल अवस्था में ही चौक में उन्हें फाँसी पर लटका दिया।

हमारा आधुनिक भामाशाह देश की आजादी के लिए कुरबान हो गया। उसके वंशधर अपनी विपन्न अवस्था में भी अपने उस पूर्वज भामाशाह की याद में संपन्नता का अनुभव करते हैं।

□

★ गुरु रामसिंह

गुरु रामसिंह

उन दिनों पंजाब में गुरु रामसिंह का बहुत बोलबाला था। उनके अनुयायियों की संख्या बढ़ती चली जा रही थी। उनकी ख्याति से आकर्षित होकर हजारों लोग उनके दर्शनों के लिए पहुँचते थे और उनके धार्मिक उपदेश सुनकर तृप्त होते थे। लोग इस प्रतीक्षा में रहते थे कि गुरु महाराज कुछ इच्छा व्यक्त करें और हम उसे पूरा करके कृतकृत्य हों। आगत मेहमानों के आतिथ्य के लिए लंगर चलता रहता था, जहाँ खान-पान का बहुत ही अच्छा प्रबंध रहता था।

गुरु रामसिंह की कीर्तिगाथा सुनकर एक अन्य महात्मा रामदास भी उनके दरबार में जा पहुँचा। उसने देखा कि गुरु रामसिंह सचमुच ही प्रभावशाली व्यक्ति हैं। उसे यह समझते देर नहीं लगी कि यदि गुरु रामसिंह के प्रभाव का उपयोग राजनीति के क्षेत्र में किया जाए तो देश का कल्याण हो सकता है। महात्मा रामदास ने अपने मन का भाव गुरु रामसिंह के सामने प्रकट कर दिया—

''साहब! इस समय कहाँ आप ईश्वरोपासना करके अपनी व्यक्तिगत मुक्ति का आयोजन करते हैं! देश की मुक्ति के लिए आप कुछ कीजिए। आप अपने प्रभाव का उपयोग कर देशवासियों में कर्मशीलता का संचार कीजिए।''

महात्मा रामदास की बात गुरु रामसिंह को लग गई। एक महात्मा ने दूसरे महात्मा को ज्योति दिखाई—उसे समयानुसार कर्तव्य-पथ दिखाया। गुरु रामसिंह ने अपने जीवन की धारा मोड़ दी। उसके पश्चात् लोगों को यह पता नहीं चला कि महात्मा रामदास कौन थे और कहाँ चले गए।

गुरु रामसिंह के विषय में यह बता देना आवश्यक है कि उनका जन्म सन् १८२४ में लुधियाना जिले के भैणी नगर में हुआ था। वे महाराजा रणजीत सिंह की सेना में भी भरती हुए थे; पर ईश्वरोपासना के लिए समय न मिलने के कारण फौज की नौकरी छोड़कर, अपने गाँव में ही रहकर पूरा समय ईश्वरोपासना में ही लगाने लगे थे। नामधारी संप्रदाय के उनके सिख अनुयायी 'कूके' कहलाते थे। महात्मा रामदास से प्रेरणा प्राप्त करके गुरु रामसिंह ने अपने आंदोलन को एक नया ही रूप दे दिया।

यद्यपि बाह्य रूप से गुरु रामसिंह के आंदोलन का रूप धार्मिक ही था, पर गुप्त रूप से सैन्य संगठन करके वे देश की मुक्ति की योजनाओं में लग गए।

गुरु रामसिंह ने पूरे पंजाब को बाईस जिलों में विभक्त करके अपने राज्यपाल नियुक्त किए, जो उनके संगठन में वृद्धि करके नए-नए लोगों को देशभक्ति की दीक्षा देते थे। उन्होंने अपने स्कूल, अस्पताल और डाकखाने खोल लिये थे। प्रयत्न इस बात का किया जा रहा था कि अंग्रेजी शासन पर निर्भर न रहकर स्वावलंबी बना जाए। स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार और अंग्रेजी वस्तुओं के बहिष्कार की नीति भी अपनाई गई। एक प्रकार से उन्होंने अंग्रेजी शासन के मुकाबले में एक समानांतर सरकार का आयोजन कर डाला।

एक विशेष घटना से गुरु रामसिंह के प्रभाव का पता ब्रिटिश हुकूमत को चल गया और वह उनकी गतिविधियों पर दृष्टि रखने लगी। घटना इस प्रकार हुई कि गुरु रामसिंह के अनुयायी कुछ कूके अमृतसर से कहीं बाहर जा रहे थे। रास्ते में कुछ कसाइयों से उनकी कहा-सुनी हो गई। कूके वीरों ने सभी कसाइयों को कत्ल कर दिया और सीधे भैणी जाकर गुरु की सेवा में पहुँच गए। इधर पुलिस ने अमृतसर के कुछ लोगों को गिरफ्तार कर लिया; क्योंकि ठीक मालूम नहीं था कि कत्ल किसने किए हैं। निरपराध लोगों को बचाने के लिए गुरु रामसिंह ने कसाइयों का वध करनेवाले कूकों से कहा कि अपना अपराध स्वीकार करके पुलिस के सामने जाकर आत्मसमर्पण कर दो। गुरु की प्रेरणा से उन्होंने ऐसा ही किया। यद्यपि

उन्होंने यह कार्य सरकार के हित में ही किया था, पर सरकार गुरु रामसिंह के बढ़ते हुए प्रभाव के प्रति सतर्क हो गई।

इस घटना से कसाई लोग कूका लोगों के शत्रु हो गए। उन्हें भी शीघ्र ही एक अवसर मिल गया। १३ जनवरी, १८७२ को भैणी में माघ मेला भरने वाला था। आसपास के कूके भैणी पहुँच रहे थे। रास्ते में कसाइयों के एक दल को एक कूका सरदार मिल गया। कसाइयों ने उस कूके की पिटाई की और उसके सामने एक गाय को वहीं काट डाला। कूका क्रुद्ध होकर भैणी पहुँचा और अन्य सभी कूकों के समक्ष उसने गुरु के दरबार में घटना को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया। कूके लोग आपे से बाहर हो गए और उन्होंने कसाइयों से बदला लेने का संकल्प किया। गुरु रामसिंह ने उन लोगों को बहुत समझाया कि उतावलेपन से काम करने से हम लोगों के संगठन का पता सरकार को लग जाएगा और हम लोग निश्चित समय पर सरकार के विरुद्ध जो विद्रोह करने वाले हैं, वह नहीं हो सकेगा। कूके लोग बदले की भावना से इतने उत्तेजित हो रहे थे कि उन्होंने गुरु की बात नहीं मानी और प्रतिहिंसा की आग में जलते हुए डेढ़ सौ कूके कसाइयों की तलाश में निकल पड़े। इधर गुरु रामसिंह ने अपनी ओर से पुलिस को यह सूचना दे दी कि विद्रोही कूकों से उनका कोई संबंध नहीं है। उन्होंने दूरगामी परिणाम को ध्यान में रखकर ही यह कदम उठाया था। उन्होंने सोचा था कि डेढ़ सौ कूके ही पकड़े जाएँगे, शेष संगठन पर कोई आँच नहीं आएगी और फिर अवसर पाकर विद्रोह किया जा सकेगा।

उन डेढ़ सौ विद्रोही कूकों ने कसाइयों से बदला लिया ही, उन्होंने सरकार के खिलाफ भी बगावत का ऐलान कर दिया। उन्होंने मलौध नामक स्थान पर पहुँचकर उन लोगों से सहायता माँगी, जिन्होंने कुछ समय पूर्व उन्हें सहायता देने का वचन दिया था। जब मलौधवालों ने देखा कि उनका विद्रोह अपरिपक्व है और वह कुछ लोगों की ही उत्तेजना का परिणाम है तो उन्होंने सहायता देने से इनकार कर दिया। विद्रोही कूकों ने मलौध के किले पर ही आक्रमण कर दिया और वहाँ जो हथियार तथा घोड़े मिले उन्हें लूट ले गए।

अगले दिन विद्रोही कूकों ने लुधियाना के निकट मालेरकोटला नगर पर आक्रमण कर दिया और वे राजमहल तक जा घुसे। जमकर लड़ाई हुई। कूके लोगों ने खजाने पर भी आक्रमण किया; पर उन्हें पीछे हटना पड़ा। उनका पीछा किया गया। कूके लोग बड़ी वीरता से लड़े और लड़ते-लड़ते ही उनमें से अड़सठ कूके पटियाला रियासत के सीमांत स्थित गाँव रढ़ के जंगल में गिरफ्तार कर लिये गए।

पकड़े गए विद्रोही कूकों में से पचास को अगले दिन लुधियाना के अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर मि. कॉवन ने मालेरकोटला में तोपों से बँधवाकर उड़वाने का

आयोजन किया। उनमें से उनचास कूकों को तोपों से बाँधकर उड़ा दिया गया। उन सभी ने बड़े हौसले के साथ मृत्यु का आलिंगन किया। यद्यपि उनमें से प्रत्येक से कहा जा रहा था कि जो माफी माँग लेगा, उसे तोप से न उड़ाकर कोई अन्य दंड दे दिया जाएगा, पर एक भी कूके ने माफी नहीं माँगी।

□

★ रिचर्ड विलियम्स

रिचर्ड विलियम्स यद्यपि एक अंग्रेज सिपाही था, लेकिन वह भारत में अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति का विरोधी था। वह ऐसे अवसर की तलाश में था, जब उसे अंग्रेजी नीति का विरोध करने का अवसर मिलता। आखिर वह अवसर उसे मिल ही गया। सन् १८५७ में अंग्रेजों के विरुद्ध भारत का प्रथम स्वाधीनता संग्राम छिड़ गया और रिचर्ड विलियम्स ने अंग्रेजों का साथ देने के बजाय भारतीय क्रांतिकारियों का साथ दिया।

जब मेरठ में भारतीय क्रांति का विस्फोट हुआ तो वहाँ के अंग्रेजी रिसाले को आज्ञा मिली कि वह क्रांति का दमन करने के लिए विद्रोहियों पर गोलियाँ चलाए। उस समय रिचर्ड विलियम्स मेरठ के रिसाले में पदस्थ था। उसने इस आदेश की अवहेलना की। जब एडजूटेंट टकर ने रिचर्ड विलियम्स से जवाब तलब किया तो उसने गोली मारकर एडजूटेंट टकर की हत्या कर दी और हिंदुस्तानी क्रांतिकारियों से जा मिला। क्रांतिकारियों के साथ दिल्ली पहुँचकर उसने भारतीय तोपखाने का संचालन किया। रिचर्ड विलियम्स की इस बगावत से अंग्रेज बौखला गए और वे उसे दंड देने की योजना बनाने लगे।

बहादुरशाह जफर की फौज को जब दिल्ली से पलायन करना पड़ा तो उफनती हुई यमुना नदी के पार उसकी तीस हजार सैनिकों की सेना को नावों के पुल द्वारा पार कराने की योजना में रिचर्ड विलियम्स की सूझबूझ ने काम किया था।

दिल्ली पतन के पश्चात् रिचर्ड विलियम्स अवध में क्रांतिकारियों का साथ देने जा पहुँचा। उन्नाव की रियासत रुइया के नरेश नरपतिसिंह ने उसे अपने यहाँ बुलवा लिया। अंग्रेजी सेना ने जब रुइया के किले को घेर लिया तो उसकी रक्षा का भार रिचर्ड विलियम्स को दिया गया।

ब्रिटिश फौज रुइया के किले का घेरा डाले हुई खड़ी थी। ब्रिगेडियर एड्रियन होप अपनी टुकड़ी को निर्देश दे रहा था। उसी समय किले के अंदर एक

ऊँचे वृक्ष पर चढ़कर रिचर्ड विलियम्स ने ब्रिगेडियर एड्रियन होप को अपनी गोली का निशाना बनाया। निशाना अचूक था और ब्रिगेडियर एड्रियन होप ने भूमि पर गिरकर दम तोड़ दिया।

अंग्रेजी फौज ने रुइया के किले के फाटक को बारूद से उड़ाना चाहा, लेकिन रिचर्ड विलियम्स की मुस्तैदी से यह योजना सफल नहीं हो सकी।

१८५७ के प्रथम स्वाधीनता संग्राम का वह दौर भी प्रारंभ हो गया, जब अंग्रेजी फौजें क्रांतिकारियों पर हावी होने लगीं। समर्पण करने के स्थान पर रिचर्ड विलियम्स भूमिगत हो गया। वह कहाँ गया और उसका अंत किस प्रकार हुआ, इसका किसीको कुछ पता नहीं। अंग्रेज इतिहासकारों ने रिचर्ड विलियम्स के विषय में जानबूझकर कुछ नहीं लिखा। दिल्ली पर घेरा डालनेवाले उप-सेनानायक कर्नल फिटजेरल्ड ने 'सीज ऑफ डेलही' नामक अपनी डायरी में रिचर्ड विलियम्स के बागी होने की बात का यत्र-तत्र उल्लेख किया है।

□

★ रिषीकेश लट्टा

रिषीकेश लट्टा

पंजाब की पुलिस एक क्रांतिकारी की तलाश में थी, जो उसके हाथ नहीं आ रहा था। उसक नाम था रिषीकेश लट्टा, जो लाहौर विश्वविद्यालय का स्नातक था और सरदार अजीतसिंह तथा सूफी अंबाप्रसाद के निर्वासित हो जाने के पश्चात् क्रांतिकारी दल का काम सँभाले हुए था। छात्र-जगत् पर उसका अच्छा प्रभाव था और पूरे पंजाब में घूम-घूमकर वह क्रांति का जाल बिछाता जा रहा था। उसके मारे ब्रिटिश हुकूमत की नींद हराम हो रही थी। इसीलिए उसे पकड़ने के लिए पंजाब पुलिस बहुत सक्रिय हो उठी थी।

रिषीकेश होशियारपुर जिले के धोशारा गाँव का रहनेवाला था और उसके पिता चौधरी संगतराम अपने इलाके के प्रतिष्ठित व्यक्ति माने जाते थे। पैसे की

उनके पास कमी नहीं थी और वे अपने पुत्र को उच्च शिक्षा दिलाना चाहते थे। लाहौर के डी.ए.वी. कॉलेज में पढ़ते हुए रिषीकेश सरदार अजीतसिंह के संपर्क में आया। सरदारजी के अग्निमय व्यक्तित्व ने क्रांति की एक चिनगारी युवक छात्र के दिल में रख दी।

जब रिषीकेश ने देखा कि पंजाब पुलिस बुरी तरह से उसके पीछे पड़ गई है और दल का सामान्य कार्य करना भी कठिन हो गया है तो उसने अपने साथियों से इस विषय में परामर्श किया। दल का यही निर्णय था कि कुछ दिन के लिए उसे भारत से बाहर चले जाना चाहिए। दल का नेतृत्व साथी प्रेमपाल को सौंपकर रिषीकेश भूमिगत हो गया और कुछ दिनों के पश्चात् सन् १९०६ में वह ईरान के तेहरान नगर में जा पहुँचा।

तेहरान पहुँचकर रिषीकेश ने भारतीय क्रांति का प्रसार प्रारंभ कर दिया। ईरानी युवकों को वह अंग्रेजों के विरुद्ध भड़काने लगा। तेहरान का ब्रिटिश रेजीडेंट उसकी गतिविधियों से परेशान हो गया और उसने उसकी गिरफ्तारी के लिए बीस हजार रुपए का पुरस्कार घोषित किया। रिषीकेश ईरान में भी भूमिगत हो गया और उसने अंग्रेजों के विरुद्ध ईरानी क्रांतिकारियों का एक दल संगठित कर डाला। शीघ्र ही कई ईरानी क्रांतिकारी दल अंग्रेजों के विरुद्ध खड़े हुए।

ईरान की सरकार इस भारतीय नौजवान के प्रति बड़ी स्नेहिल थी। वह उसकी सेवाओं को पुरस्कृत भी करना चाहती थी और उसे गिरफ्तारी से भी बचाना चाहती थी। ईरानी सरकार ने बहुत बड़ा वजीफा देकर रिषीकेश को उच्च अध्ययन के लिए यूरोप भेज दिया।

रिषीकेश ने यूरोप में रूस, ऑस्ट्रिया, हंगरी, फ्रांस, जर्मनी, हॉलैंड, रूमानिया एवं तुर्की का अच्छी तरह भ्रमण किया और भारतीय क्रांति की चिनगारियाँ वह सभी जगह छोड़ता गया। चूँकि वह ईरानी सरकार के खर्चे से घूम रहा था, इस कारण जहाँ-जहाँ ईरानी राजदूत थे, वे हर प्रकार से उसकी सहायता कर रहे थे। इस्तांबूल में ईरान के राजदूत की सहायता से रिषीकेश अमेरिका पहुँचने में सफल हो गया।

रिषीकेश एक दृढ़-प्रतिज्ञ और सच्चा क्रांतिकारी था। वह कभी भी निष्क्रिय नहीं बैठ सकता था। अमेरिका के कैलीफोर्निया नगर में जब भारत की आजादी के दीवानों ने युगांतर आश्रम और गदर पार्टी की स्थापना की तो रिषीकेश भी संस्थापकों में से एक था।

जब प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ गया तो रिषीकेश और उसके साथी क्रांतिकारी सक्रिय हो उठे। वे लोग एक ओर तो भारत के क्रांतिकारियों के पास हथियार एवं धन-जन भेजने लगे और दूसरी ओर अमेरिका में भारत की आजादी के प्रति

वातावरण तैयार करने लगे।

वैधानिक रूप से भारत पहुँचने के लिए रिषीकेश ने ब्रिटिश शासन से अनुमति माँगी; पर उसे अनुमति नहीं मिली।

युद्ध के दिनों में भारतीय क्रांतिकारी जर्मनी में बहुत सक्रिय हो रहे थे। अमेरिका छोड़कर रिषीकेश जर्मनी जा पहुँचा और बर्लिन स्थित भारतीय क्रांतिकारियों के कंधों से कंधा मिलाकर कार्य करने लगा।

बर्लिन में रहते हुए रिषीकेश ने एक जर्मन लड़की के साथ शादी की। जब युद्ध में जर्मनी की पराजय हो गई तो वह ईरान जा पहुँचा। तेहरान में ही ३ फरवरी सन् १९३० को उस तूफानी क्रांतिकारी की मृत्यु हो गई।

रिषीकेश लट्टा के जीवन का प्रत्येक क्षण और उसकी प्रत्येक साँस भारत की आजादी के लिए समर्पित थी।

□

★ महारानी लक्ष्मीबाई

महारानी लक्ष्मीबाई

स्वतंत्रता की जगमगाती दीपशिखा, शौर्य की सजीव प्रतिमा महारानी लक्ष्मीबाई केवल भारत की ही नहीं, वरन् संसार की उन वीरांगनाओं में से एक हैं, जिनकी गिनती उँगलियों पर की जा सकती है। वह लक्ष्मी नाम है उसका, जिसने जनमानस में नारी के प्रति स्थापित कल्पना को परिवर्तित कर उसे अबला के स्थान पर सबला, कोमलांगी के स्थान पर वज्रांगना और रमणी के स्थान पर रणचंडी के रूप में प्रस्थापित किया। झाँसी की रानी लक्ष्मी ने 'लक्ष्मी' शब्द में स्थित गुण-धर्म में विपर्यय करके लक्ष्मी को धन-दौलत की देवी के स्थान पर वीरता की ज्वलंत ज्योति के रूप में मान्य कराया है। वह झाँसी की रानी लक्ष्मी है, जिसने सिद्ध कर दिखाया कि चूड़ियाँ धारण करनेवाली कोमल कलाइयाँ जब तलवार धारण करती हैं तो उसकी झन-झन में भैरवी साकार हो उठती है।

सन् १८५७ के स्वाधीनता संग्राम ने हमें झाँसी की रानी दी और झाँसी की रानी ने हमें स्वाधीनता संग्राम दिया। यदि १८५७ का स्वाधीनता समर न लड़ा गया होता तो संभवत: महारानी लक्ष्मीबाई जनमानस में उस रूप में प्रतिष्ठित न होती, जिस रूप में वह आज है। और यदि महारानी लक्ष्मीबाई न होती तो भारतीय स्वाधीनता संग्राम का रूप भी कुछ और ही होता।

युद्ध की मोरचाबंदी करने में महारानी लक्ष्मीबाई की प्रतिभा का चमत्कार देखने को मिला है। उसे पत्थर में भी प्राण फूँकना आता था। उसकी सेना के नर-

शार्दूल तो अरि-समूह को फाड़ खाने में सिद्धहस्त थे ही, उसकी सेना की वीरांगनाएँ भी विक्षुब्ध विद्युल्लता की भाँति शत्रु सेना का सर्वनाश करना जानती थीं। महारानी लक्ष्मीबाई की सेना की वीरांगनाएँ पुरुषों की भाँति ही तलवार चलाती थीं और तोपें दागती थीं।

भारत की स्वाधीनता के लिए लड़ी गई समर-शृंखला की उस अंतिम कड़ी का हम अवलोकन करें, जिसने लक्ष्मी नाम को कालजयी बना दिया है।

१८ जून, १८५८ का सूर्य अपनी समस्त रक्ताभा और प्रचंडता के साथ उदित हुआ। महारानी लक्ष्मीबाई ने विद्युत् वेग से ग्वालियर पर अधिकार कर लिया और अंग्रेजी सेना ने भी ग्वालियर की भूमि में लक्ष्मीबाई को चारों ओर से घेर लिया।

प्रभात की पुनीत वेला में महारानी लक्ष्मीबाई ने उठकर स्नान-ध्यान करके नियमानुसार 'गीता' का पाठ किया। उसके होंठों पर 'गीता' के श्लोक की पंक्ति थिरकने लगी—

'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।'

मानसिक रूप से युद्ध के लिए तैयार होकर महारानी लक्ष्मीबाई ने शारीरिक रूप से समर-सज्जा की। उसने अपने लाल कुरतीवाले रिसाले का रक्त परिधान धारण किया। कमर में दोनों ओर तलवारें लटकाईं और परिकर में भरी हुई पिस्तौलें कसीं। गले में मोतियों की माला डाल ली, जिससे उसके साथी उसे पहचान सकें।

समर-सज्जा के पश्चात् महारानी ने अपने सैनिकों और सेनानायकों को बुलाकर अपने हाथ से उन्हें कलेवा वितरित किया। महारानी के हाथ से कलेवा पाकर वीरों का जोश तरंगायित होने लगा। उन्होंने सिंह गर्जना की—"मध्याह्न का भोजन हम शत्रुओं को चबाकर करेंगे।" स्वयं महारानी और उसकी महिला सैनिक जूही ने कलेवा करने के स्थान पर केवल थोड़ा-सा शरबत पीया। महारानी की लेफ्टिनेंट मुंदर ने आकर कहा—

"सरदार! आपका घोड़ा लँगड़ाता है। कल लड़ाई में चोट खाकर घायल हो गया है।"

महारानी ने दूसरा घोड़ा लाने का आदेश दिया। मुंदर ने अस्तबल से एक अच्छा और स्वस्थ दिखनेवाला घोड़ा लाकर दिया। रानी को वह घोड़ा जँचा नहीं, पर काम लिया जा सकता था। विवशता में उसी घोड़े पर सवारी करनी पड़ी। आज रानी लक्ष्मीबाई अपने दत्तक पुत्र दामोदरराव को अपनी पीठ से न बाँधकर, उसे खिला-पिलाकर अपने सेनानायक रामचंद्र देशमुख की पीठ से बाँध दिया। सभी

लक्षण कह रहे थे कि आज रानी मरने-मारने पर उतारू होकर निकल रही है। आज की मोरचाबंदी इस प्रकार की थी कि उत्तर व पश्चिम के मोरचे क्रमशः तात्या टोपे और राव साहब को सौंपे गए थे। दक्षिण का मोरचा दबाया था बाँदा के नवाब ने और पूर्व के मोरचे पर स्वयं रानी लक्ष्मीबाई आरूढ़ थी।

गत दिवस के युद्ध में रानी की सेना के हाथों अंग्रेजी सेना ने करारी मात खाई थी। आज अंग्रेजों की मोरचाबंदी अधिक कौशलपूर्ण तथा सुदृढ़ थी। अचानक आक्रमण करने के लिए उन्होंने अपनी पैदल सेना जंगल में छिपा दी थी। घुड़सवार सेना को कई टुकड़ियों में बाँटकर उन्होंने चारों ओर से आक्रमण करने की योजना बनाई थी। रानी की सेना के सामने उन्होंने अपनी कड़ाबीनयुक्त हुजर सवार अड़ा रखे थे। रानी की सेना पर दूर से मार करने के लिए उन्होंने अपनी सेनाओं के पीछे तोपों की पंक्तियाँ जमा रखी थीं।

युद्ध का आरंभ अंग्रेजी हुजर सवारों ने कड़ाबीनों से गोलियों की बौछारें छोड़कर किया। उन्होंने सोचा था कि कड़ाबीनों की मार के आगे रानी की सेना ठहर नहीं सकेगी। रानी की बंदूकों ने भी कड़ाबीनों की गोलियों का करारा उत्तर दिया। रानी की अग्रिम पंक्ति ने बंदूकों से बार-बार जोरदार हमले करके अंग्रेजी सेना के कड़ाबीनों की बोलती बंद कर दी। अपनी सेना को पीछे हटते और रानी की सेना को आगे बढ़ते देख अंग्रेजी सेना की पिछली पंक्ति ने अपनी तोपों से गोलों की भयंकर वर्षा प्रारंभ कर दी। रानी के तोपखाने का संचालन वीरांगना जूही कर रही थी। जूही की तोपें प्रलय-गर्जन के साथ भयंकर आग उगल रही थीं। उन तोपों ने अंग्रेजी सेना पर गोले बरसाने के बजाय अंग्रेजी तोपखाने को ही अपना निशाना बनाया। अंग्रेजी तोपें एक-एक करके ठंडी पड़ने लगीं। अंग्रेजी सेना इस भयंकर मार से थर्रा गई। अंग्रेजों ने निर्णय लिया कि यदि जूही की तोपों के मुँह बंद न किए गए तो आज हमारी खैर नहीं। अतः अपनी पूरी शक्ति से उन्होंने जूही के तोपखाने पर भयंकर आक्रमण प्रारंभ कर दिया। महारानी लक्ष्मीबाई ने जूही की सहायता के लिए ग्वालियर की सेना की कुमुक भेजी। ग्वालियर की सेना गद्दारी कर गई। जूही की सेना की सहायता के स्थान पर वह अंग्रेजी सेना से जा मिली। ग्वालियर की सेना के इस विश्वासघात का दुष्परिणाम रानी को भुगतना पड़ा।

ऐसे संकट के समय भी रानी ने धैर्य नहीं छोड़ा। अब उसने अपने लाल कुरती सवारों के साथ अंग्रेजों पर भीषण प्रहार करना प्रारंभ कर दिया। उसके लाल कुरती सवार घमासान युद्ध करके अंग्रेजों को काट-काटकर बिछाने लगे। युद्ध का पासा पलटता हुआ देख, अपने सेनानायकों के संकेत पर जंगल में छिपी हुई अंग्रेजी सेना ने निकलकर राव साहब के मोरचों को छिन्न-भिन्न करना प्रारंभ कर दिया।

राव साहब के हाथ से दो मोरचे निकल गए और अंग्रेजी सेना रानी के मोरचे को तोड़ने के लिए व्यूह में प्रवेश करने लगी। रानी ने अपनी पैदल सेना अंग्रेजी पैदल सेना से भिड़ा दी। दोनों सेनाओं की तलवारें बिजली के समान चमकने लगीं।

ग्वालियर की सेना के विश्वासघात से जूही का तोपखाना निर्बल हो गया। अंग्रेज सैनिक जूही के तोपखाने पर पिल पड़े। अपने तोपखाने को छिन्न-भिन्न हुआ देख जूही भी अपनी तलवार खींचकर अंग्रेजों पर पिल पड़ी और कटे हुए खेत जैसा दृश्य उपस्थित करने लगी। अनेक शत्रु सैनिकों को मौत के घाट उतारने के पश्चात् जूही ने लड़ते-लड़ते वीरगति प्राप्त कर ली।

जूही को गिरा हुआ देख महारानी लक्ष्मीबाई ने तोपखाने का प्रबंध अपने हाथों में ले लिया। इसी समय कर्नल स्मिथ की आज्ञा से अंग्रेजी पल्टनों ने रानी की सेना पर दो तरफ से संगीनों से धावे बोल दिए। रानी की सेना घिर गई। उसकी दो तोपें भी छिन गईं। रानी को संकट में देख उसके लाल कुरती सवार अपूर्व पराक्रम से शत्रु सेना पर टूट पड़े। स्वयं रानी ने अपने घोड़े की लगाम दाँतों में दबा दोनों हाथों से तलवारों के वार करने प्रारंभ कर दिए।

महारानी लक्ष्मीबाई ने रणचंडी का रूप धारण कर रखा था। वह अपने दोनों हाथों से शत्रु सेना को काट-काटकर बिछाती जा रही थी। महारानी की लेफ्टिनेंट मुंदर उसके साथ थी। उसके एक पार्श्व में रघुनाथसिंह और दूसरे पार्श्व में बालक दामोदरराव को अपनी पीठ से बाँधे हुए रामचंद्र देशमुख था। रानी के पीछे, उसकी रक्षार्थ था कुँअर गुल मोहम्मद और केवल बीस-पच्चीस अवशिष्ट लाल कुरती सवार।

लड़ते-लड़ते रानी अपना मार्ग बना रही थी। उसके लाल कुरती सवारों में से एक को छोड़कर धीरे-धीरे सभी मारे गए। इसी समय विद्युत् वेग से तात्या टोपे रानी की सहायतार्थ आ पहुँचा। अंग्रेजी सेना ने अपनी सारी शक्ति तात्या टोपे के मार्ग का अवरोध करने में लगा दी और उसे रानी के पास नहीं पहुँचने दिया। इसी बीच रानी के साथ का अंतिम लाल कुरती सवार भी मारा गया। अब रानी के साथ केवल चार सरदार रह गए—रघुनाथसिंह, रामचंद्र देशमुख, गुल मोहम्मद और मुंदर। ये सब पीछे से दस-बारह अंग्रेज सवारों से घिरे थे। सामने से भी पैदल सेना के कुछ गोरे भयानक हमले कर रहे थे।

इसी समय एक अंग्रेज सवार ने निकट पहुँचकर अपनी पिस्तौल से मुंदर पर वार कर दिया। निशाना ठीक लगा और घायल मुंदर ने घोड़े से गिरते हुए आवाज लगाई—"बाई साहब! मैं चली।"

गुल मोहम्मद घायल मुंदर को अपने घोड़े पर डालकर रास्ता बनाने लगा। रघुनाथसिंह और तेजी से अंग्रेज सवारों पर टूट पड़ा। उसने मुंदर पर गोली चलानेवाले

अंग्रेज सवार को समाप्त कर दिया। रामचंद्र देशमुख भी शत्रुओं से घिरा था और वह बालक दामोदरराव की रक्षार्थ भयंकर युद्ध कर रहा था। महारानी लक्ष्मीबाई ने रघुनाथसिंह को देशमुख की सहायता करने का संकेत किया और अपने दोनों हाथों से तलवार चलाकर अंग्रेजी सेना का संहार करने लगी। एक अंग्रेज सैनिक ने रानी का वार बचाकर अपनी संगीन की हूल रानी के वक्ष की ओर तान दी। रानी की जान तो बच गई, पर घाव बहुत गहरा हो गया। उसने एक ही वार में उस आक्रमणकारी गोरे के दो टुकड़े कर दिए।

रानी शत्रुओं से बुरी तरह घिर गई। उसकी शक्ति जवाब दे रही थी। उसने धीरे से रघुनाथसिंह से कहा—"शत्रु सैनिक मेरे शरीर को छूने न पाएँ।" इस वाक्य को गुल मोहम्मद ने भी सुन लिया। वह और भी तेजी से वार करने लगा। उसने अंग्रेज सवारों को उलझाकर रानी के लिए रास्ता बना दिया। रानी ने अपना घोड़ा स्वर्ण-रेखा नाले की ओर मोड़ दिया। नाले को सामने आया देख रानी का घोड़ा अड़ गया और उसने नाला कूदने से इनकार कर दिया। रानी ने घोड़े को बहुत पुचकारा, गरदन थपथपाई और एड़ लगाई; पर घोड़ा टस-से-मस न हुआ। इसी समय झपटते हुए कुछ अंग्रेज सवार गुल मोहम्मद के चंगुल से छूटकर रानी के पास आ गए। रानी का घोड़ा अड़ा हुआ देखकर उनमें से एक ने रानी पर अपनी पिस्तौल से वार कर दिया। खून का फव्वारा फूट पड़ा। संगीन और गोली से घायल होकर भी रानी ने तलवार के एक ही वार से गोली चलानेवाले गोरे को धराशायी कर दिया। रानी ने घोड़े को फिर एड़ लगाई; पर उस निकृष्ट घोड़े ने आगे बढ़ने का नाम नहीं लिया और अपने दोनों अगले पैर उठाकर खड़ा हो गया। रानी स्वयं को गिरने से बचाने में लगी थी कि उसके पीछे एक अंग्रेज सवार लपक बैठा। इधर अंग्रेज सवार का लपकना था कि उधर से अंग्रेज सवार पर गुल मोहम्मद लपक पड़ा। वह अंग्रेज सवार के पास पहुँच भी न पाया था कि अंग्रेज सवार ने तलवार का भरपूर हाथ रानी के ऊपर दे मारा। इस भीषण प्रहार से रानी के मस्तक का दाहिना भाग कट गया और दाहिनी आँख बाहर निकल पड़ी। इतना होने पर भी रानी ने अपने वार से आक्रमणकारी अंग्रेज सवार का कंधा काट दिया। इस समय तक गुल मोहम्मद वहाँ पहुँच चुका था। उसने अपनी तलवार के भीषण वार से गोरे के दो टुकड़े कर दिए। शेष अंग्रेज सवारों पर भी गुल मोहम्मद काल-रूप बनकर पिल पड़ा। वे सवार मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए।

संध्या हो चुकी थी। सूर्य डूब गया था। इधर महारानी लक्ष्मीबाई के रूप में वीरता का सूरज भी डूब रहा था। वहाँ अब कोई शत्रु नहीं था। रामचंद्र देशमुख एवं रघुनाथसिंह ने सँभालकर रानी को घोड़े से उतारा। आवेश में आकर रघुनाथसिंह ने

घोड़े के पेट में कसकर लात दे मारी। वह अड़ियल घोड़ा पीछे मुड़कर भाग खड़ा हुआ।

गुल मोहम्मद ने अचेत रानी को अपने घोड़े पर लिटा, बाबा गंगादास की कुटिया तक पहुँचाया। वह उसकी देह को खून से लथपथ देख फूट-फूटकर रो रहा था। बालक दामोदरराव भी अपनी माँ की यह दशा देखकर बिलख रहा था।

बाबा गंगादास ने अचेत रानी के मुख में गंगाजल डाला। रानी की देह में कुछ चेतना लौटी। क्षीण स्वर से 'हर-हर महादेव' कहती हुई वह फिर अचेत हो गई। बाबा गंगादास ने पास लेटी हुई मुंदर के मुख में भी गंगाजल की कुछ बूँदें डालीं। उसका तो प्राणांत हो चुका था।

महारानी लक्ष्मीबाई की देह में फिर सिहरन हुई और एक बार उसे फिर चेतना आई। उसके मुख से अंतिम स्वर निकले—"ओऽम् वासुदेवाय नमः," इसी स्वर के साथ उसके शरीर में एक झटका-सा लगा और उसकी गरदन लुढ़क गई। वीरता का सूर्य अस्त हो गया। जो जीवन-ज्योति १९ नवंबर, १८३५ को ज्योतित हुई थी वह १८ जून, १८५८ को बुझ गई। सभी साथी बिलख-बिलखकर रोने लगे। बाबा गंगादास ने उन सबको धीरज बँधाया और तब उन्होंने रानी की पार्थिव देह का दाह-संस्कार करने का उपक्रम किया। पास ही घास की गंजी थी। समस्या लकड़ियों की थी। बाबा गंगादास की झोंपड़ी को उधेड़कर लकड़ियाँ निकाली गईं और पास की गंजी पर अरथी सजाई गई। मुंदर के शव की अरथी भी पास में ही सजाई गई। सबने मिलकर अग्नि प्रज्वलित की। दोनों चिताएँ धू-धू करके जलने लगीं। गुल मोहम्मद ने अपनी वरदी उतारकर चिता-ज्वाल को अर्पित कर दी।

रामचंद्र देशमुख बालक दामोदरराव की रक्षार्थ उसे लेकर दक्षिण की ओर निकल गया। रघुनाथसिंह छिपकर इस तैयारी के साथ बैठ गया था कि यदि अंग्रेज सैनिक रानी को खोजते हुए उधर पहुँचें तो वह उन्हें मजा चखा सके। गुल मोहम्मद लँगोटी लगाए हुए जलती चिता के समीप ही लेट गया। दिन-भर का थका-माँदा और भूखा-प्यासा वह था ही, गिरते ही अचेत-सा हो गया। सुबह जब उसकी आँख खुली तो उसने देखा कि चिता राख की ढेरी में परिणत हो चुकी है। उसने इधर-उधर से ईंटें बटोरकर चिता-भस्म पर एक कच्चा चबूतरा बना दिया और कुछ भस्म अपनी देह से लपेट ली। कहीं से लाकर उसने चबूतरे पर कुछ फूल चढ़ा दिए। सुबह होने पर अंग्रेजों का एक सैनिक दल रानी को खोजता हुआ उधर पहुँचा तो उसने गुल मोहम्मद से चबूतरे के बारे में पूछा। गुल मोहम्मद तो फकीर बन ही चुका था। उसने कह दिया—"यह हमारे पीर साहब का मजार है।"

ग्वालियर की भूमि में यह कच्चा चबूतरा अब महारानी लक्ष्मीबाई की

समाधि के रूप में परिणत हो चुका है। उस समाधि के दर्शन से प्रत्येक दर्शक के मन में ग्वालियर की गद्दार गद्दी के प्रति घृणा के भाव और महारानी लक्ष्मीबाई की वीरता एवं बलिदान के प्रति श्रद्धा के भाव एक साथ उमड़ने लगते हैं।

□

★ लोहार गुंडा

जिस युद्ध में वीरवर लोहार गुंडा ने वीरगति प्राप्त की, उस घटना को दूसरा जलियाँवाला बाग हत्याकांड भी कहा जा सकता है। यह नर-संहार वर्तमान मध्य प्रदेश के बस्तर जिले के आदिवासी क्षेत्र में हुआ था। अंग्रेजों ने इतनी क्रूरता के साथ इस विद्रोह का दमन किया कि इतिहासकारों और देशवासियों के सामने इस नर-संहार को आने ही नहीं दिया।

तत्कालीन बस्तर नरेश और अंग्रेज रेजीडेंट के बीच इस बात पर मन-मुटाव हो गया कि अंग्रेज लोग बस्तर के आदिवासियों के धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप करने लगे थे। बस्तर नरेश ने इसका विरोध किया तो अंग्रेजों ने उनको भाँति-भाँति से सताना प्रारंभ कर दिया।

बस्तर के आदिवासी लोग अपने राजा को ईश्वर ही मानते थे। राजा के प्रति अंग्रेज रेजीडेंट द्वारा किए गए दुर्व्यवहार के कारण आदिवासियों में असंतोष भड़क उठा और उस असंतोष ने शीघ्र ही विद्रोह का रूप धारण कर लिया। एक आदिवासी नौजवान लोहार गुंडा इस विद्रोह का नेता था।

हजारों की संख्या में आदिवासियों ने जंगल में एकत्र होकर इस बात पर विचार-विमर्श किया कि अंग्रेजी सेना पर आक्रमण करके रेजीडेंट को मार दिया जाए। वे लोग अपनी योजना बना ही रहे थे कि अंग्रेजों के गुप्तचरों ने इसकी सूचना रेजीडेंट को दे दी। रेजीडेंट ने अवसर का लाभ उठाने के इरादे से एक बड़ी और शस्त्र-सज्जित सेना भेज दी। उस सेना ने आदिवासियों को तीन ओर से घेरकर अंधाधुंध गोलीवर्षा प्रारंभ कर दी। आदिवासी होलों की भाँति भुनने लगे। कहते हैं कि उस भीषण नर-संहार में लगभग एक हजार आदिवासी मारे गए। अंग्रेजों ने भारी दमन करके इस घटना को फैलने नहीं दिया।

□

★ संत वरयामसिंह

संत वरयामसिंह

१८ जनवरी को मि. कॉवन की आज्ञा से सोलह कूके मालेरकोटला में तोपों से बाँधकर उड़ा दिए गए। इनमें से एक विद्रोही का नाम था वरयामसिंह। वह संत था और महाराजा पटियाला का रिश्तेदार था। महाराजा पटियाला ने अंग्रेजों का साथ दिया था। महाराजा पटियाला का सिफारिशी पत्र मि. कॉवन के पास पहुँच चुका था। वह वरयामसिंह को मृत्युदंड से बचाना चाहता था। जब उसे तोप के सामने लाया गया तो मि. कॉवन ने उसे यह कहकर हटा दिया कि इसका कद छोटा है और इसकी छाती तोप के सामने ठीक तरह से नहीं आती।

जब संत वरयामसिंह को मृत्युदंड नहीं दिया गया तो उसे बड़ा दु:ख हुआ। उसने सोचा कि देश के लिए मेरे सभी साथी, यहाँ तक कि तेरह वर्ष का छोटा बालक भी कुरबान हो गया और मैं कितना अभागा हूँ, जो शहीद होने के सौभाग्य से वंचित हो रहा हूँ। वह लपककर, एक बड़ा-सा पत्थर तोप के सामने रखकर उसपर खड़ा हो गया और बोला—"देखो, मेरी छाती तोप के सामने ठीक तरह से आ गई है, अब फायर करो।"

मि. कॉवन ने सोचा कि यदि इसे तोप से उड़ा देंगे तो महाराजा पटियाला को क्या उत्तर देंगे, अत: उसने कहा कि एक बार जब हम तुम्हें माफी दे चुके हैं, तो हम अपनी बात पर कायम रहेंगे और तुम्हें तोप से नहीं उड़ाएँगे। संत ने सोचा कि पत्थर उठाकर उसके ऊपर खड़े होने की युक्ति भी बेकार गई। उसके दिमाग में फौरन

दूसरी युक्ति कौंध गई। उसने सोचा कि यदि कोई चुभती हुई बात मि. कॉवन से कही जाए तो शायद वह क्रोधित होकर मृत्युदंड की आज्ञा दे दे। संत वरयामसिंह ने मि. कॉवन को सुनाते हुए कहा, "मैं समझ गया कि तुम मुझे तोप से क्यों नहीं उड़ा रहे! मैं जीता-जागता शेर तुम्हारे सामने खड़ा हूँ। मुझे देखकर तुम्हारा कलेजा काँप रहा है। मुझे लगता है कि तुम आदमी के बच्चे नहीं, गीदड़ के बच्चे हो।"

इतनी तीखी तथा चुभती हुई बात सुनकर मि. कॉवन को क्रोध आ गया और उसकी आज्ञा से संत वरयामसिंह को भी तोप से उड़ा दिया गया। उस वीर ने देश पर न्योछावर होकर शहीद होने का गौरव अर्जित कर लिया।

कूका विद्रोह के जनक गुरु रामसिंह को उनके ग्यारह साथियों के साथ देश-निकाला का दंड दिया गया। उन्हें रंगून की जेल में रखा गया। वहीं सन् १८८५ में उसका प्राणांत हो गया।

वीर कूकों के बलिदान देश को एक गौरव गाथा दे गए।

□

★ वांची अय्यर

भारत के क्रांतिकारियों को जब यह पता चला कि इंग्लैंड के सम्राट् जॉर्ज पंचम सन् १९११ की सर्दियों में शहंशाह के रूप में अपनी ताजपोशी कराने के लिए भारत पहुँच रहे हैं तो उनमें आक्रोश की लहर दौड़ गई। सम्राट् का आगमन उनके जले पर नमक छिड़कने के समान था। अब सम्राट् के आगमन से अंग्रेजों के हौसले और भारतीयों पर अत्याचार बढ़ने की आशंका थी।

भारत के क्रांतिकारियों की बैठक पांडिचेरी में हुई। वहाँ बंगाल के क्रांतिकारी पहले से ही मौजूद थे, दक्षिण भारत के कुछ क्रांतिकारी भी वहाँ जा पहुँचे थे। तमिल भाषा के प्रसिद्ध कवि सुब्रह्मण्यम भारती 'इंडिया' नाम का एक दैनिक पत्र पांडिचेरी से ही निकालकर विद्रोह का वातावरण तैयार कर रहे थे। उस समय वहाँ बी.बी.एस. अय्यर नाम के एक प्रभावशाली व्यक्ति भी रह रहे थे, जो लंदन में 'अभिनव भारत' के सदस्य के रूप में विनायक दामोदर सावरकर के साथ क्रांति कार्यों में भाग ले चुके थे। श्री अय्यर बैरिस्टरी पढ़ने लंदन गए थे और भारत लौटकर वे क्रांति का प्रसार कर रहे थे।

पांडिचेरी में होनेवाली क्रांतिकारियों की बैठक में तय किया गया कि जॉर्ज पंचम के भारत आने से बहुत पहले ही यहाँ साम्राज्य-विरोधी उग्र आंदोलन छेड़ा

जाए और अंग्रेज अफसरों की हत्याएँ करके उन्हें आतंकित किया जाए। दक्षिण के क्रांतिकारियों ने प्रस्ताव रखा कि वे टिन्नेवेली के कलेक्टर मि. रॉबर्ट विलियम ऐश की हत्या करके जॉर्ज पंचम की अगवानी की भूमिका बनाना चाहते हैं। उन्हें मि. ऐश की हत्या करने की अनुमति दे दी गई।

टिन्नेवेली के कलेक्टर की हत्या दक्षिण के क्रांतिकारी इसलिए करना चाहते थे, क्योंकि वह अपनी दमन नीति के लिए बहुत बदनाम हो चुका था। वह एक आई.सी.एस. अफसर था और जातिवाद उसमें कूट-कूटकर भरा हुआ था। भारतीयों के स्वदेशी आंदोलन और आजादी के आंदोलन को वह निर्ममतापूर्वक कुचल रहा था। यह वही कलेक्टर था, जिसने ट्यूटीकोरिन के क्रांतिकारियों—चिदंबरम् पिल्लै और सुब्रह्मण्यम शिव को लंबी-लंबी सजाएँ दिलवाई थीं। टिन्नेवेली के क्रांतिकारियों ने तय कर लिया कि कलेक्टर मि. ऐश की हत्या करके जॉर्ज पंचम की अगवानी की भूमिका तैयार करनी है।

दक्षिण लौटकर क्रांतिकारियों ने अपने संगठन को व्यवस्थित रूप प्रदान किया। उन्होंने अपने संगठन का नाम 'भारत माता संघ' रखा और पूरे प्रांत में उसकी कई शाखाएँ स्थापित की गईं। इन शाखाओं का केंद्र ट्यूटीकोरिन में रखा गया। भारत की आजादी और भारत से अंग्रेजों का निष्कासन ही संघ का मुख्य उद्देश्य था।

ट्यूटीकोरिन में संपन्न हुई एक बैठक में एक सदस्य क्रांतिकारी वांची अय्यर ने कलेक्टर मि. रॉबर्ट विलियम ऐश की हत्या का दायित्व अपने ऊपर लिया। वांची अय्यर ट्रावनकोर के वन विभाग में एक क्लर्क था और वह बहुत कट्टर विचारों का व्यक्ति था। अपने अत्यधिक उत्साह की झोंक में वांची अय्यर और उसके साथियों ने मि. ऐश को एक लिखित चेतावनी भी दे दी—

'भारत माता संघ के हम सदस्यगण आपको चेतावनी देते हैं कि आप हम क्रांतिकारियों के प्रति अपनी दमन नीति का परित्याग कर दें, अन्यथा हम आपके धड़ से आपके सिर को अलग करके उसके टुकड़े-टुकड़े कर देंगे।

आपके

सदस्यगण, भारत माता संघ'

यह चेतावनी-भरा पत्र पाकर कलेक्टर मि. ऐश और सभी अंग्रेज अफसरों में खलबली मच गई। उन्होंने अपनी सुरक्षा के पूरे प्रबंध कर लिये। चेतावनी-भरा पत्र जाँच-पड़ताल के लिए डिप्टी इंस्पेक्टर जनरल पुलिस को १२ दिसंबर, १९१० को दे दिया।

मि. ऐश की हत्या के पूर्व समस्त दक्षिण भारत में जोशीला वातावरण तैयार किया गया। 'वंदेमातरम्' शीर्षक से एक प्रपत्र भी संस्था में बाँटा गया, जिसके द्वारा

युवकों को प्रेरित किया गया कि वे अंग्रेजों की हत्याएँ करने में संकोच न करें और भारत से ब्रिटिश साम्राज्य को उखाड़ फेंकने की प्रतिज्ञा लें।

इसी प्रकार जोशीले वातावरण में एक दिन १७ जून, १९११ को वांची अय्यर ने अपने शिकार कलेक्टर मि. ऐश को घेर लिया। दोपहर के लगभग ग्यारह बजे का समय था। मि. ऐश अपनी पत्नी के साथ टिन्नेवेली से आनेवाली ट्रेन से मयांची स्टेशन पर उतरे। वहाँ उन्हें ट्यूटीकोरिन जाने के लिए 'बोट मेल' नाम की ट्रेन में सवार होना था। उनके साथ अर्दली भी था। टिन्नेवेली से आनेवाली ट्रेन से उतरकर वे प्लेटफॉर्म पर खड़ी हुई एक खाली ट्रेन के प्रथम श्रेणी के डिब्बे में जा बैठे। उनका अर्दली उस प्लेटफॉर्म पर सामान रखने लगा, जिसपर ट्यूटीकोरिन जानेवाली 'बोट मेल' नामक ट्रेन को आना था। खाली गाड़ी में बैठे हुए मि. ऐश एक अखबार पढ़ने लगे। उनकी पत्नी भी उनके पास बैठी हुईं, अर्दली को सामान रखते हुए देखने लगीं। इसी समय वांची अय्यर फुरती से आया और उसने मि. ऐश का निशाना साधकर दो गोलियाँ दाग दीं। मि. ऐश नीचे लुढ़क गए। उन्हें अस्पताल ले जाया गया, जहाँ उनकी मृत्यु हो गई।

जिस समय वांची अय्यर ने मि. ऐश पर पहली गोली छोड़ी तो लोगों ने उस आवाज की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। लोगों का खयाल था कि किसीने सोडा वाटर की बोतल का ढक्कन खोला है। जब दूसरी गोली चलाई गई तथा श्रीमती ऐश ने सहायता के लिए गुहार मचाई तो भाग-दौड़ प्रारंभ हो गई और पुलिस के सिपाही एवं कुछ अन्य लोग आक्रामक की ओर झपट पड़े। वांची अय्यर भागकर यात्री विश्रामगृह में पहुँचा और वहाँ उसने अपने गले में गोली मारकर अपनी इहलीला समाप्त कर ली। उन दिनों इस प्रकार स्वयं को समाप्त करना आत्महत्या नहीं माना जाता था। वांची अय्यर के पास से एक स्वीकृति पत्र तमिल भाषा में लिखा हुआ पाया गया, जिसमें लिखा था—

'इस पुण्य भूमि पर राम, कृष्ण, शिवाजी और गोविंदसिंह राज कर चुके हैं और उन लोगों ने प्रत्येक धर्म की रक्षा की थी, और अब ब्रिटिश लोग इसी भारत में म्लेच्छ जॉर्ज पंचम की ताजपोशी करने जा रहे हैं। अतएव प्रत्येक भारतवासी अंग्रेजों को भारत से भगाकर स्वराज्य की स्थापना करने में प्रयत्नशील है।

'मद्रास के तीन हजार युवकों ने प्रतिज्ञा की है कि ज्यों ही जॉर्ज पंचम भारत की भूमि पर कदम रखे, उसकी हत्या कर दी जाए। यह वांची, जो उन तीन हजार में से सबसे तुच्छ है, कलेक्टर मि. ऐश को गोली मारकर उसके प्राण हरण कर रहा है।'

वांची अय्यर के पास पेरिस से प्रकाशित होनेवाले 'वंदेमातरम्' पत्र की

कतरन भी बरामद की गई। इस पत्र का संपादन भारत की महान् क्रांतिकारिन् मदाम भीकाजी कामा करती थीं। उस कतरन में छपा था—'किसी सभा में, किसी बंगले में, किसी ट्रेन में, किसी गिरजाघर या दुकान में—जहाँ भी अवसर मिले, अंग्रेजों को मार डालना चाहिए—वह व्यक्ति चाहे कोई अफसर हो या साधारण अंग्रेज।'

मि. ऐश की हत्या के पश्चात् पुलिस अत्यधिक सक्रिय हो उठी। कई निरपराध लोगों को गिरफ्तार किया गया और जेलों में उन्हें अनेक प्रकार की यातनाएँ दी गईं। उन लोगों पर मुकदमे चलाए गए और उनके विरुद्ध झूठे-सच्चे साक्ष्य प्रस्तुत किए गए।

इधर पुलिस निरपराध लोगों को तंग कर रही थी और उधर मदाम कामा पेरिस से अपने पत्र 'वंदेमातरम्' के माध्यम से अंग्रेजों एवं अंग्रेजभक्त लोगों की खबर ले रही थीं। 'वंदेमातरम्' के जुलाई अंक में प्रकाशित हुआ—

'जबकि हिंदुस्तान में अंग्रेजों के कुछ चमचे, गुलाम तथा पिट्ठू सड़कों पर रॉयल सरकार के जोकरों की तरह परेड करते फिर रहे थे और कुत्तों की तरह इंग्लैंड के शासक के कदमों पर लोट रहे थे; हमारे देश के दो युवकों ने अपने साहस का परिचय देकर टिन्नेवेली और मैमनसिंह में यह सिद्ध कर दिया कि हिंदुस्तान सो नहीं रहा था।'

मैमनसिंह की जिस घटना का उल्लेख मदाम कामा ने किया, वह ऐश की हत्या के दो दिन बाद, अर्थात् १९ जून को ही घटित हुई। किसी क्रांतिकारी ने पुलिस इंस्पेक्टर राजकुमार रे को गोली से उड़ा दिया।

आख़िरकार 'टिन्नेवेली षड्यंत्र कांड' का फैसला सुना दिया गया। कुछ लोगों का अपराध सिद्ध नहीं हो सका और उन्हें छोड़ दिया गया। नीलकंठ ब्रह्मचारी, संकरा कृष्ण अय्यर और कुछ अन्य को दो वर्ष से लेकर सात वर्ष तक की कैद की सजाएँ दी गईं।

इस प्रकार दक्षिण भारत के युवकों ने भी दिखा दिया कि भारत माता की आजादी के लिए वे भी अपना खून बहा सकते हैं।

□

★ वारींद्रकुमार घोष

बड़ौदा विश्वविद्यालय के सभागृह में आमंत्रित श्रोताओं की उपस्थिति में संगीत का कार्यक्रम चल रहा था। सभागृह श्रोताओं से खचाखच भरा था और सभी

वारींद्रकुमार घोष

की दृष्टि मंच की ओर एक बंगाली नौजवान पर केंद्रित थी, जो अपने सारंगीवादन से श्रोताओं को रस-विभोर कर रहा था। वह बंगाली नौजवान मोटी काली किनार की धोती के साथ कुरते में बहुत ही फब रहा था और उसके कंधे से झूलता हुआ सुनहरी किनार का दुपट्टा उसकी कमर तक लटककर उस कलाकार के व्यक्तित्व को आकर्षक बना रहा था। संगीत की लहरियों से प्रभावित लोग उसी प्रकार झूम रहे थे, जिस प्रकार नाग बीन की धुन पर झूमता है। संगीत की समाप्ति पर सभागृह तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा। तालियों की ध्वनि शांत होने पर अध्यक्ष ने उठकर संक्षिप्त-सा वक्तव्य दिया—

"अपने इस नवोदित कलाकार की संगीत-साधना से हम सभी लोग प्रसादित हुए हैं। हमें यह कहते हुए बहुत ही हर्ष होता है कि कलाकार हमारे अपने ही परिवार का व्यक्ति है। हमारे कॉलेज के सुयोग्य वाइस प्रिंसिपल श्री अरविंद घोष के लघु भ्राता वारींद्रकुमार घोष के रूप में यह नवोदित संगीतज्ञ आनेवाले कल का एक महान् कलाकार बनकर हम सभी को गर्वित होने का अवसर प्रदान करेगा, यह हमारा दृढ़ विश्वास है।"

सारंगीवादक के रूप में लोगों ने वारींद्रकुमार घोष का परिचय प्राप्त किया। उस समय उन्हें यह ज्ञात नहीं हो सका कि जिसे वे नवोदित कलाकार के रूप में देख रहे थे, वह आनेवाले समय में भारत के एक महान् क्रांतिकारी के रूप में प्रतिष्ठित होगा।

वारींद्रकुमार घोष के पिता डॉ. कृष्णधन घोष कलकत्ता के एक प्रतिष्ठित डॉक्टर थे। वे अंग्रेजी सेवा में रत थे। डॉ. घोष उन व्यक्तियों में से थे, जिनका विश्वास था कि भारत का कल्याण अंग्रेजियत को अपनाने में ही है। उन्होंने अपने दोनों पुत्रों—अरविंद और वारींद्र को इंग्लैंड में ही शिक्षा दिलाई थी। वारींद्र का तो जन्म भी सन् १८८० में इंग्लैंड में ही हुआ था। डॉ. घोष ने अपनी पत्नी को पहले ही इंग्लैंड भेज दिया था कि बच्चे का जन्म वहीं हो, उसे वहाँ की नागरिकता मिले और वह अंग्रेजी संस्कारों में पले।

डॉ. कृष्णधन घोष की इच्छा की पूर्ति यहाँ तक तो हो गई कि उनके बच्चे

का जन्म इंग्लैंड में हुआ, पर बालक वारींद्र अंग्रेजी वातावरण में पलकर भी भारतीय रहा। उसकी शिक्षा-दीक्षा लंदन में हुई। अध्ययन के क्रम में उसे इतिहास विषय के प्रति गहन रुचि उत्पन्न हो गई और वह भारत के इतिहास-पुरुषों पर गर्व करने लगा।

अपने बड़े भाई अरविंद घोष के साथ वारींद्र भारत लौट आया। अरविंद घोष की नियुक्ति बड़ौदा विश्वविद्यालय के कॉलेज में वाइस प्रिंसिपल के पद पर हुई थी। बड़ौदा में रहकर ही वारींद्र ने संगीत-साधना की। वह क्रांतिकारियों के संपर्क में भी बड़ौदा रहते हुए आया और उसके संगीतज्ञ रूप ने उसके क्रांतिकारी स्वरूप को एक कवच प्रदान किया।

वारींद्रकुमार घोष का हृदय भारत की आजादी के लिए छटपटाता रहता था। उसने छत्रपति शिवाजी को अपने आदर्श के रूप में स्वीकार किया। उसकी कल्पना थी कि अंग्रेजों के साथ गुरिल्ला संघर्ष प्रारंभ करके उसे व्यापक युद्ध के रूप में नियोजित किया जाए। वह ऐसे युवकों की तलाश में था, जिनके हृदय देशभक्ति से ज्योतित हों और जो भारत की आजादी के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने की भावना से प्रेरित हों। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने सन् १९०३ में बंगाल भ्रमण किया; पर लोगों के हृदयों में जिस आग की उसे तलाश थी, वह उसे नहीं मिल सकी। वह बड़ौदा लौटकर उपयुक्त समय की प्रतीक्षा करने लगा।

वारींद्रकुमार घोष को उपयुक्त समय की अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। शासन की सुविधा का बहाना लेकर भारत के वाइसराय लॉर्ड कर्जन ने बंगाल के विभाजन की घोषणा कर दी। सारा बंगाल लॉर्ड कर्जन के इस निर्णय के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ और ब्रिटिश शासन के विरोध में प्रांतव्यापी आंदोलन उग्र से उग्रतर होता गया। यह एक ऐसा भावात्मक आघात था, जिसने समूचे बंगाल में आक्रोश की लहर फैलाकर बंगालियों को इस निर्णय का प्रतिकार करने के लिए कटिबद्ध कर दिया।

वारींद्रकुमार घोष ने स्थिति का लाभ उठाया। उसे यह समझते देर नहीं लगी कि किसी भी प्रकार का खुला आंदोलन दबा दिया जाएगा। उसने धार्मिकता और अध्यात्म की ओट में नवयुवकों का अच्छा-खासा क्रांतिकारी संगठन खड़ा कर दिया। बंगाल के नौजवान क्रांति मंत्र से दीक्षित होने लगे। प्रकट में वे लोग मंदिरों के आसपास अखाड़ों का संचालन कर रहे थे, जहाँ युवकों को लाठी, तलवार व भाले चलाना सिखाया जाता था और उन्हें बलवान बनने की प्रेरणा दी जाती थी। उन्हें भारत की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विरासत से भी परिचित कराया जा रहा

था। परोक्ष रूप से वे लोग प्रतिज्ञाबद्ध होकर भारत से अंग्रेजी राज्य को उखाड़ फेंकने की योजना बना रहे थे। बंग-भंग आंदोलन अब भारत स्वातंत्र्य आंदोलन में परिवर्तित हो चुका था। वारींद्रकुमार घोष के प्रयत्नों के समानांतर ही पूर्वी बंगाल के ढाका और पश्चिमी बंगाल के कलकत्ता नगरों में 'अनुशीलन समिति' नाम से एक अन्य क्रांतिकारी संगठन भी सक्रिय था।

वारींद्रकुमार घोष ने कलकत्ता में एक आश्रम की स्थापना की और 'युगांतर' नाम से एक मासिक पत्र के प्रकाशन का कार्य प्रारंभ कर दिया। राष्ट्रीय भावना के प्रचार में यह पत्र बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ और केवल एक वर्ष में ही, अर्थात् सन् १९०८ में 'युगांतर' की बिक्री की संख्या बीस हजार प्रतियों तक पहुँच गई। 'युगांतर' के संपादन का कार्यभार वारींद्रकुमार घोष ने स्वामी विवेकानंद के लघु भ्राता भूपेंद्रनाथ दत्त को सौंपा। 'युगांतर' के संपादकीय लेख बहुत उग्र हुआ करते थे। एक उत्तेजक संपादकीय लेख लिखने के अपराध में कलकत्ता के जिला जज मि. किंग्सफोर्ड ने संपादक भूपेंद्रनाथ दत्त को एक वर्ष के कठोर कारावास का दंड दे दिया। किंग्सफोर्ड के अत्याचारों से बंगाल के युवक बहुत त्रस्त थे। वे उसे मारने की योजनाएँ बनाने लगे।

प्रत्यक्ष रूप से तो वारींद्रकुमार घोष ने एक आश्रम की स्थापना की थी; पर वास्तव में वह बम बनाने का कारखाना था, जहाँ बंगाल के युवक क्रांतिकारी बम निर्माण के प्रयत्न कर रहे थे। इसी दल के हेमचंद्र दास अपनी जायदाद का कुछ हिस्सा बेचकर बम बनाना सीखने के लिए पेरिस चले गए और कुछ दिन बाद वे बम बनाना सीखकर, भारत वापस आकर अपने दल के लोगों को बम बनाना सिखाने लगे।

कलकत्ता के जिला जज मि. किंग्सफोर्ड और बंगाल के क्रांतिकारियों के बीच स्पर्द्धा चल रही थी। किंग्सफोर्ड इन क्रांतिकारियों को कठोर दंड देने पर तुला हुआ था और क्रांतिकारी लोग उसे बम का निशाना बनाने पर तुले हुए थे। खुदीराम बोस एवं प्रफुल्लकुमार चाकी नाम के दो युवकों ने किंग्सफोर्ड को खत्म करने का काम अपने ऊपर लिया। इसी बीच स्थानांतरित होकर किंग्सफोर्ड मुजफ्फरपुर जा पहुँचा। खुदीराम बोस तथा प्रफुल्लकुमार चाकी ने उसका पीछा मुजफ्फरपुर तक किया और एक रात अवसर पाकर उसकी बग्घी पर बम-प्रहार कर दिया। दुर्भाग्यवश वह बग्घी किंग्सफोर्ड की न होकर कैनेडी नाम के वकील की निकली, जिसमें कैनेडी परिवार की दो महिलाएँ बैठकर जा रही थीं। बम-प्रहार से उनकी मृत्यु हो गई। दोनों क्रांतिकारी भाग निकले। प्रफुल्लकुमार चाकी ने तो अपनी पिस्तौल से स्वयं पर वार करके अपनी इहलीला समाप्त कर ली। खुदीराम बोस गिरफ्तार हुआ

और उसे फाँसी हुई।

इस बम विस्फोट ने सारे बंगाल में सनसनी फैला दी। ब्रिटिश सरकार के कान खड़े हो गए। तेजी से क्रांतिकारियों की गिरफ्तारियाँ होने लगीं। थोड़े ही दिनों के अंदर वारींद्रकुमार घोष और उनके बड़े भाई अरविंद घोष पकड़े गए। अरविंद घोष भी उस समय क्रांतिकारी आंदोलन में भाग ले रहे थे। इनके अन्य साथियों में उपेंद्रनाथ बनर्जी, उल्लासकर दत्त, इंदुभूषण रे, कन्हाईलाल दत्त और हेमचंद्र दास आदि गिरफ्तार हो गए। ब्रिटिश सरकार ने इन लोगों पर 'अलीपुर बम केस' नाम से एक अभियोग चलाया।

सरकार अलीपुर बम केस के अभियुक्तों को तरह-तरह की यातनाएँ दे रही थी और निर्दोष लोगों को फाँसी दे रही थी। क्रांतिकारियों ने अन्य लोगों को दमन एवं यातनाओं से बचाने के लिए तय किया कि वे अपनी योजना को स्वीकारते हुए इस प्रकार के बयान दे दें, जिससे और गिरफ्तारियाँ न हों तथा जो लोग गिरफ्तार हुए हैं, वे यातनाएँ पाने से बच जाएँ। इस निर्णय के अनुसार वारींद्रकुमार घोष ने जो बयान दिया, उसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

'मैंने १९०७ के प्रारंभ से अब तक चौदह-पंद्रह नवयुवकों को एकत्रित किया। मैंने इन नवयुवकों को धार्मिक पुस्तकें पढ़वाईं और उन्हें राजनीति की शिक्षा दी। हम लोग हमेशा यही सोचते थे कि आगे चलकर एक क्रांति होगी और इसके लिए अस्त्र-शस्त्र भी एकत्रित किए जाने लगे। मैंने इन दिनों ग्यारह पिस्तौलें, चार राइफलें और एक बंदूक एकत्रित कर ली थीं। हमारे नवयुवकों में एक उल्लासकर दत्त भी था। उसके घर एक प्रयोगशाला थी। उसीमें वह अपने प्रयोग किया करता था।

'उल्लासकर दत्त की मदद से हमने मुरारीपुकुर रोड के ३२ नं. के मकान में बम बनाना प्रारंभ किया। इसी बीच हमारे एक मित्र हेमचंद्र दास अपनी जायदाद का एक हिस्सा बेचकर बम बनाना सीखने के लिए पेरिस चले गए। जब वे लौट आए तो बम बनाने के हमारे कारखाने में हेमचंद्र दास भी शामिल हो गए। हम कभी भी यह नहीं समझते थे कि राजनीतिक हत्याओं से आजादी मिल जाएगी। हम हत्याएँ केवल इसलिए करते हैं कि हम समझते हैं कि जनता को इसकी आवश्यकता है।'

अलीपुर बम केस के चौंतीस अभियुक्तों में से कुछ मुखबिर हो गए। मुखबिरों को भी क्रांतिकारियों ने ठिकाने लगा दिया। अंततः पंद्रह अभियुक्तों को सम्राट् के विरुद्ध षड्यंत्र रचने के आरोप में विभिन्न प्रकार की सजाएँ मिलीं। अरविंद घोष की वकालत कलकत्ता के प्रसिद्ध वकील चित्तरंजन दास ने की और वे निर्दोष मानकर छोड़ दिए गए। वारींद्रकुमार घोष, उल्लासकर दत्त, हेमचंद्र दास

और उपेंद्रनाथ बनर्जी को आजीवन कारावास का दंड देकर अंडमान द्वीप में भेज दिया गया।

अंडमान जेल में वारींद्रकुमार घोष और उनके साथियों को भाँति-भाँति की यातनाएँ दी गईं। भारत माता की आजादी के चिंतन में ये यातनाएँ उन्होंने हँसते-हँसते झेलीं और अपने में कभी कोई कमजोरी नहीं आने दी।

प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् वारींद्रकुमार घोष को भारत लाया गया। वे कुछ दिन कलकत्ता और कुछ दिन अरविंद आश्रम, पांडिचेरी में रहे। स्वाधीन भारत में उनकी मृत्यु हुई।

वारींद्रकुमार घोष द्वारा लिखित पुस्तक 'मेरी निर्वासन कहानी' ने बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की।

□

★ वासुदेव बलवंत फड़के

उस समय पूना में अंग्रेजी फौज का दबदबा था। फौज के वित्त विभागीय कार्यालय में एक तेजवंत नवयुवक उस दिन निबटाई जानेवाली फाइलों को अपने अंग्रेज साहब के सामने प्रस्तुत करने के लिए तैयार कर रहा था। यह काम उसे नित्य ही करना पड़ता था और नित्य ही घर पहुँचने में उसे काफी देर हो जाती थी। आज वह दफ्तर का समय समाप्त होते ही जल्दी छूट जाना चाहता था; क्योंकि नगर के सार्वजनिक सभास्थल पर आज परम देशभक्त न्यायमूर्ति रानडे का भाषण आयोजित था। वह इस भाषण से वंचित नहीं होना चाहता था; क्योंकि वह रानडे महोदय का विशेष भक्त था और उनके उत्तेजक भाषणों से उसके मन को प्रेरणा मिलती थी। इस तेजवंत नवयुवक का नाम वासुदेव बलवंत फड़के था।

वासुदेव बलवंत फड़के

फड़के फाइलों का बंडल साहब के पास ले जाने वाला ही था कि उसी समय उसके एक मित्र ने आकर समाचार दिया—

'तुम्हारे जन्म-स्थान शिरढौन में तुम्हारी माँ गंभीर रूप से बीमार हो गई हैं और वह तुम्हारे नाम की रट लगाए हुए हैं।'

समाचार सुनकर फड़के चिंतित हो उठा। फाइलों का बंडल ले जाकर उसने साहब की टेबल पर रखा और विनीत भाव से बोल उठा—

"सर! गाँव में मेरी माताजी गंभीर रूप से बीमार हो गई हैं। मुझे शीघ्र ही बुलाया है। मुझे एक हफ्ते की छुट्टी दे दीजिए। आपकी बड़ी कृपा होगी।"

"नहीं! एक दिन की भी छुट्टी नहीं मिलेगी।" साहब ने रूखा-सा उत्तर दे दिया।

"सर, मेरी माँ को कुछ हो गया तो फिर मैं क्या करूँगा?" फड़के ने रुआँसे स्वर में कहा।

"ज्यादा-से-ज्यादा तुम्हारी माँ मर ही तो जाएगी। यदि माँ का ही मोह था तो नौकरी करने क्यों आए!" साहब ने और बेरुखी के साथ कहा।

"सर, तो मैं अपनी माँ के लिए नौकरी का मोह छोड़ रहा हूँ। मैं अपना त्याग-पत्र लिखकर आपको दिए जाता हूँ। मेरी माँ मुझे पुकार रही है।"

यह कहकर फड़के अपनी टेबल पर गया और त्याग-पत्र लिखकर साहब की टेबल पर पटक गया। अंग्रेज साहब कुछ कहे, इसके पहले ही वह दफ्तर से बाहर हो गया। सार्वजनिक सभास्थल उसके घर के रास्ते में ही पड़ता था। जिस समय वह उधर से निकला, कोई राजनेता भाषण दे रहे थे।

उनका अंतिम वाक्य था—

"देश के नौजवानों को अंग्रेजों द्वारा दी गई चुनौती को स्वीकार करना चाहिए। वह तारुण्य ही कैसा, जो कुछ करके दिखा न सके! अपने देश की स्वाधीनता के लिए आज के नौजवानों को फिर से महाराणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी बनकर दिखाने की जरूरत है।"

वासुदेव बलवंत फड़के चला गया। उसके मन में वही वाक्य गूँजता रहा—

'अपने देश की स्वाधीनता के लिए आज के नौजवानों को फिर से महाराणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी बनकर दिखाने की जरूरत है।'

फड़के अपने गाँव शिरढौन जा पहुँचा। उसकी माँ बच तो नहीं सकी, पर उसे संतोष था कि वह उसके अंतिम दर्शन और उसकी थोड़ी-बहुत सेवा-शुश्रूषा कर सका। अपनी माँ की मृत्यु के पश्चात् एक विचार उसके मन में बार-बार कौंधने लगा—

'क्या हुआ, जो मेरी माँ मर गई! देर-सबेर सभी माताएँ मरती हैं। कौन बचा सका है अपनी माँ को! पर, एक माँ है, जिसे हम सबको मिलकर बचाना चाहिए।

वह माँ हम सबकी माँ है—वह भारत माता है। हमारी भारत माता को परदेशी फिरंगियों ने दासता के बंधनों में जकड़ रखा है। हम सबको मिलकर अपनी भारत माता को विदेशी दासता के चंगुल से मुक्त करना चाहिए।'

बार-बार कौंधकर इस विचार ने फड़के के मन में संकल्प का रूप धारण कर लिया। वह हमेशा के लिए अपना गाँव छोड़कर चला गया। जाते हुए वह लौट-लौटकर उस गाँव को देखता रहा था, जिसकी पावन और प्राकृतिक गोद में ४ नवंबर, १८४५ को उसका जन्म हुआ था। धीरे-धीरे गाँव उसकी दृष्टि से ओझल हो गया; पर अब उस गाँव के स्थान पर समूचा देश उसकी दृष्टि में था। अब उसकी दृष्टि में अपना देश था—भारत देश।

परिस्थितियों का अध्ययन कर वासुदेव बलवंत फड़के ने निश्चय किया कि ब्रिटिश शासन का पंजा भारत की भूमि पर दृढ़ता से जम चुका है और अब आमने-सामने के युद्धों में उससे पार पाना मुश्किल है, अत: केवल छापामार युद्ध-प्रणाली से ही अंग्रेजी शासन के पंजे को कुछ ढीला किया जा सकता है। यही तो रानडे महोदय ने कहा था कि आज के नौजवानों को महाराणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी बनकर दिखाने की जरूरत है। उसने निश्चय कर डाला कि वन्य-जातियों को सैन्य रूप में संगठित करके अंग्रेजों की नींद हराम करनी है। उसने रामोशी, नाईक और भील जातियों की सेनाएँ संगठित करके उन्हें गुलटेकड़ी तथा फर्ग्यूसन की पहाड़ियों में सैन्य प्रशिक्षण देना प्रारंभ कर दिया। अपने इस अभियान में उसे विश्वसनीय सहयोगी भी मिल गए। दौलतराव रामोशी का अपनी जाति के लोगों पर अच्छा प्रभाव था। वह भी दल-बल सहित फड़के की सेना में सम्मिलित हो गया। गोविंदराव दावरे भी अत्यंत प्रभावशाली व्यक्ति था। वह फड़के का दाहिना हाथ बन गया। लोग दावरे को 'जनरल दावरे' और फड़के को 'शिवाजी द्वितीय' के नाम से पुकारने लगे।

फड़के की सेना का आकार और आतंक बढ़ने लगा। आवश्यकता पड़ने पर वह हैदराबाद के निजाम के राज्य में से पठानों और रुहेलों को भी अपनी सेना में भरती कर लिया करता था। अंग्रेजों के खजानों और शस्त्रागारों को छापे मारकर लूटा जाने लगा। शस्त्रार्जन के लिए पैसे की समस्या हल करने के लिए वह कभी-कभी बड़े-बड़े रईसों और सेठ-साहुकारों के यहाँ डाके डालने से नहीं चूकता था। अमीरों का धन लूटकर वह गरीबों में बाँटता था। समाजवाद का व्यावहारिक रूप वह अपने जीवन में अपना रहा था। जो कुछ वह लूटता, उसका पंचनामा करता और मालिक को रसीद दे आता था। उसका कहना था कि देश के स्वाधीन होने पर लूटा हुआ धन वह ब्याज सहित वापस कर देगा। पालस्पे के डाके में फड़के को साठ

हजार रुपए हाथ लगे।

अपनी सेना का संगठन फड़के ने लोकतांत्रिक ढंग से किया था। यद्यपि वह अपनी सेना का मुखिया था, पर फिर भी वह सेना के अन्य सहयोगी नेताओं और सैनिकों के सलाह-मशविरे के अनुसार कार्य करता था। एक दिन उसने डायरी में लिखा—

'मैं इसी बात (अंग्रेजों को निकालने) पर दिन-रात विचार किया करता हूँ। सैकड़ों कष्ट देखकर मेरे हृदय ने निश्चय कर लिया है कि इस ब्रिटिश सत्ता का खात्मा करूँगा। और कोई विचार मेरे मन में नहीं आते और न रातों को नींद ही आती है।'

सन् १८७६-७७ में महाराष्ट्र में भयंकर अकाल पड़ा। भूख की पीड़ा से हजारों व्यक्ति काल के गाल में समा गए। इधर गौरांगदेव थे, जो भारत के अन्न पर पलकर, उन्हींको दम तोड़ते हुए देखकर प्रसन्न होते थे। वासुदेव बलवंत फड़के से यह नहीं देखा गया। उसकी आत्मा विद्रोह कर बैठी। उसने अपनी दैनंदिनी में लिखा—'मेरे ये देशवासी उसी माता (भारत माता) के पुत्र हैं, जिसका मैं हूँ। वे भूखों मरें और मैं जानवरों का जीवन व्यतीत करूँ, यह विचार भी असंभव है। उनकी सहायता करने और उन्हें स्वतंत्र करने के प्रयत्न में प्राण न्योछावर कर देना कहीं अच्छा है।'

अपने संकल्पों को पूरा करने के लिए फड़के जुट गया। अंग्रेजों के खजाने लूट-लूटकर वह गरीबों के पेट भरने लगा। सरकारी अफसर थर-थर काँपने लगे। अंग्रेजभक्त अखबार बौखला गए। गाँवों और छोटे-छोटे नगरों में रहनेवाले अंग्रेज भाग-भागकर पूना पहुँचने लगे। फड़के ने पूना तक उनका पीछा नहीं छोड़ा। उसने पूना पर छापे मारकर कई सरकारी भवन जला डाले और अंग्रेजों को मौत के घाट उतार दिया। सतारा जिले को उसने रौंद डाला। ऐसा लगता था जैसे महाराष्ट्र के सात जिलों में अंग्रेजों की हुकूमत उलटकर फड़के की हुकूमत कायम हो गई हो। उसने ब्रिटिश जेलों पर धावे बोलकर कैदियों को मुक्त कर दिया। स्वभावतः वे कैदी उसकी सेना के सैनिक बन गए।

फड़के के आतंक से अंग्रेज हुकूमत की नींद हराम हो गई। सन् १८५७ में असंख्य वीरों की छातियाँ गोलियों से छलनी करके, फाँसी के फंदों पर लटकाकर, जीवित जलाकर, घोड़ों की टापों से कुचलवाकर और संगीनों से छेदकर अंग्रेजों ने सोचा था कि दमन-चक्र में पिसकर भारतीय फिर सिर उठाने का साहस नहीं करेंगे और न देश की आजादी की बात सोचेंगे; किंतु उन्हें क्या पता था कि भारतीय क्रांतिकारी रक्तबीज होते हैं। एक शहीद के खून से सैकड़ों क्रांतिकारी पैदा होकर

शहीदों की पंक्तियों में पहुँचने के लिए बेचैन हो उठते हैं। ऐसा ही एक प्रचंड क्रांतिकारी था—वासुदेव बलवंत फड़के।

फड़के के उपद्रवों से ब्रिटिश सत्ता लड़खड़ाने लगी। उसे पकड़ने के लिए जाल डाले जाने लगे। बंबई के गवर्नर सर रिचर्ड टैंपल ने घोषित किया कि फड़के को पकड़ने या मारनेवाले व्यक्ति को पाँच हजार रुपए पुरस्कारस्वरूप दिए जाएँगे। वीर फड़के कब चुप रहनेवाला था। उसने भी घोषणा कर दी—

"जो कोई बंबई के गवर्नर सर रिचर्ड टैंपल का सिर लाकर मुझे देगा, मैं उसे दस हजार रुपए इनाम में दूँगा।"

बेचारे गवर्नर महोदय की नींद हराम हो गई। उन्होंने बाहर घूमना-फिरना बंद कर दिया। सोते-सोते भी वे 'फड़ ! फड़के!' कहकर चिल्ला उठते थे।

शासन ने अपने प्रयत्न और तेज कर दिए। फड़के को पकड़ने के लिए निजाम तथा अंग्रेजों की फौजें पीछा कर रही थीं। मेजर डेनियल और मि. स्टीफेंसन के नेतृत्व में अंग्रेजी सेनाओं ने उसका पीछा किया।

फड़के निजाम के राज्य में जा निकला। एक दिन निरंतर भागते रहने के कारण वह बहुत थक गया। बुखार ने भी उसपर आक्रमण कर दिया। आश्रय पाने के लिए वह हैदराबाद राज्य के कलादगी जिले के एक गाँव में पहुँचा और देवी के मंदिर में विश्राम करने लगा। बुखार और थकान के कारण वह मूर्च्छित जैसा हो गया। तभी पीछा करती हुई ब्रिटिश सेना वहाँ पहुँच गई। मेजर डेनियल उसकी छाती पर खड़ा हो गया और बूट पहने हुए उसने अपना एक पैर फड़के के गले पर रख दिया और बोला—

"कहो फड़के! अब क्या चाहते हो?"

"तुमसे तलवार के दो-दो हाथ करना चाहता हूँ।" फड़के का उत्तर था।

डेनियल ने चुनौती स्वीकार नहीं की। हथकड़ियाँ डालकर वह उसे पूना ले गया।

पूना में फड़के पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। न्यायालय ने उसे आजन्म कारावास का दंड सुनाया। फड़के जैसे महाभयंकर कैदी को भारतभूमि की किसी जेल या अंडमान में रखना उचित नहीं समझा गया। उसे विदेश ले जाकर अदन की जेल में रखा गया।

वीर फड़के ने वहाँ भी अपना पराक्रम दिखाया। वह अदन की जेल तोड़कर भाग निकला। यदि वह भारत की किसी जेल से भागा होता तो ब्रिटिश सरकार उसकी छाया भी नहीं छू सकती थी। वह विदेश में था। जेल से निकलकर वह जंगलों में भूखा-प्यासा भटकता रहा। भाषा की कठिनाई के कारण वह अदन के

लोगों को अपना मंतव्य नहीं समझा सका। दोबारा पकड़कर वह फिर जेल में ठूँस दिया गया।

अदन की जेल में ही वीर वासुदेव बलवंत फड़के ने १७ फरवरी, १८८३ को जीवन की अंतिम साँस ली। भारत की भूमि से तो वह वीर बिदा हो ही चुका था, वह दुनिया से भी बिदा हो गया। हम उससे 'अलविदा' भी न कह पाए।

□

★ विनायक दामोदर सावरकर

विनायक दामोदर सावरकर

लंदन के विक्टोरिया रेलवे स्टेशन पर १३ मार्च, १९१० को सशस्त्र पुलिस किसी भयंकर अपराधी को पकड़ने के लिए सन्नद्ध खड़ी थी। प्लेटफॉर्म को चारों ओर से घेरकर रखा गया था। स्टेशन के बाहर भी पुलिस के बंदूकधारी जवान तैनात थे। उन्हें आदेश था कि यदि अपराधी चंगुल से निकलकर भागने का प्रयत्न करे तो उसे गोली मार दी जाए। स्टेशन के अंदर के मैदान (यार्ड) की रेल लाइनों पर भी सशस्त्र पुलिस के जवानों का पहरा था। वे लोग रेलगाड़ी आने की अधीरता से प्रतीक्षा कर रहे थे। पुलिस के अधिकारियों को यह भय था कि अपराधी कहीं सबको चकमा देकर निकल न जाए। वे उसे बहुत चालाक और भयंकर अपराधी मानते थे।

रेलगाड़ी विक्टोरिया रेलवे स्टेशन पर आकर खड़ी हो गई। अपराधी को पहचाननेवाले व्यक्तियों की आँखें हर डिब्बे पर पड़ने लगीं। वे आँखें एक भारतीय नौजवान को खोज रही थीं, जिसने लंदन में तहलका मचा रखा था और जो कुछ दिन फ्रांस में रहकर इंग्लैंड लौट रहा था।

तीसरे दर्जे के एक डिब्बे से एक तेजस्वी भारतीय युवक के उतरते ही कई आँखें एक साथ उसपर पड़ीं और कई पैर एक साथ उसकी ओर बढ़े। कई हाथों ने एक साथ लपककर उसे दबोच लिया और तत्काल उसे हथकड़ियाँ पहना दी गईं।

वह युवक कहता ही रहा कि गिरफ्तार करने का आदेश पत्र तो दिखाओ; पर न तो किसीको उसकी बात सुनने का धैर्य था और न आदेश पत्र दिखाने का नैतिक बल। जिस डिब्बे में युवक ने यात्रा की थी, उस डिब्बे में भी नागरिक वेश में पुलिस के लोग उसकी गतिविधियों पर दृष्टि रखे हुए थे।

युवक को गिरफ्तार करके लंदन की ब्रिस्टल जेल में डाल दिया गया।

अगले ही दिन संसार के सारे समाचार-पत्रों के पृष्ठ भारत के महान् क्रांतिकारी विनायक दामोदर सावरकर की गिरफ्तारी के समाचारों से रँग गए। उस वीर को पकड़ने के लिए भारत की गोरी पुलिस लंदन पहुँची थी। भारत की पुलिस तथा इंग्लैंड की पुलिस ने मिलकर वीर सावरकर को गिरफ्तार करके गर्व का अनुभव किया और चैन की साँस ली।

लंदन की अदालत में ही सावरकर का मुकदमा प्रस्तुत किया गया। ज्यों ही वीर सावरकर ने न्यायालय में प्रवेश किया, सारा न्यायालय तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा। उसके प्रोत्साहन के लिए सैकड़ों भारतीय नवयुवक न्यायालय में पहले से ही उपस्थित हो गए थे।

न्यायालय ने निर्देश दिया कि अभियुक्त को भारत भेजा जाए। उसे भारत भेजने का अर्थ था, आजन्म कारावास अथवा फाँसी का दंड। वह वीर अपने भविष्य की ओर से निश्चिंत हो गया। वह समझ गया कि या तो फाँसी का फंदा गले में पड़ेगा या जीवन-भर सीखचों के अंदर रहना पड़ेगा। वीरभूमि महाराष्ट्र के इस बेटे की स्मृति में छत्रपति शिवाजी महाराज का इतिहास सजीव हो उठा, जब मुगल सम्राट् औरंगजेब की जेल से युक्तिपूर्वक निकलकर उन्होंने स्वतंत्र राष्ट्र की स्थापना की। युवक सावरकर ने भी अंग्रेजों के चंगुल से छूटने का संकल्प किया और भारत को स्वाधीन करने के सपने सँजोए।

उन दिनों समुद्री रास्ते से इंग्लैंड से भारत पहुँचने के लिए इंग्लिश खाड़ी पार करके फ्रांस पहुँचना होता था और वहाँ से रेलगाड़ी द्वारा इटली तथा इटली से जहाज द्वारा भारत पहुँचा जाता था।

क्रांतिवीर सावरकर को मोरिया जलयान द्वारा इंग्लैंड से भारत लाया जा रहा था। गोरे सिपाहियों का बड़ा सख्त पहरा था। उसकी हर गतिविधि पर निगरानी रखी जा रही थी, यहाँ तक कि जहाज के शौचालय में भी बड़ा शीशा लगा दिया गया था, जिससे उसकी गतिविधियाँ दिखाई देती रहें।

सावरकर को ले जानेवाला जलयान ८ जुलाई, १९१० को फ्रांस के मार्सेलिस बंदरगाह के निकट पहुँचा और वहाँ उसने लंगर डाला। उन दिनों प्रसिद्ध भारतीय क्रांतिकारी श्यामजी कृष्ण वर्मा फ्रांस में थे। सावरकर ने अनुमान लगाया कि शायद

श्यामजी ने उनकी मुक्ति की कोई योजना बनाई हो; पर तट पर कोई भी भारतीय दिखाई नहीं दिया। इसका कारण यह था कि सावरकर की यात्रा के समाचार गोपनीय रखे गए थे। किसी सहायक को न देखकर उस वीर ने स्वयं कुछ कर गुजरने का संकल्प कर लिया।

दिन के ग्यारह बजे जहाज बंदरगाह से चल दिया। कुछ समय पश्चात् सावरकर ने शौच का बहाना करके शौचालय में प्रवेश किया। उसने अपना कोट उतारकर, एकदम दरवाजे पर डालकर दरवाजा अंदर से बंद कर लिया और उछलकर शौचालय की दीवार के छेद (पोर्ट होल) पर चढ़ गया। इधर पहरे के संतरियों ने जब देखा कि कैदी ने दरवाजे पर कोट डाल दिया है तो उन्होंने झाँककर अंदर देखा। उन्होंने सावरकर को पोर्ट होल पर चढ़ते देख लिया। एक सिपाही जोर से चिल्लाया—"क्या करता है? क्या करता है?" पर उसकी अनसुनी करके सावरकर ने पोर्ट होल से समुद्र में छलाँग लगा दी। सिपाही ने शौचालय का दरवाजा तोड़ दिया और चीख-पुकार मचा दी। कई सिपाही तथा कर्मचारी डेक पर दौड़े और उन्होंने वहीं से क्रांतिवीर सावरकर पर गोलियाँ दागना प्रारंभ कर दिया। वीर सावरकर ने कभी डुबकी मारकर और कभी पानी में साँस लेने के लिए सतह पर प्रकट होकर अपना रास्ता नापना प्रारंभ कर दिया। सिपाहियों ने जहाज के कप्तान को सूचना दी। जहाज से समुद्र में अधर-पुल (ड्रा-ब्रिज) डाल दिया गया और सिपाही उसपर दौड़-दौड़कर गोलियाँ चलाने लगे। पर इतने में तो सावरकर काफी फासला पार करके फ्रांस के किनारे जा लगा। जहाज ने भी उसका पीछा किया। तट पर पहुँचने पर ऊँची दीवार ने सावरकर का रास्ता रोक दिया; पर व्यायाम व अभ्यास काम आया और वह वीर फ्रांस की भूमि में पहुँच गया। उसके पीछे अंग्रेज सिपाही 'चोर-चोर' कहते हुए भागे जा रहे थे। सावरकर ने एक फ्रांसीसी सिपाही के हाथों आत्मसमर्पण कर दिया और टूटी-फूटी फ्रांसीसी भाषा में उसे समझाया कि वह भारतीय क्रांतिकारी है और अंग्रेज सिपाही उसे पकड़ना चाहते हैं, पर फ्रांस की भूमि में से किसीको पकड़ने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है। इतनी देर में अंग्रेज सिपाही भी वहाँ पहुँच गए। अंग्रेज सिपाहियों ने फ्रांसीसी सिपाही की जेब गरम कर दी।

यूरोप का यह भ्रष्टाचार एक भारतीय क्रांतिकारी को ले डूबा। फ्रांसीसी सिपाही ने वीर सावरकर को अंग्रेज सिपाहियों के हवाले कर दिया। अंग्रेज सिपाही उस वीर को बंदी बनाकर फिर जहाज पर ले गए। वह युवक, जो एक बैरिस्टर के रूप में भारत पहुँचने वाला था, एक कैदी के रूप में भारत के किनारे लगा। हथकड़ियोंयुक्त हाथों से उस वीर ने मातृभूमि को प्रणाम किया। बंबई में संगीनों के

पहरे में ले जाकर उस वीर को नासिक की जेल में डाल दिया गया।

सावरकर के सहायकों ने अवैध रूप से उसे फ्रांस की भूमि से पकड़ने के विरोध में 'हेग' की अंतरराष्ट्रीय अदालत तक मुकदमा पहुँचाया; पर उस समय वहाँ से भी न्याय न मिल सका और निर्णय अंग्रेजी शासन के पक्ष में ही रहा।

भारत में वीर सावरकर पर तीन मुकदमे एक साथ चले। दो मुकदमे संगीन थे और उसपर अंग्रेज अधिकारियों की हत्या के आरोप थे। एक मुकदमे द्वारा यह सिद्ध किया गया कि इंग्लैंड में मदनलाल धींगरा द्वारा कर्जन वायली की हत्या में सावरकर का भी हाथ था। उसे आजन्म कारावास का दंड सुना दिया गया। दूसरे मुकदमे द्वारा यह सिद्ध किया गया कि भारत में कलेक्टर मि. जैक्सन की हत्या जिस पिस्तौल से की गई थी, वह पिस्तौल इंग्लैंड से सावरकर ने ही चतुर्भुज अमीन द्वारा भारत पहुँचाई थी। इस प्रकरण में भी अभियुक्त को आजीवन कारावास का दंड दिया गया। निर्णय सुनकर वीर सावरकर ने हँसते हुए करारा व्यंग्य किया—

"मैं प्रसन्न हूँ कि मुझे दो जन्म की कालेपानी की सजा देकर ब्रिटिश सरकार ने हिंदू धर्म का पुनर्जन्म का सिद्धांत तो मान लिया।"

वीर सावरकर की सारी संपत्ति जब्त कर ली गई। उसे कुछ दिन डोंगरी जेल में रखकर अंततोगत्वा अंडमान की जेल में भेज दिया गया। वीर को भाँति-भाँति की यातनाएँ दी गईं। उससे दिन-भर कोल्हू चलवाया जाता था। खाना ऐसा दिया जाता था जैसा जानवरों को दिया जाता है।

वीर सावरकर के कारावास की कथा स्वयं में एक बहुत बड़ा इतिहास है।

कई भारतीय नेताओं के अथक प्रयत्नों और ब्रिटिश पार्लियामेंट के प्रभावशाली सदस्य मि. बैजवुड के सहयोग से वीर सावरकर को सन् १९२४ में अंडमान से भारत लाया गया। जब सन् १९३७ में बंबई में कांग्रेस मंत्रिमंडल का निर्माण हुआ तो कई नेताओं के प्रयत्नों के फलस्वरूप वीर सावरकर को १० मई, १९३७ को बंदीगृह से मुक्त कर दिया गया। यह बड़ी ऐतिहासिक तिथि थी, जिस दिन १८५७ का स्वाधीनता संग्राम छिड़ा था। इंग्लैंड में रहते हुए वीर सावरकर के प्रयत्नों से ही उस प्रथम स्वाधीनता संग्राम की अर्द्ध शताब्दी समारोहपूर्वक मनाई गई थी।

वीर सावरकर ने शेष जीवन भारत की अथक सेवा में बिताया और स्वाधीन भारत में २६ फरवरी सन् १९६६ को वह दीप बुझ गया, जिसने २८ मई सन् १८८३ को प्रकाशित होकर भारत को नई दीप्ति प्रदान की थी।

□

★ विशनसिंह

उनचास कूकों को तोपों से उड़ाने के पश्चात् जब पचासवें कूके को तोप के सामने लाया गया तो पाया गया कि वह तो केवल तेरह वर्ष का किशोर बालक था। उसका नाम विशनसिंह था। उस बालक की रोती-कलपती माँ भी वहाँ पहुँच गई और अपने बच्चे को बचाने की गुहार करने लगी। उसने बुरी तरह रोते हुए श्रीमती कॉवन से बार-बार प्रार्थना की कि वह उसके बालक को बचाने के लिए अपने पति से कहे। श्रीमती कॉवन ने उसकी प्रार्थनाओं और रुदन से द्रवित होकर बालक को तोप से न उड़ाने की सिफारिश अपने पति से की। बालक विशनसिंह ने जब देखा कि माँ की ममता के कारण देश पर कुरबान होने का अवसर हाथ से जाता है तो वह मि. कॉवन से बोल उठा—"साहब, यह औरत मेरी माँ नहीं है। यह तो इस गाँव की एक पगली है, जो कुछ-न-कुछ नाटक किया करती है। आप इसकी बातों पर यकीन मत कीजिए। आप तो जल्दी मुझे तोप से उड़ा दीजिए।"

श्रीमती कॉवन बालक को बचाने की सिफारिश अपने पति से कर चुकी थीं। एक प्रकार से बालक को बचाने के लिए पति से जिद करने लगीं। मि. कॉवन ने अपनी पत्नी की सिफारिश पर बालक विशनसिंह की तरफ देखा और उसके गुरु को गाली देते हुए बोला कि यदि तुम उसका साथ छोड़ने का वायदा करो तो मैं तुम्हें क्षमा कर सकता हूँ। बालक ने जब गुरु के प्रति अपमानजनक शब्द सुने तो उसे क्रोध आ गया और सिपाहियों को धक्के देता हुआ वह मि. कॉवन की तरफ लपका। मि. कॉवन को भूमि पर पटककर वह उसकी छाती पर बैठ गया और उसकी दाढ़ी के बालों में अपने दोनों हाथों की उँगलियाँ फँसाकर उसके सिर को जमीन पर पटकने लगा। सिपाहियों ने दौड़कर उसे खींचकर हटाना चाहा; पर जितना वे उसे खींचते, उतनी ही तेजी से साहब की दाढ़ी के बाल खिंच रहे थे। अपने साहब को कष्ट से बचाने के लिए सिपाहियों ने बालक के दोनों हाथ रेत-रेतकर काट डाले और उसे एक तरफ पटक दिया। उन लोगों ने निर्दयतापूर्वक उस बालक के पैर भी काट डाले।

हाथ-पैर कट जाने के कारण बालक ने तड़प-तड़पकर प्राण दे दिए। अपने गुरु के सम्मान के लिए एक गुरुभक्त शहीद हो गया।

□

★ वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय

वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय

भारत के एक क्रांतिकारी मदनलाल धींगरा ने जब १ जुलाई, १९०९ को लंदन में भारतीयों के शत्रु कर्जन वायली को गोली से उड़ा दिया तो इंग्लैंड तथा भारत के समाचार-पत्र बौखला गए और मदनलाल के कृत्य की निंदा की जाने लगी। स्वयं मदनलाल के परिवारवालों ने उसकी तीव्र भर्त्सना की। इंग्लैंड में उन दिनों रहनेवाले गरम दल के प्रसिद्ध नेता विपिनचंद्र पाल ने भी मदनलाल के कृत्य की निंदा की। लंदन में आयोजित खुली सभा में निंदा प्रस्ताव का विरोध करने जब विनायक दामोदर सावरकर खड़े हुए तो उनपर आक्रमण किया गया। उस सभा में एक और भारतीय विद्यार्थी था, जिससे सावरकर पर किया गया हमला बरदाश्त नहीं हुआ। उस समय तो हंगामे में सभा विसर्जित हो गई, पर उस क्रांतिकारी छात्र ने लंदन से निकलनेवाले समाचार-पत्र 'दि टाइम्स' में संपादक के नाम एक पत्र भेजकर मदनलाल धींगरा के वीरोचित कार्य का पक्ष लिया और अंग्रेजी सरकार को कड़ी चेतावनी दी। उस क्रांतिकारी छात्र का नाम था वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय। उसने लिखा—

'दमन के तरीके ही भारत को हिंसा के लिए उकसा रहे हैं। यदि इंग्लैंड का यह खयाल है कि मानवता की भलाई के लिए ही वह भारत में अपना पैर जमाए है तो यह उसका भ्रम है। आगामी दिनों में हत्याओं की सूचियाँ बढ़ती ही चली जाएँगी और इन सूचियों को बढ़ाने की जिम्मेदारी उन लोगों पर होगी, जो भारत को आजादी की सुविधाएँ देने के बजाय इंग्लैंड के हित में उसकी आजादी को दबोचे रखना चाहते हैं।'

इंग्लैंड में रहकर ही वीरेंद्रनाथ ने इंग्लैंडवालों को कैसा लताड़ा। उसमें एक सच्चे क्रांतिकारी का हृदय था और भारत की पराधीनता के प्रति उसके मन में कसक थी।

वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय भारत के एक प्रतिष्ठित बंगाली परिवार का सदस्य

था। पिता अघोरनाथ चट्टोपाध्याय अप्रतिम विद्वान् और ऋषि-तुल्य व्यक्ति थे, जिन्होंने स्विट्जरलैंड के ज्यूरिख विश्वविद्यालय से जर्मन भाषा में शोध-प्रबंध लिखकर डॉक्टरेट की उपाधि अर्जित की थी। माता वरदासुंदरी देवी अपने समय की अच्छी लेखिका और गायिका थीं। इस दंपती की चारों संतानें बहुत प्रसिद्ध हुईं। ये चार थे—वीरेंद्रनाथ, सरोजिनी (नायडू), हरींद्रनाथ और मृणालिनी।

वीरेंद्र को अपने माता-पिता दोनों के ही सुसंस्कार प्राप्त हुए। उनके पिता हैदराबाद के उस्मानिया विश्वविद्यालय में प्राध्यापक थे। हैदराबाद में रहते हुए वीरेंद्र ने बंदूक से निशाना लगाना, तैरना और घुड़सवारी आदि का प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया था। १९०३ में बी.ए. पास कर लेने के पश्चात् वीरेंद्र उच्च शिक्षा के लिए इंग्लैंड चले गए।

लंदन उस समय भारतीय क्रांतिकारियों का अड्डा बना हुआ था। यह कैसे संभव था कि वीरेंद्र जैसा प्रतिभाशाली छात्र उस वातावरण से अछूता रह जाता। उसपर क्रांति का ऐसा रंग चढ़ा कि वह न तो आई.सी.एस. कर सका और न बैरिस्टरी। क्रांतिकारी गतिविधियों में भाग लेने के कारण कॉलेज के दरवाजे भी उसके लिए बंद हो गए। वीरेंद्र ने पत्रकारिता का आश्रय लिया और उसके लेख लंदन के प्रमुख पत्रों में छपने लगे। अपने इन लेखों द्वारा वह भारत की स्वाधीनता का पक्ष लेता रहा। उसने 'दि इंडियन सोशियोलॉजिस्ट' के प्रकाशन में श्यामजी कृष्ण वर्मा को अच्छा सहयोग प्रदान किया।

सन् १९०६ में तुर्की के प्रसिद्ध नेता कामिल पाशा जब लंदन पहुँचे तो वीरेंद्रनाथ की इच्छा हुई कि उनसे भेंट करके भारत की आजादी के प्रति उनकी सहानुभूति अर्जित की जाए। कामिल पाशा से उनकी मुलाकात तो हो गई, पर कामिल पाशा उनके साथ खुल नहीं सके। वे वीरेंद्रनाथ को कोई अंग्रेजी जासूस समझ रहे थे; क्योंकि उन दिनों अंग्रेज लोग इंग्लैंड पहुँचनेवाले सभी देशों के क्रांतिकारियों के पीछे जासूस लगा देते थे। उन्हें क्या पता था कि जिसे वे अंग्रेजों का जासूस समझ रहे थे, वह अंग्रेजों का घोर शत्रु था और स्वयं उसके पीछे जासूस लगे रहते थे। कामिल पाशा को खुलते न देखकर वीरेंद्रनाथ अपने साथ भारत की प्रसिद्ध क्रांतिकारिणी मदाम भीकाजी कामा को ले गए, जो उन दिनों इंग्लैंड में रहकर क्रांतिकारी गतिविधियों में संलग्न थीं। कामिल पाशा वीरेंद्रनाथ के साथ फिर भी नहीं खुल सके। वीरेंद्रनाथ सच्चे क्रांतिकारी थे। क्रांतिकारी कभी हताश नहीं होता। वीरेंद्रनाथ आयरलैंड गए और कुछ ऐसे आइरिश क्रांतिकारियों से उन्होंने परिचय-पत्र ले लिये, जिनके प्रति कामिल पाशा स्वयं आस्थावान् थे। बस फिर क्या था, कामिल पाशा और वीरेंद्रनाथ में बहुत अंतरंग वार्त्ताएँ हुईं और तुर्क नेता ने

भारत के इस नवोदित क्रांतिकारी को बहुत-सी काम की बातें बताईं।

सन् १९०७ में जर्मनी के स्टुटगार्ट नगर में एक अंतरराष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन हुआ। इंग्लैंड में रहनेवाले भारतीयों ने तय किया कि भारत का प्रतिनिधित्व भी इस सम्मेलन में होना चाहिए। मदाम कामा, वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय तथा सरदारसिंह राणा को उस सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधियों के रूप में भेजा गया। प्रतिनिधिमंडल की नेता मदाम कामा थीं। सरदारसिंह राणा हीरों के व्यापारी थे, जो फ्रांस में रह रहे थे। वे भी क्रांतिकारी गतिविधियों में अच्छी रुचि ले रहे थे। प्रारंभिक कठिनाइयों के पश्चात् उस सम्मेलन में इन लोगों को अच्छी सफलता मिली और भारत का बहुत अच्छा प्रभाव ये लोग वहाँ छोड़कर आए।

वीरेंद्रनाथ यूरोप के सभी देशों में घूम-घूमकर, वहाँ क्रांतिकारियों के साथ संपर्क स्थापित करके भारत के प्रति उनकी सद्भावना प्राप्त करते रहे। यह एक प्रकार से उनका प्रशिक्षण काल था। उन देशों के क्रांति के हथकंडे भी वे सीखते जाते थे। इस क्रम में वे पोलैंड गए जो रूस, ऑस्ट्रिया और जर्मन साम्राज्यवाद का शिकार था। पोलैंड के पश्चात् वीरेंद्र आयरलैंड गए, जहाँ के क्रांतिकारी ब्रिटिश साम्राज्यवाद से जूझकर उसकी नाक में दम किए हुए थे। भारत और आयरलैंड की समस्याएँ लगभग एक जैसी थीं।

जब वीरेंद्र को यह आभास हुआ कि विश्वयुद्ध छिड़ने वाला है तो वे जर्मनी पहुँच गए और वहाँ के एक प्रकाशक से अपनी क्रांतिकारी पुस्तकें प्रकाशित कराने का अनुबंध कर लिया। इन पुस्तकों के माध्यम से उन्होंने ब्रिटिश अत्याचारों का पर्दाफाश किया और अंतरराष्ट्रीय जगत् में भारत के प्रति सहानुभूति अर्जित की। उनकी दो पुस्तकें बहुत प्रसिद्ध हुईं—'ब्रिटिश रूल इन इंडिया कंडेम्ड बाइ दि ब्रिटिश देमसेल्व्ज' और 'सोशलिस्ट ऑन ब्रिटिश रूल इन इंडिया'।

वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय के जर्मनी प्रवास के समय ही 'बर्लिन समिति' का निर्माण हुआ, जिसने भारत की आजादी की दिशा में अच्छा कार्य किया। जर्मनी प्रवास के समय ही वीरेंद्रनाथ ने एग्नेस स्मेडली से अपनी दूसरी शादी की। उनकी पहली पत्नी के साथ उनके संबंध-विच्छेद हो गए थे। एग्नेस स्मेडली भी क्रांतिकारी लेखिका थी।

अपने साथियों की प्रेरणा से वीरेंद्रनाथ भारत की आजादी के लिए सहायता प्राप्त करने सन् १९२२ में रूस गए। स्टालिन तथा रूस के अन्य नेताओं को उन्होंने अच्छी तरह प्रभावित किया।

भारत के प्रसिद्ध क्रांतिकारी मानवेंद्रनाथ राय भी उस समय रूस में ही थे। उन्होंने रूस के साम्यवादी समूह में अपना अच्छा स्थान बना लिया। वीरेंद्रनाथ की

उपस्थिति वे रूस में चाहते ही थे। दोनों ने भारत के पक्ष का अच्छा प्रतिनिधित्व किया। वीरेंद्रनाथ ने अपनी थीसिस लेनिन के पास भिजवाकर प्रकट किया कि अंग्रेजी साम्राज्यवाद का खात्मा किया जाना चाहिए और इस काम को पूरा करने के लिए 'थर्ड इंटरनेशनल' को चाहिए कि वह एक क्रांतिकारी बोर्ड का गठन करे। लेनिन वीरेंद्रनाथ के इस विचार से पूर्णरूप से सहमत हुए।

वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय का जर्मनी के युवकों पर अच्छा प्रभाव था। उनके सहयोग से उन्होंने एक संस्था की स्थापना की, जिसका नाम था 'लीग अगेंस्ट इंपीरियलिज्म'। वे स्वयं इस संस्था के मंत्री चुने गए। ब्रुसेल्स में इस लीग का अधिवेशन आयोजित था; पर वीरेंद्र उसमें सम्मिलित न हो सके। उस सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व पं. जवाहरलाल नेहरू ने किया। अपनी इस यूरोप यात्रा के दौरान वीरेंद्रनाथ की सहायता से ही पं. जवाहरलाल नेहरू रूस पहुँच सके थे।

बाद में एक खबर सुनने को मिली कि स्टालिन व वीरेंद्र में मतभेद हो गया है और वीरेंद्र को रूस से बाहर जाने की अनुमति नहीं है। इस समाचार की पुष्टि नहीं हो सकी।

सन् १९२६-२७ के लगभग रूस में ही रहस्यात्मक स्थितियों में वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय की मृत्यु हो गई।

वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय के विषय में पं. जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में लिखा है—

'भारत के एक प्रसिद्ध परिवार के सदस्य वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय इन लोगों से बिलकुल भिन्न प्रकार के जीव थे। आमतौर पर लोग उन्हें 'चट्टो' कहते थे। वे बहुत ही योग्य और आनंदी व्यक्ति थे। गरीबी उनका पीछा नहीं छोड़ती थी। पहनते-पहनते उनके कपड़े खस्ता हो चुके थे और अकसर उन्हें रोटी के लाले भी पड़े रहते थे। लेकिन हर समय वे मजाक करते रहते थे और चहकते रहते थे। जिन दिनों मैं हैरो स्कूल में गया, उन दिनों वे ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में पहुँच चुके थे। तब से वे भारत नहीं लौटे; पर अकसर उन्हें स्वदेश की याद सताती थी और वे अपने देश को लौट जाना चाहते थे। पर घर के साथ उनके संबंध बहुत पहले टूट चुके थे और यह निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि यदि वे भारत लौटते तो दुःखी और कटी पतंग की तरह हो जाते। पर बहुत वर्ष बीत जाने पर भी और दीर्घकालीन यायावरी के बावजूद घर का चाव बना ही रहता है। कोई भी निर्वासित अपनी किस्म के लोगों के उस रोग से बच नहीं सकता, जिसे मैजिनी ने आत्मा का तपेदिक कहा है।

'मैं साफ-साफ कह देना चाहता हूँ कि विदेशों में पड़े जिन क्रांतिकारियों से

मेरा साबिका पड़ा, उनमें से अधिकांश का मुझपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। हाँ, मैं बराबर उनके त्याग की प्रशंसा करता रहा और उनके कष्टों एवं वर्तमान वास्तविक कठिनाइयों के साथ सहानुभूति करता रहा। मैं उनमें से बहुत थोड़े लोगों से ही मिल सका। विदेशों में पड़े हुए जिन थोड़े से क्रांतिकारियों से मैं मिला, उनमें से केवल दो व्यक्तियों—मानवेंद्रनाथ राय और वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय ने ही बौद्धिक रूप से मुझे प्रभावित किया है।'

□

★ वीरेंद्रनाथ दत्त

कलकत्ता के किसी गोपनीय स्थान पर क्रांतिकारियों की बैठक में किसी अभियान पर विचार किया जा रहा था। बैठक का केंद्रबिंदु एक क्रांतिकारी युवक था, जिससे सदस्यों द्वारा प्रश्न पूछे जा रहे थे और वह प्रत्येक के प्रश्न का उत्तर दे रहा था—

"तो आखिर तुम पुलिस के डिप्टी सुपरिंटेंडेंट शम्श-उल-आलम को मौत के घाट क्यों उतारना चाहते हो?"

"मैं उसे इसलिए समाप्त करना चाहता हूँ, क्योंकि वह हाथ धोकर हम क्रांतिकारियों के पीछे पड़ा हुआ है।"

"उसके अपराधों को और अधिक स्पष्ट करो।"

"वह हम क्रांतिकारियों को गिरफ्तार करवा रहा है, मुकदमे चलवा रहा है और हमारे विरुद्ध झूठे गवाह खड़े कर रहा है। सबसे अधिक चिंतनीय बात तो यह है कि वह गिरफ्तार क्रांतिकारियों के नैतिक पतन का प्रयत्न करता है।"

"तो क्या उसे समाप्त कर देने से यह काम रुक जाएगा?"

"रुके या न रुके, यह हमारे दल की नीति है कि दल को हानि पहुँचानेवाले व्यक्ति को रास्ते से हटाया जाए।"

"तो उसे समाप्त करने की तुम्हारी क्या योजना है?"

"योजना तो मैं स्वयं बना लूँगा। मैं तो इतना ही चाहता हूँ कि उसे समाप्त करने की मुझे अनुमति दी जाए।"

"इस काम में तुम्हें कितने साथी चाहिए?"

"यह काम मैं अकेला ही पूरा करूँगा। मुझे किसी साथी की आवश्यकता नहीं है।"

"तुम्हारी कोई और आवश्यकता है?"

"हाँ, मुझे एक अच्छा-सा रिवॉल्वर चाहिए और पर्याप्त मात्रा में कारतूस। जब तक मेरा काम पूरा न हो, मुझे दल से अलग रहने की अनुमति भी चाहिए।"

"ऐसा तुम क्यों चाहते हो?"

"यह मैं इसलिए चाहता हूँ कि मैं निरंतर अपने शिकार की टोह में रहूँगा। यह भी तो संभव है कि पुलिस द्वारा मेरी गतिविधियों पर निगरानी रखी जाए। मैं नहीं चाहता कि बार-बार मेरे यहाँ आने से पूरा-का-पूरा दल खतरे में पड़े।"

"अच्छा, तुम्हारी योजना हमें स्वीकार है। तुम्हें छह कारतूसोंवाला दौ सौ सत्तर बोर का वैल्ली रिवॉल्वर दिया जा रहा है। हम परामर्श देंगे कि तुम इसके अतिरिक्त कुछ चाकू-छुरा भी अपने साथ रखो। हम तुम्हारे अभियान की सफलता की कामना करते हैं।"

जिस क्रांतिकारी की योजना स्वीकार की गई और उसे रिवॉल्वर दिया गया, वह एक अठारह वर्षीय युवक था। उसका नाम वीरेंद्रनाथ दत्त था। क्रांतिकारी दल के मुखिया का नाम ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी था, जो बाद में 'बाघा जतीन' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

वीरेंद्रनाथ दत्त ने अपने शिकार का पीछा करना प्रारंभ कर दिया। वह डिप्टी सुपरिंटेंडेंट पुलिस शम्श-उल-आलम के पीछे कभी-कभी उसके दफ्तर भी जाता और कभी-कभी अदालत भी। वह उसके निवास स्थान और घूमने के स्थानों पर भी दृष्टि रखे हुए था। उसका शिकार बहुत ही सतर्क और चालाक व्यक्ति था। अपनी सुरक्षा की दृष्टि से कुछ-न-कुछ लोगों को वह हमेशा साथ रखता था।

एक दिन जब शम्श-उल-आलम एक बगीचे के पास से गुजर रहा था, तो उसे ऐसा भान हुआ जैसे कोई लड़का उसके बिलकुल निकट से उसका पीछा कर रहा है। उसने मुड़कर पीछे देखा तो उसका अनुमान सही निकला। देखे जाने पर वह लड़का तेज कदमों से एक ओर चल दिया और वह पुलिस अफसर तथा उसके आदमी उस लड़के को पकड़ नहीं सके। पीछा करनेवाला यह लड़का और कोई नहीं, वीरेंद्रनाथ दत्त ही था। उसका यह प्रयास विफल हो गया।

वीरेंद्रनाथ दत्त ने २४ जनवरी, १९१० को अपने शिकार को अदालत के अंदर ही घेरा।.अदालत में क्रांतिकारियों का ही मामला चल रहा था। उस दिन की कार्यवाही समाप्त हो चुकी थी। जो कागजात और साक्ष्य क्रांतिकारियों के विरुद्ध शम्श-उल-आलम को पेश करने थे, वे उसने पेश किए और वहाँ से मुड़कर वह जीना चढ़कर अदालत के दूसरे भाग में जाने लगा, जहाँ से अपना सामान उठाकर उसे अपने घर जाना था। उसके बिलकुल पीछे एडवोकेट जनरल चल रहा था।

एडवोकेट जनरल के पीछे शम्श-उल-आलम का अर्दली था और इन तीनों के पीछे इन सबकी सुरक्षा के लिए एक बंदूकधारी सिपाही चल रहा था। जैसे ही शम्श-उल-आलम आखिरी सीढ़ी पर पहुँचा, एक लड़का कूदकर उसके सामने आ गया और अपना हाथ बढ़ाकर उसने अपने रिवॉल्वर से गोली दाग दी, जो पुलिस अफसर के ठीक हृदय में जाकर लगी। शम्श-उल-आलम पीठ के बल गिरा और उसकी तत्काल मृत्यु हो गई। आक्रमणकारी वीरेंद्रनाथ दत्त ही था। अपना काम पूरा करके वह बरामदे के रास्ते से भागा। अन्य व्यक्ति आक्रमणकारी को पकड़ने के लिए शोर मचाने लगे। भागकर वीरेंद्रनाथ दत्त जिस फाटक से बाहर निकलना चाहता था, वह बंद था और वहाँ भीड़ भी जमा हो चुकी थी। वह तेजी से मुड़ा और एक दूसरे फाटक की ओर गया, जो खुला हुआ था। भीड़ वहाँ भी थी; पर वीरेंद्रनाथ दत्त ने रिवॉल्वर सामने करके एक फायर किया और लोग इधर-उधर दुबक गए। अब वह फाटक के बाहर सड़क पर भाग रहा था। इसी बीच घुड़सवार पुलिस आकर वीरेंद्रनाथ दत्त का पीछा करने लगी। वह उनको भी चकमा देकर भागने लगा; पर उसे कठिनाई यह हो रही थी कि वह जिस गली की ओर जाता, उसे लोगों की भीड़ का सामना करना पड़ता, जो पुलिस के आह्वान पर उसे पकड़ने के लिए उद्यत दिखाई देती थी। वह जनता के इन लोगों में से किसीको मारना नहीं चाहता था। इस स्थिति का लाभ उठाकर कुछ घुड़सवार पुलिसवाले उसके बिलकुल निकट पहुँच गए। उनमें से एक पर वीरेंद्रनाथ दत्त ने अपना निशाना भी साधा, पर वह चूक गया। इसी बीच दूसरा सवार कूद पड़ा और एक ही झटके से उसने उसका रिवॉल्वर छीन लिया। इस बीच दूसरे सवार ने कूदकर वीरेंद्रनाथ को दबोच लिया। अब वह पुलिस की गिरफ्त में था। उसके पास दो हथियार और निकले। इनमें से एक कटार थी और एक चाकू।

२७ जनवरी सन् १९१० को वीरेंद्रनाथ दत्त को कलकत्ता के चीफ प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट के सम्मुख प्रस्तुत करके अगले ही दिन उसे सेशन सुपुर्द कर दिया गया।

अदालत में प्रवेश करते समय वीरेंद्रनाथ के चेहरे पर मुसकान खेल रही थी। वह निर्भय और प्रसन्नचित्त था। उसने अपने बचाव के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया। अदालत द्वारा पूछे जाने पर उसने कहा कि न मुझे कोई वकील करना है और न अपनी सफाई देनी है। जो कुछ घटित हुआ था, उसकी सारी जिम्मेदारी उसने अपने ऊपर ले ली। ज्यूरी ने अपनी राय न्यायाधीश महोदय को दी और न्यायाधीश महोदय ने उसे मृत्युदंड सुना दिया।

इसी बीच पुलिस विभाग ने अन्य क्रांतिकारियों को अपने जाल में फाँसने के लिए एक षड्यंत्र की रचना की। उसने एक जाली अखबार छपवाया, जिसमें

लिखा था कि क्रांतिकारी ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी और उसके साथियों ने वीरेंद्रनाथ दत्त के कृत्य की भर्त्सना की है। वीरेंद्रनाथ पुलिस के इस जाल में फँस गया। उसने स्वीकार कर लिया कि इस हत्या के पीछे ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी की सहमति थी। बाद में, जब पुलिस के षड्यंत्र का पता चला तो उसे बहुत खेद होता रहा और प्रार्थना करता रहा कि ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी पकड़ा नहीं जाए।

वीरेंद्रनाथ दत्त को २१ फरवरी, १९१० को फाँसी दे दी गई। एक संकल्पवान् युवक इस दुनिया से उठ गया, पर वह दिखा गया कि भारतीय क्रांतिकारी आजादी के रास्ते के किसी भी रोड़े को हटाने में सक्षम हैं।

□

★ वेलू थंपी

ट्रावनकोर राज्य की प्रजा अपने ही राज्य के दीवान के अत्याचारों से दुःखी हो गई। वह उनपर झूठे-झूठे आरोप लगाकर, उन्हें जेल में डालकर यातनाएँ देता था। वह दीवान अपने राजा के पास इन लोगों को पहुँचने नहीं देता था। इस कारण राजा को असलियत का पता ही नहीं चलता था।

उस राज्य में वेलू थंपी नाम का एक होनहार, योग्य एवं पहुँचवाला व्यक्ति था, जो कभी-कभी महाराज से मिल आया करता था। ट्रावनकोर की जनता ने वेलू थंपी को ही माध्यम बनाकर अपनी फरियाद अपने राजा बलराम वर्मा के पास भिजवाई। महाराज वेलू थंपी पर विश्वास करते थे। उन्होंने अपने राज्य के दीवान के कार्यों की गुप्त जाँच की और जनता तथा वेलू थंपी की शिकायत को सही पाया। परिणाम यह हुआ कि उन्होंने अपने पूर्व दीवान को गिरफ्तार करके उसके स्थान पर वेलू थंपी को ही दीवान नियुक्त कर दिया।

इस मामले में अंग्रेज रेजीडेंट मकाले ने हस्तक्षेप किया; क्योंकि उसे पूर्व दीवान ने घूस दे-देकर खुश कर लिया था। रेजीडेंट मकाले ने ट्रावनकोर के महाराज बलराम वर्मा को आदेश दिया कि वे पूर्व दीवान को पुनर्स्थापित करके वेलू थंपी को गिरफ्तार कर लें। राजा ने यह आदेश मानने से इनकार कर दिया। फलस्वरूप युद्ध की नौबत आ गई। रेजीडेंट के पास एक विशाल सेना रहा करती थी, जिसका खर्च राजा को देना पड़ता था। मकाले की सेना ने ट्रावनकोर राज्य पर आक्रमण कर दिया। वेलू थंपी स्वयं राजा की ओर से युद्ध का संचालन कर रहा था। सन् १८०८ में दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में अंग्रेजी सेना की पराजय हुई और

रेजीडेंट मकाले को ट्रावनकोर से भागना पड़ा। उसने मद्रास से बहुत बड़ी कुमुक मँगवाकर ट्रावनकोर राज्य पर भयानक आक्रमण कर दिया। उसकी सेना बहुत विशाल और शस्त्र-सज्जित थी।

वेलू थंपी ने सोचा कि व्यर्थ ही जनता का खून-खराबा होगा। उसने अपने राजा को परामर्श दिया कि आप मुझे विद्रोही घोषित करके मेरे भाग जाने की खबर फैला दें। जब अंग्रेजी सेना को यह खबर मिली तो उसने वेलू थंपी की खोज प्रारंभ कर दी। एक देशद्रोही ने अंग्रेजी सेना को यह सूचना दे दी कि वेलू थंपी नगर के बाहर पुराने मंदिर में छिपा हुआ है। अंग्रेजी सेना ने वेलू थंपी को पुराने मंदिर में घेर लिया।

अंग्रेजों के हाथों गिरफ्तार होने के स्थान पर वेलू थंपी ने आत्मबलिदान का सहारा लिया। उसने अपनी कटार से स्वयं अपनी इहलीला समाप्त कर ली।

□

★ श्यामजी कृष्ण वर्मा

श्यामजी कृष्ण वर्मा

भारत में ब्रिटिश जासूस परेशान हो रहे थे। उनकी परेशानी का कारण उचित ही था। पूना में मि. रैंड एवं मि. आयरिस्ट की हत्या के आरोप में चाफेकर नाम के तीन सगे भाइयों दामोदर चाफेकर, बालकृष्ण चाफेकर व वासुदेव चाफेकर तथा महादेव रानडे को फाँसी के फंदों पर झुलाने के पश्चात् अंग्रेजी सरकार निश्चिंत हो गई थी कि अब कोई क्रांतिकारी हलचल नहीं होगी। उसे क्या पता था कि भारतीय क्रांतिकारी रक्तबीज होते हैं; अर्थात् एक व्यक्ति का खून बहा हुआ देखकर कई अन्य व्यक्ति अपना खून बहाने के लिए तैयार हो जाते हैं।

चाफेकर बंधुओं के बलिदान को अधिक दिन नहीं हुए थे कि पूना में बम का फिर एक धमाका हुआ। सरकार के कान खुल गए। मुस्तैदी के साथ उस व्यक्ति की खोज होने लगी, जो क्रांति सूत्रों का सफलता के साथ संचालन कर रहा था। सरकार ने समस्त भारत में जासूसी जाल बिछा रखा था कि कहीं तो वह क्रांति संचालक उस जासूसी जाल में उलझेगा ही। सरकार को क्या पता था कि भारतीय क्रांति का वह संचालक जाल डालने के पूर्व ही लंदन पहुँच गया है और वह स्वयं वहाँ अपनी क्रांति योजनाओं का जाल बिछा रहा है। दुश्मन के घर में सेंध लगाने का दुस्साहस भारतीय क्रांतिकारी कर सकते हैं। लंदन पहुँचकर श्यामजी कृष्ण वर्मा वही कार्य कर रहे थे।

श्यामजी कृष्ण वर्मा का भारत में होनेवाले विस्फोटों से घनिष्ठ संबंध था।

अपनी स्थिति भारत में सुरक्षित न देखकर वे लंदन खिसक गए। ब्रिटिश जासूस उन्हें भारत में खोज रहे थे और वे लंदन में बैठकर भारतीय क्रांति का संचालन कर रहे थे। भारतीय क्रांति दर्शन को व्यापक रूप प्रदान करने के लिए और विश्व में उसे सम्माननीय स्थान दिलाने के लिए श्यामजी कृष्ण वर्मा ने लंदन से 'दि इंडियन सोशियोलॉजिस्ट' नाम से एक अंग्रेजी मासिक पत्रिका निकालनी प्रारंभ की, जिसके दार्शनिक आवरण में क्रांति का प्रचार किया जा रहा था और सारे संसार में उसकी प्रतियाँ धड़ल्ले से बिक रही थीं। प्रार्थनाओं और याचनाओं के माध्यम से स्वाधीनता अर्जित न होते देख श्यामजी कृष्ण वर्मा ने क्रांतिकारी हथकंडों के प्रयोग का खुला प्रचार प्रारंभ कर दिया था। सन् १९०७ में उन्होंने अपनी पत्रिका में लिखा—

'ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में कोई भी आंदोलन केवल गोपनीय पद्धति से ही चल सकता है और भारत में अंग्रेजों की अक्ल ठिकाने लाने के लिए रूसी क्रांतिकारियों की पद्धति ही उपयोगी हो सकती है, जो उनके अत्याचारों का खात्मा करके देश से उनके बोरिए-बिस्तर उठवा सकती है।'

केवल पत्रिका के प्रकाशन से ही श्यामजी को संतोष नहीं हुआ। उन्हें ज्वलंत भावनाओं के चेतनाशील नवयुवक चाहिए थे, जो लंदन में क्रांति की दीक्षा लेकर भारत में सफल क्रांति का संचालन करते। उन्होंने हजारों रुपयों की छात्रवृत्तियाँ घोषित कर दीं। ऐसी ही छात्रवृत्ति का लाभ उठाने की दृष्टि से विनायक दामोदर सावरकर इंग्लैंड पहुँचे थे। सेनापति पांडुरंग महादेव वापट भी उसी युवक मंडल के व्यक्ति थे। प्रसिद्ध क्रांतिकारी लाला हरदयाल ने भी ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की छात्रवृत्ति को ठुकराकर श्यामजी कृष्ण वर्मा की छात्रवृत्ति स्वीकार की थी। लंदन अब भारतीय क्रांतिकारियों का अड्डा बन गया और इस अड्डे का संचालन कर रहे थे श्यामजी कृष्ण वर्मा।

जनवरी १९०५ में 'दि इंडियन सोशियोलॉजिस्ट' का प्रकाशन प्रारंभ करने के पश्चात् १८ फरवरी, १९०५ को श्यामजी कृष्ण वर्मा ने 'इंडियन होमरूल सोसाइटी' नामक संस्था की स्थापना कर दी, जिसके माध्यम से भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का प्रचार-प्रसार तीव्रता से किया जाने लगा।

भारतीय क्रांतिकारियों को लंदन में ठहरने की सुविधा प्रदान करने के लिए श्यामजी कृष्ण वर्मा ने लंदन में एक तिमंजिला भवन बनवा डाला, जिसे 'भारतीय भवन' (इंडिया हाउस) का नाम दे दिया गया। वह एक प्रकार का छात्रावास था, जहाँ भारतीय विद्यार्थी निःशुल्क आवास और भोजन की व्यवस्था पाकर भारतीय क्रांति के प्रचार का कार्य करते थे।

आखिर लंदन के जासूसों की नजर श्यामजी कृष्ण वर्मा पर पड़ ही गई।

इसके पूर्व कि श्यामजी पुलिस के मेहमान बनते, वे इंग्लैंड छोड़कर फ्रांस पहुँच गए और वहाँ से क्रांति का संचालन प्रारंभ कर दिया। 'दि इंडियन सोशियोलॉजिस्ट' का प्रकाशन लंदन से ही होता रहा। श्यामजी ने अपने जादू के प्रभाव से पेरिस में रहनेवाले प्रवासी भारतीय सरदारसिंह राणा को अपने मत का बना लिया और राणा ने भी दो छात्रवृत्तियाँ घोषित कर दीं। अब बम बनाना सीखने के लिए भारतीय क्रांतिकारी पेरिस पहुँचने लगे। हेमचंद्र दास तथा उल्लासकर दत्त नाम के दो बंगाली युवक वहाँ बम बनाना सीखने लगे। इन सबके साथ श्यामजी कृष्ण वर्मा का घनिष्ठ संबंध था।

इस प्रकार भारतीय क्रांति का इंग्लैंड तथा फ्रांस में सफलतापूर्वक संचालन करने के पश्चात् और भारतीय क्रांतिकारियों की सेना का निर्माण करने के पश्चात् भारत के इस सपूत ने फ्रांस की भूमि पर अपने जीवन की अंतिम घड़ियाँ गिनीं। उन्होंने सिद्ध कर दिखाया कि भारतीय क्रांतिकारी सच्चे कर्मयोगी होते हैं।

भारतीय क्रांति के देदीप्यमान् नक्षत्र श्यामजी कृष्ण वर्मा का जन्म ४ अक्तूबर सन् १८५७ को काठियावाड़ प्रांत के मंडलीय ग्राम में हुआ था। सामान्य परिवार में जन्म लेने पर भी अपनी प्रतिभा के बल पर श्यामजी का विवाह बंबई के एक करोड़पति सेठ की लड़की के साथ हुआ। अपने छात्र जीवन में ही उन्होंने इंग्लैंड के विद्वानों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था। वे संस्कृत के प्रकांड विद्वान् माने जाने लगे। इंग्लैंड के संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् मोनियर विलियम्स का प्रोत्साहन पाकर श्यामजी कृष्ण वर्मा ने ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में अध्ययन प्रारंभ किया। वे प्रथम भारतीय थे, जिन्होंने ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि प्राप्त की। आपने उसी विश्वविद्यालय से सर्वप्रथम बैरिस्टरी की परीक्षा भी उत्तीर्ण की।

विलायत में हर्बर्ट स्पेंसर जैसे दार्शनिकों के साथ श्यामजी कृष्ण वर्मा का संपर्क स्थापित हुआ। संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् मैक्समूलर भी श्यामजी कृष्ण वर्मा की विद्वत्ता का लोहा मानते थे।

सन् १८८५ में जब बैरिस्टर बनकर श्यामजी कृष्ण वर्मा भारत लौटे, तो उनकी प्रतिभा से आकृष्ट होकर कई भारतीय रियासतों ने उन्हें अपने यहाँ बुलाना चाहा। इसी क्रम में वे १० नवंबर, १८८६ से १८८८ तक रतलाम रियासत में दीवान के पद पर कार्य करते रहे। इस बीच उन्होंने रियासत की बहुत उन्नति की। उनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर राजस्थान की उदयपुर रियासत के प्रसिद्ध शासक श्री फतहसिंहजी ने उन्हें अपने राज्य में मंत्री पद पर नियुक्त कर दिया।

भारत में अंग्रेजों के अत्याचारों से श्यामजी के मन पर तीव्र प्रतिक्रिया हुई

और उन्होंने नौकरी छोड़कर क्रांति योजनाओं का संचालन अपने हाथ में लिया, जिनका विवरण पीछे किया जा चुका है।

कुछ लोगों की मान्यता है कि सन् १८५७ की सशस्त्र क्रांति के सूत्रधार नानासाहब पेशवा ही श्यामजी कृष्ण वर्मा को धन से सहायता करके इंग्लैंड में छात्रवृत्तियाँ घोषित करा रहे थे। श्यामजी कृष्ण वर्मा और नानासाहब पेशवा के संबंध की बात शोध का विषय है। यह तो निश्चित ही है कि श्यामजी कृष्ण वर्मा को भारतीय क्रांति का 'आद्य प्रचारक' कहा जा सकता है।

□

★ सआदत खाँ

सआदत खाँ शरीर और मन दोनों से ही बलिष्ठ था। वह देखने में भी निहायत खूबसूरत था। उसके पूर्वज जोधपुर और दिल्ली के बीच के क्षेत्र मेवात के निवासी थे। आजीविका की खोज में सआदत खाँ इंदौर राज्य में जा पहुँचा। उस समय इंदौर में तुकोजीराव होलकर (द्वितीय) शासक थे। सआदत खाँ की योग्यता से प्रभावित होकर उन्होंने उसे अपने तोपखाने का प्रमुख तोपची नियुक्त कर दिया।

सन् १८५७ का प्रथम स्वाधीनता संग्राम छिड़ने पर सआदत खाँ की देशभक्ति ने जोर मारा और वह अपने मादरे-वतन को फिरंगियों से आजाद करने के लिए उतावला हो उठा। सआदत खाँ की पहली वफादारी अपने होलकर राज्य के प्रति थी। अपने एक फौजी अधिकारी वंशगोपाल के साथ सआदत खाँ ने महाराज तुकोजीराव होलकर से भेंट की और उन्हें अपना मंतव्य बताया। महाराज की बातचीत और उनके व्यवहार से उन लोगों को यह समझते देर नहीं लगी कि महाराज की सहानुभूति उन लोगों के साथ है।

महाराज तुकोजीराव होलकर से भेंट करने के पश्चात् सआदत खाँ ने सैनिकों को एकत्रित किया और उनसे कहा—"तैयार हो जाओ। आगे बढ़ो। अंग्रेजों को मार डालो। यह महाराजा साहब का हुक्म है।"

अपने साथी की ओजस्वी वाणी सुनकर सेना के वीर हुंकार उठे और वे अंग्रेज रेजीडेंट कर्नल ड्यूरेंड पर हमला करने के लिए तैयार हो गए। अपने दल-बल के साथ सआदत खाँ रेज़ीडेंसी पर पहुँच गया और उसे घेर लिया। उस समय कर्नल ट्रेवर्स भी अपने महिदपुर कंटिजेंट के साथ इंदौर रेजीडेंसी पर मौजूद था।

कर्नल ड्यूरेंड को यह समझते देर नहीं लगी कि सेना ने विद्रोह कर दिया है। वह अपनी कूटनीति और वाक्चातुरी के लिए मशहूर था। रेजीडेंसी के फाटक पर पहुँचकर उसने अपने शब्दजाल में क्रांतिकारियों को फँसाना चाहा। सआदत खाँ इन चालों को भलीभाँति जानता था। उसने कर्नल ड्यूरेंड पर गोली चला दी। सआदत

खाँ की गोली कर्नल ड्यूरेंड के एक कान को उड़ाती हुई और उसके गाल को छीलती हुई निकल गई। ड्यूरेंड भाग खड़ा हुआ। वह रेजीडेंसी के पिछले दरवाजे से सपरिवार बाहर निकल गया और छिपता-छिपाता हुआ सीहोर जा पहुँचा। वहाँ अंग्रेजी फौज रहती थी। कर्नल ट्रेवर्स भी दुम दबाकर इंदौर रेजीडेंसी से भाग खड़ा हुआ। रेजीडेंसी में जितने अंग्रेज थे, वे सभी भाग खड़े हुए। कोठी पर क्रांतिकारियों का अधिकार हो गया। कोठी तथा अन्य बंगले लूटकर उजाड़ दिए गए।

४ जुलाई, १८५७ की रात को क्रांतिकारियों ने लूट का माल अपने साथ लेकर देवास की ओर बढ़ना प्रारंभ कर दिया। क्रांतिकारियों के पास रेजीडेंसी खजाने से लूटे गए नौ लाख रुपए, सभी तोपें, गोला-बारूद, हाथी, घोड़े और बैलगाड़ियाँ आदि सामान था। होलकर नरेश की भी नौ तोपें वे अपने साथ ले गए।

उखड़ते-उखड़ते भी अंग्रेजों के पैर जम गए और उन्होंने विद्रोह का दमन कर दिया। इंदौर के क्रांतिकारियों में से वे सआदत खाँ को तो नहीं पकड़ सके, पर कई अन्य क्रांतिकारियों को गिरफ्तार करके उन्हें निर्मम दंड दिए गए। अंग्रेज अत्याचारियों ने ग्यारह क्रांतिकारियों को गोलियों से भून डाला। इक्कीस सैनिकों तथा कुछ नागरिकों को तोपों के मुँह से बाँधकर उड़ाया गया और दो सौ सत्तर सैनिकों को आजीवन कारावास का दंड दिया गया।

सआदत खाँ को अंग्रेज लोग बीस वर्ष पश्चात् अर्थात् सन् १८७७ में झालावाड़ (राजस्थान) से गिरफ्तार कर सके। वह छद्म नाम से वहाँ नौकरी करने लगा था। वह इतना ईमानदार और नेक व्यक्ति था कि उसने लूट के माल में से अपने पास कुछ भी नहीं रखा था। जिस समय वह गिरफ्तार किया गया, उस समय उसके पास दो समय की भोजन सामग्री के अतिरिक्त और कुछ नहीं था।

सआदत खाँ पर मुकदमा चलाया गया। उसने किसी भी प्रकार की कमजोरी प्रकट नहीं की और न अपने किसी साथी को फँसाया। देशभक्ति का सर्वोच्च पुरस्कार—फाँसी का उपहार पाकर वह बहुत खुश था।

□

★ सरदारसिंह राणा

१० मई सन् १९०८ को लंदन की एक तिमंजिली इमारत को खूब सजाया गया और रोशनी की गई। उस भवन पर लिखा हुआ 'इंडिया हाउस' दूर से ही चमक रहा था और वह लोगों को आकर्षित कर रहा था। बहुत उत्साह के साथ

भारतीय लोग वहाँ पहुँच रहे थे। यद्यपि वहाँ केवल भारतीयों को ही निमंत्रित किया गया था, पर कुछ अंग्रेज लोग भी अनुमति लेकर भवन के अंदर पहुँच रहे थे। इन लोगों में कुछ जासूस भी थे। १० मई को उस भवन में सन् १८५७ के प्रथम स्वाधीनता संग्राम का अर्द्ध शताब्दी समारोह मनाया जा रहा था।

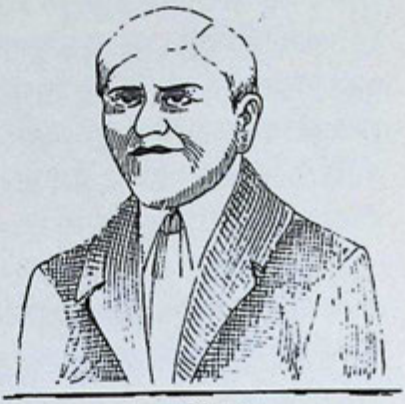

सरदारसिंह राणा

इंडिया हाउस के संचालक श्यामजी कृष्ण वर्मा ने समारोह की अध्यक्षता के लिए प्रस्ताव रखते हुए कहा—

''आज के इस गौरवशाली महापर्व की अध्यक्षता के लिए मैं भारत माता के सपूत और महान् क्रांतिकारी सरदारसिंह राणा का नाम प्रस्तावित करते हुए आशा करता हूँ कि मेरे प्रस्ताव को आप सबका अनुमोदन प्राप्त होगा।''

सभा ने तालियों की गड़गड़ाहट द्वारा प्रस्ताव का समर्थन किया। औपचारिक रूप से खड़े होकर प्रस्ताव को शाब्दिक समर्थन प्रदान किया विनायक दामोदर सावरकर ने। अध्यक्ष ने दीप प्रज्वलित करके उन तैलचित्रों का अनावरण किया, जो विशेष रूप से उस समारोह के लिए बनाए गए थे। इन चित्रों में नानासाहब पेशवा, महारानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे, वीर कुँअरसिंह आदि के चित्र थे।

भारत की एक महान् क्रांतिकारिणी मदाम भीकाजी कामा इस समारोह में सम्मिलित नहीं हो सकी थीं। इस समारोह के पहले जब श्यामजी कृष्ण वर्मा के निवास स्थान पर समारोह आयोजित किया गया था तो उसमें मदाम कामा ने सम्मिलित होकर एक जोरदार भाषण दिया था, जिसकी खूब सराहना की गई थी। इस बार मदाम कामा ने अपना संदेश भेजा था, जो अध्यक्ष श्री राणा ने पढ़कर सुनाया। उसका कुछ अंश था—

'आज का दिन हम सभी भारतीयों के लिए बड़ी प्रेरणा और गर्व का दिन है, जब हम लोग अपने देश की आजादी के महायज्ञ, भारत के प्रथम स्वाधीनता संग्राम का अर्द्ध शताब्दी समारोह मना रहे हैं। हम उन सभी ज्ञात और अज्ञात अमर हुतात्माओं की स्मृति को श्रद्धा-सह प्रणाम करते हैं, जिन्होंने अपने देश की आजादी के लिए अपने प्राण फूलों की तरह चढ़ा दिए। उन वीरों की आत्माएँ हमको भी उस पथ पर चलने की शक्ति प्रदान करें।'

मदाम कामा के इस संदेशवाचन के साथ ही शहीद निधि के लिए जो उन्होंने रुपए भेजे थे, वे सबसे पहले जमा किए गए। अध्यक्ष श्री राणा ने घोषित किया कि आगामी मास में होनेवाली संपूर्ण आय मैं शहीद निधि में अर्पित करूँगा। अन्य लोगों ने भी बढ़-चढ़कर इसी प्रकार राशि भेंट की। गरमागरम भाषण हुए और सभी के द्वारा आजादी की शपथ ग्रहण की गई।

सरदारसिंह राणा ने अगले मास बहुत श्रम करके कमाई की और लगभग दस हजार रुपए उन्होंने शहीद निधि में जमा किए। वे हीरे-जवाहरात के बहुत बड़े व्यापारी थे और व्यापार करते हुए ही कुछ दिन इंग्लैंड में रहकर फ्रांस में बस गए थे। उन्होंने एक जर्मन महिला के साथ शादी की थी।

सरदारसिंह राणा गए तो हीरों का व्यापार करने थे, पर श्यामजी कृष्ण वर्मा तथा सावरकर के संपर्क में आकर वे क्रांतिकारी बन गए और हमेशा ही क्रांति कार्य के लिए तन-मन-धन से सहयोग देते रहते थे। जब मदाम कामा इंग्लैंड छोड़कर फ्रांस पहुँच गईं और पेरिस में रहने लगीं तो सरदारसिंह राणा ने उन्हें बहुत अच्छा सहयोग दिया तथा उनके द्वारा प्रकाशित 'वंदेमातरम्' की भी उन्होंने खूब सेवा की। जब मदाम कामा ने एक अखबार 'मदंस तलवार' जर्मनी से आरंभ किया तो सरदारसिंह राणा ने अपनी जर्मन पत्नी के माध्यम से इस पत्र को भी जर्मनी में कई सुविधाएँ दिलाईं। जर्मनी के स्टुटगार्ट नगर में जब १९०७ के अगस्त मास में अंतरराष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन हुआ तो मदाम कामा और वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय के साथ सरदारसिंह राणा भी भारतीय प्रतिनिधि के रूप में उस सम्मेलन में सम्मिलित हुए थे।

प्रथम महायुद्ध के दिनों में जब फ्रांस की सरकार ने मदाम कामा को चार वर्ष नजरबंद रखा तो क्रांति के कार्य की जिम्मेदारी सरदारसिंह राणा के ऊपर आ पड़ी और योग्यता के साथ उन्होंने उसका निर्वाह किया।

अपना समस्त जीवन सरदारसिंह राणा ने भारत माता की आजादी के प्रयत्नों और चिंतन में ही लगाया। फ्रांस में ही उनके जीवन के अंतिम दिन व्यतीत हुए। राणाजी ने यह दिखा दिया कि देश के प्रति भामाशाहों का क्या कर्तव्य है।

□

★ सुरेंद्र साय

यह उसका दुर्भाग्य था कि उसकी आँखों के सामने ही उसके पुत्र और उसके रिश्तेदारों को कत्ल कर दिया गया। अंग्रेज शासकों ने ऐसा इसलिए किया

था, क्योंकि वे महान् क्रांतिकारी सुरेंद्र साय से बदला लेना चाहते थे। जब उसके सामने ही उसके रिश्तेदारों को कत्ल किया जाने लगा तो उसने अपने दोनों हाथों से अपनी आँखें ढक लीं और कहा—

"मैं अपनी आँखों से अपने रिश्तेदारों को कत्ल होते नहीं देख सकता।"

सुरेंद्र साय के इस कथन को सुनकर अंग्रेज अफसर ने कहा—

"ठीक है, हम ऐसा कुछ किए देते हैं कि तुम्हें अपनी आँखों पर अपने हाथ नहीं रखने पड़ेंगे और तुम अपने रिश्तेदारें का कत्ल देखने से बच जाओगे। हाँ, तुम उनकी करुण चीत्कारें अवश्य सुन सकोगे।"

ऐसा करने के लिए लोहे की गरम सलाखों से उस महान् क्रांतिवीर की दोनों आँखें फोड़ दी गईं। सुरेंद्र साय सचमुच ही तब अपनी अंधी आँखों से अपने रिश्तेदारों और सहयोगियों का वध तो नहीं देख सके, पर उनकी चीत्कारें उनके कानों को भेदने लगीं। जब उन्होंने अपने कानों पर अपने हाथ रखे तो उन्हें इस पीड़ा से मुक्त करने के लिए अंग्रेजों ने उन्हीं सलाखों से उनके कान भी फोड़ दिए। आखिर वह दिन भी आ गया, जब अंग्रेजों ने अंधे और बहरे होने की पीड़ा से मुक्त करने के लिए उस वीर को २८ फरवरी, १८८४ को वर्तमान मध्य प्रदेश के असीरगढ़ के किले में फाँसी के फंदे पर झुला दिया। असीरगढ़ का किला मध्य प्रदेश के खंडवा और बुरहानपुर नगरों के बीच घोर जंगली इलाके में स्थित है। मोटर मार्ग से जाते हुए यह किला यात्रियों को देखने को मिलता है; पर बहुत कम लोगों को यह ज्ञात है कि उड़ीसा के महान् क्रांतिकारी सुरेंद्र साय को अंग्रेजों ने इस दुर्गम किले में कैद करके रखा था और यहीं उन्हें फाँसी का दंड दिया गया था।

उड़ीसा के अंतर्गत संबलपुर जिले के बाबूखेड़ा में क्रांतिकारी सुरेंद्र साय का जन्म २३ जनवरी, १८०९ को हुआ था। सुरेंद्र साय का संबंध राजघराने से था और उनकी दादी रानी राजकुमारी पश्चिम उड़ीसा की राजगद्दी पर आसीन थीं। उन दिनों अंग्रेजी शासन अपने राज्य विस्तार में लीन था और उड़ीसा के छब्बीस राज्यों में से अठारह राज्य अंग्रेजों के सामने घुटने टेक चुके थे। शेष आठ राज्य अंग्रेजों के साथ संघर्ष कर रहे थे।

सन् १८३३ में अंग्रेजी शासन ने रानी राजकुमारी को पेंशन देकर राजगद्दी पर नारायणसिंह को बैठा दिया। रानी राजकुमारी के उत्तराधिकारी सुरेंद्र साय ने जब गद्दी पर अपना दावा प्रस्तुत किया तो उसे ठुकरा दिया गया। सुरेंद्र साय ने विवश होकर युद्ध का सहारा लिया और उसने कई स्थानों पर अंग्रेजी सेना को हराया। चालाक अंग्रेज बनियों ने छल का सहारा लेकर सुरेंद्र साय को संधि के लिए आमंत्रित कर उसे गिरफ्तार कर लिया और बिहार की हजारीबाग जेल में

बंद कर दिया। सुरेंद्र साय की अनुपस्थिति में उसकी पत्नी ने अंग्रेजों के साथ युद्ध जारी रखा।

उन दिनों सन् १८५७ का प्रथम स्वाधीनता संग्राम छिड़ चुका था। इस लहर का लाभ उठाकर विद्रोही सैनिकों की सहायता से सुरेंद्र साय हजारीबाग जेल से भाग निकला और अपनी पत्नी के साथ मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध तेज कर दिया। इस बार उसने अंग्रेजों के अधिकृत दुर्ग पर आक्रमण करके उसे हथियाना चाहा। माहौल सुरेंद्र के पक्ष में था और उसकी विजय सुनिश्चित थी। इस बार भी अंग्रेजों ने चालाकी से काम लिया। उन्होंने दुर्ग पर संधि का सफेद झंडा फहरा दिया। संधि वार्त्ता के लिए जब सुरेंद्र साय दुर्ग के अंदर पहुँचा तो उसे गिरफ्तार कर लिया गया और संबलपुर जेल में डाल दिया गया। सुरेंद्र साय सूझबूझ का धनी था। तीन दिन के अंदर ही वह संबलपुर जेल से भाग निकला। इस बार उसने १८५८ से १८६३ तक अंग्रेजों के साथ युद्ध करके कई मोरचों पर उनको हराया। उसने अंग्रेजी सेना का बहुत विनाश किया। इस बार उसका कार्यक्षेत्र बिहार और मध्य प्रदेश भी था।

भारतवर्ष में जहाँ उद्‌भट वीर पैदा होते रहे हैं, वहीं निकृष्ट विश्वासघाती और देशद्रोही भी पैदा होते रहे हैं। सुरेंद्र साय को भी उसीके एक अभिन्न मित्र दयानिधि मेहा ने विश्वासघात करके अंग्रेजों के हाथों गिरफ्तार करा दिया।

दो बार जेल तोड़कर भाग निकलनेवाले क्रांतिकारी सुरेंद्र साय को इस बार अंग्रेजों ने घोर जंगल में बने हुए असीरगढ़ के किले में बंद करके उसपर सघन पहरा बैठा दिया। उसी किले में उसे २८ फरवरी, १८८४ को फाँसी दे दी गई।

□

★ सुशीलकुमार सेन

क्रांतिकारियों के शत्रु—कलकत्ता के चीफ प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट मि. किंग्सफोर्ड की जीवन लीला समाप्त करने की सुशीलकुमार सेन ने एक मौलिक योजना बनाई। सुशीलकुमार सेन ने मि. किंग्सफोर्ड की रुचियों का सूक्ष्मता से अध्ययन करके पता लगाया कि वे पुस्तकें पढ़ने के बड़े प्रेमी हैं और उनके मित्र उनके पास पढ़ने के लिए पुस्तकें डाक से भी भेजते रहते हैं। पुस्तकों के पार्सल मजिस्ट्रेट महोदय स्वयं ही खोला करते थे।

सुशीलकुमार सेन ने मि. किंग्सफोर्ड के पास एक बहुत बड़ी पुस्तक पहुँचाई।

पुस्तक बड़े आकार की बारह सौ पृष्ठों की थी। पुस्तक का आंतरिक भाग खोखला करके उसमें एक बम रख दिया गया। बम टीन के पतले आवरण में तैयार करके रखा गया था। टीन के डिब्बे में पिकरिक एसिड नाम का विस्फोटक पदार्थ भरा था। टीन के अंदर रखे विस्फोटक पदार्थ का संबंध फलमीनेट मरकरी की बत्ती से जोड़ा गया था। बत्ती का एक सिरा विस्फोटक पदार्थ से मिलता था और दूसरा सिरा बाहर था। व्यवस्था यह की गई थी कि पुस्तक के आवरण पृष्ठ के नीचे कुछ कमानियाँ लगा दी गई थीं और आवरण पृष्ठ को पतली डोरी से लपेटकर बाँध दिया गया था। इस डोरी को तोड़ने के साथ ही नीचे कमानियाँ होने के कारण आवरण पृष्ठ उछलता और आवरण पृष्ठ से जुड़े फलमीनेट मरकरी के दूसरे सिरे से एक कील आकर टकराती तथा चिनगारी निकलने के कारण बत्ती के सहारे यह चिनगारी टीन के डिब्बे के अंदर रखे विस्फोटक पदार्थ को भड़काती और धड़ाके के साथ पुस्तक बम फट जाता और मि. किंग्सफोर्ड की चिंदी-चिंदी उड़ जाती।

सुशीलकुमार सेन

इतना कर चुकने के पश्चात् सुशीलकुमार सेन ने वह पुस्तक चपरासी के माध्यम से साहब की मेज के ऊपर रखवा दी। जब मि. किंग्सफोर्ड बाहर से लौटे तो उन्हें मेज पर लपेटी हुई पुस्तक दिखाई दी। चपरासी ने कहा—

"साहब! यह पुस्तक कोई साहब आपके लिए दे गए हैं।"

मि. किंग्सफोर्ड ने कुछ दिन पहले ही उसी आकार की एक पुस्तक अपने एक मित्र को पढ़ने को दी थी। उन्होंने समझा कि वही पुस्तक लौटकर आई है। उन्होंने बिना खोले ही वह पुस्तक अलमारी के अंदर रख दी। वह पुस्तक बम अलमारी में ही रखा रहा और किंग्सफोर्ड साहब की जान बच गई।

जिस क्रांतिकारी सुशीलकुमार सेन ने मि. किंग्सफोर्ड की जान लेने के लिए यह यत्न किया, वह क्रांतिकारी दल में किस प्रकार सम्मिलित हुआ, यह भी एक अविस्मरणीय घटना है।

२६ अगस्त, १९०७ को लाल बाजार में चीफ प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट मि. किंग्सफोर्ड की अदालत में कुछ क्रांतिकारियों पर चल रहे मुकदमे की सुनवाई थी। भारतीय देशभक्त बहुत बड़ी संख्या में अपने क्रांतिवीरों के उत्साहवर्द्धन के लिए

अदालत में उपस्थित हुए। उनका शोरगुल सुनकर उन्हें अदालत के बाहर खदेड़ देने की आज्ञा दी गई। पुलिस ने अंधाधुंध लाठियों के प्रहार से नागरिकों को खदेड़ना प्रारंभ कर दिया। लाठियों की मार से विचलित होकर लोग भागने लगे और इस भगदड़ में बहुत से लोग कुचल गए। एक अंग्रेज सारजेंट सिपाहियों को अधिक बलपूर्वक प्रहार के लिए उकसा रहा था। सिपाही लोग नागरिकों का पीछा करते हुए काफी आगे बढ़ गए। इस बीच केवल पंद्रह वर्ष के बालक सुशीलकुमार से न रहा गया और वह मुक्कों के प्रहार करता हुआ अंग्रेज सारजेंट के ऊपर टूट पड़ा। दोनों में मुक्कों के प्रहारों का जमकर आदान-प्रदान हुआ। एक ओर विशालकाय अंग्रेज दैत्य था और दूसरी ओर पंद्रह वर्ष का एक कमनीय किशोर बालक। सुशीलकुमार ने अपने तगड़े प्रहारों से अंग्रेज दैत्य को धराशायी कर दिया और इस बाल्य अवस्था में भी उसकी जमकर पिटाई की।

अंग्रेज सारजेंट ने पुलिस में बालक की शिकायत दर्ज कराई और उसे अदालत में प्रस्तुत किया गया। मि. किंग्सफोर्ड ने सुशीलकुमार सेन को पंद्रह बेंतों की सजा सुना दी। बेंतों का दंड बहुत बड़ा दंड माना जाता था, जिससे बड़े-बड़े घबराते थे। जल्लाद अभियुक्त के नंगे बदन पर पूरी ताकत से प्रहार करता। हर बेंत का पीठ पर लाल निशान पड़ जाता था और कुछ चमड़ी खिंचती हुई चली आती थी। दो-चार बेंत खाते ही बहुत से लोग बेहोश हो जाया करते थे।

सुशीलकुमार सेन को एक तिपाई से बाँधा गया और जल्लाद उसके नंगे बदन पर कस-कसकर बेंत जमाने लगा। सुशीलकुमार ने सोचा कि यदि मेरे मुँह से एक भी चीख या आह निकली तो मैं भारत माता का कमजोर पुत्र माना जाऊँगा और उसे लज्जित करने के अपराध का भागी बनूँगा। वह जल्लाद द्वारा पूरी शक्ति के साथ लगाए गए बेंत खाता गया और हर आघात पर 'वंदेमातरम्' का घोष करता गया। वह अपने स्थान से न हिला-डुला और न कायरता का कोई लक्षण प्रकट किया। उसकी पूरी पीठ से खून बह रहा था। बेंत खाने के बाद वह इस तरह वहाँ से चला गया जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

सुशीलकुमार सेन जिस कॉलेज का विद्यार्थी था, वहाँ अगले दिन २८ अगस्त को पूर्ण हड़ताल रखी गई और सुशीलकुमार का सार्वजनिक अभिनंदन किया गया। प्रसिद्ध देशभक्त और महान् नेता सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने सभा के अध्यक्ष के पास एक स्वर्ण पदक भेजा, जो सभी की उपस्थिति में सुशीलकुमार सेन को पहनाया गया। वीरतापूर्ण गीत गाते हुए नगर के बाजारों में से एक जुलूस के साथ सुशीलकुमार सेन को निकाला गया। जगह-जगह उसपर फूलों की वर्षा हुई।

सुशीलकुमार सेन की पीठ के घाव तो अच्छे हो गए, पर उसके दिल में जो

घाव लगे थे वे कसकते रहे। वह क्रांतिपथ का पथिक बन चुका था।

पंद्रह वर्षीय बालक सुशीलकुमार सेन का यह कितना बड़ा सौभाग्य था कि कुछ समय पश्चात् ही १५ मई, १९०८ को देश के महानतम क्रांतिकारियों—अरविंद घोष एवं वारींद्र घोष के साथ फिर गिरफ्तार हुआ और उसपर मुकदमा चला। उसे सात वर्ष का कठोर कारावास का दंड दिया गया। अपील में वह निर्दोष पाया जाकर मुक्त कर दिया गया। सुशीलकुमार सेन और उसका दल क्रांतिकारी कार्यों में सक्रिय हो गया। हथियार खरीदने के लिए उन्हें धन की आवश्यकता हुई। अंग्रेजपरस्त भारतीयों के घर डाके डालने का निश्चय किया गया।

२८ अप्रैल, १९१५ को नादिया जिले के प्रागपुर स्थान पर दो नावें पहुँचीं, जिनमें क्रांतिकारी लोग सवार थे। वे कहीं डाका डालकर लौट रहे थे। नदी पार करके वे लोग खलीलपुर पहुँच गए और वहाँ गाँव के बाहर एक सूनी गोशाला में भोजन बनाने लगे। एक गाँववाला भी उनके पास पहुँच गया और वह उनसे पूछताछ करने लगा। उनके द्वारा दिए गए उत्तरों से उसका समाधान नहीं हुआ।

उस समय तो वह चला गया, पर कुछ देर बाद अपने साथ पुलिस दल ले आया। क्रांतिकारियों और पुलिस के बीच जमकर गोलियों का आदान-प्रदान हुआ। नदी के किनारे यह युद्ध हो रहा था। ज्यों ही एक क्रांतिकारी निशाना साधकर गोली छोड़ने को हुआ कि गीली भूमि पर से उसका पैर फिसल गया और इस बीच गोली भी चल गई। वह गोली सुशीलकुमार सेन को ही लगी। बहुत बड़ा अनर्थ हो गया। गोली खाकर भी सुशीलकुमार को इतना होश रहा कि उसने अपने साथियों को नाव में कूदकर भाग जाने के लिए प्रेरित किया। साथियों ने सुशीलकुमार को भी नाव में डाला और भाग खड़े हुए। पुलिस के पास भी नावें आ गई थीं और वे क्रांतिकारियों का पीछा करने लगे। पूरी ताकत से नावें खेकर क्रांतिकारी लोग काफी आगे निकल गए।

सुशीलकुमार ने मरते-मरते अपने साथियों से बहुत आग्रह के साथ कहा कि मेरे मरने के बाद मेरा सिर धड़ से अलग करके कहीं छिपा देना, जिससे पुलिस यह नहीं समझ सकेगी कि वह किसका दल था। सुशीलकुमार सेन आजादी की बलि वेदी पर अर्पित हो चुका था। उसका बलिदान व्यर्थ नहीं गया। आगे चलकर और भी अधिक दृढ़ता के साथ उसके अभाव की पूर्ति चंद्रशेखर आजाद ने की।

□

★ मिस्त्री हलकूराम

"क्या तुम अपना जुर्म कुबूल करते हो कि तुम विद्रोहियों को हथियार बना-बनाकर दिया करते थे?" यह प्रश्न था अंग्रेज कमांडर का, जिसने मिस्त्री हलकूराम को गिरफ्तार किया था। उसके प्रश्न का उत्तर हलकूराम ने इस प्रकार दिया—

"मैंने कोई जुर्म नहीं किया। मैंने तो देश के प्रति अपने कर्तव्य का पालन किया है। जुर्म तो आप लोग कर रहे हैं, जो इस देश पर धोखे से अधिकार करके हम लोगों का खून पी रहे हैं।"

अंग्रेज कमांडर ने भुनभुनाते हुए कहा—

"हम लोग तुम लोगों का खून नहीं पी रहे। हम तो तुम जंगली हिंदुस्तानियों को सभ्य बना रहे हैं। हमको तो तुम्हारे खून से नफरत है। तुम्हारा खून तो हम कुत्तों को पिलाएँगे।"

और सचमुच ही उस अंग्रेज कमांडर ने यह नीच काम करके दिखाया। देपालपुर के बाहर एक विशाल वृक्ष की डाल से हलकूराम के पैर बाँधकर उसे उलटा लटका दिया गया। इतना ही नहीं, उसके सिर में लोहे की एक बड़ी कील ठोंक दी गई। उस कील के ठोंकने से हलकूराम के सिर से रक्त निकलकर भूमि पर गिरने लगा। कमांडर ने अपने साथ के शिकारी कुत्ते को वह खून चाटने के लिए छोड़ दिया। हलकूराम ने तड़प-तड़पकर अपने प्राण छोड़ दिए। उसका अपराध यही था कि उसने इंदौर के बागियों का साथ दिया था। वह बहुत अच्छा मिस्त्री था। देशी बंदूकों और तमंचों को वह कारतूसी बना दिया करता था। पाइप के टुकड़ों से भी वह कारतूसी बंदूक और तमंचे बनाकर विद्रोहियों को देता रहता था। किसी भेदिए ने यह समाचार अंग्रेजों को दे दिया। इस देशभक्ति के पुरस्कारस्वरूप ही उसे यह क्रूर दंड दिया गया।

□

★ हेमचंद्र दास कानूनगो

मिदनापुर के तरुण बंगाली क्रांतिकारियों ने एक विप्लव संगठन का आयोजन किया और अपने कार्यस्थल को उन्होंने 'आनंदमठ' की संज्ञा प्रदान कर दी। 'आनंदमठ' कहने के लिए ही आनंदमठ था, वैसे वहाँ साम्राज्य था कठिनाइयों और असुविधाओं का। नई उम्र के जो क्रांतिकारी लड़के वहाँ रहते थे, वे फटी हुई कथरियों या चटाइयों पर सोते थे और चना-चबैना पर अपनी गुजर-बसर किया करते थे। उनका अपना एक संकल्प था और वह संकल्प था—भारत माता की आजादी। अपने संकल्पों की पूर्ति के लिए वे प्रार्थना भी किया करते थे और इस कार्य के लिए उन्होंने अपने कमरे में ही मिट्टी से बनी हुई खड्गधारिणी काली की मूर्ति स्थापित कर रखी थी।

क्रांतिकारी दल के सभी सदस्य लगभग तरुण ही थे। उनमें एक ही सदस्य कुछ प्रौढ़ जैसा दिखाई देता था, जिसे सब लड़के 'हेम दा' कहकर पुकारते थे। हेम दा का पूरा नाम था—हेमचंद्र दास कानूनगो। एक हरफनमौला व्यक्ति की जो भी कल्पना की जा सकती है, वे सभी लक्षण हेमचंद्र दास में मौजूद थे। आजीविका के लिए हेमचंद्र मिदनापुर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अंतर्गत 'पौंड इंस्पेक्टर' के पद पर कार्य करते थे। यदि उनके कार्य का स्पष्टीकरण न हुआ हो तो यह कहना पर्याप्त है कि बाबू हेमचंद्र दास कानूनगो गाय-भैंस और बकरियों के कांजी-हाउस की देखरेख करनेवाले अफसर थे। जानवरों के बीच रहते हुए भी वे पूरे इनसान थे और जो कोई भी उनके संपर्क में आता, वे उसपर अपनी इनसानियत की छाप अवश्य छोड़ते थे। शायद ही कोई ऐसा काम था, जो उन्हें नहीं आता था। मंच पर पहुँच जाएँ तो अच्छे-से-अच्छा अभिनय करके दर्शकों को मुग्ध कर दें; संगीत सम्मेलन में पहुँच जाएँ तो लोग उनकी गायकी से झूम-झूम उठें; यदि चित्र बनाने पर उतर आएँ तो आधुनिक ढंग के चित्र बनाकर पुरस्कार अर्जित कर लें और यदि फोटोग्राफी की प्रतियोगिता हो तो अच्छे-से-अच्छे फोटोग्राफर उनसे पिछड़ जाएँ। ललित कलाओं के धनी इस कलाकार को मशीनरी का भी अच्छा ज्ञान था और बिगड़ैल-से-बिगड़ैल मशीनों के मिजाज भी वे दुरुस्त कर देते थे। सारंगी, सितार तथा तबला बजानेवाले इस कुशल कलाकार को निशानेबाजी का भी शौक था। उनकी गिनती अच्छे शिकारियों में की जाती थी। हेमचंद्र दास जब तेज साइकिल चलाते तो जैसे हवा से बातें करते थे। इतनी कलाओं के धनी इस कलाकार का स्वभाव भी बहुत सरल और विनोदी था। मनहूसियत उनसे कोसों दूर रहती और जहाँ वे रहते वहाँ

हास-परिहास की फुलझड़ियाँ छूटती रहती थीं।

इस प्रकार की विशेषताओं के धनी हेमचंद्र दास क्रांतिकारी दल के सदस्य बनकर विप्लव यज्ञ की संरचना में लगे हुए थे। छुटपुट कामों में उनका दिल नहीं लग रहा था। वे अंग्रेजों से तगड़े मुकाबले के लिए लालायित थे और बम बनाना सीखने के लिए उनका दिल बेताब था। दल के ही सदस्य वारींद्रकुमार घोष के बड़े भाई अरविंद घोष से उनका परिचय हो गया और एक दिन बातों-ही-बातों में एक योजना बन गई। बात की शुरुआत हेमचंद्र दास ने ही की—

"अरविंदजी! क्या आपको नहीं लगता कि भारत की आजादी के लिए जो प्रयत्न हम करते हैं, वे बच्चों के खेल जैसे नहीं हैं?"

"हेम दा! आपके प्रश्न से लग रहा है कि आप इन प्रयत्नों को बच्चों के खेल जैसा मानते हैं और सच पूछा जाए तो आपका चिंतन ठीक ही है। इस समय हमारा आंदोलन अपने बचपन में है। कभी यह जवानी भी प्राप्त करेगा; और आप तो जानते ही हैं कि जवानी आग के खेल खेलती है।"

"बात तो आपने ठीक कही है, अरविंदजी! पर मैं तो चाहता हूँ कि हमारा दल शीघ्र ही जवानी प्राप्त कर ले और हम लोग आग के खेल खेलना प्रारंभ कर दें। क्या आप ऐसा कोई प्रबंध नहीं कर सकते कि मैं बम बनाना सीख जाऊँ?"

"जहाँ तक बम बनाने का प्रश्न है, हेम दा, वह तो एक दिन बनेगा ही। हमारे दल के लोग ही अपने ढंग से बम बनाने के प्रयत्न कर रहे हैं। वे कब सफल होंगे, यह नहीं कहा जा सकता। यदि आप विदेश जा सकें तो वहाँ यह कला वैज्ञानिक रीति से सीखी जा सकती है।"

"मैं विदेश जाने के लिए तैयार हूँ और इन दिनों हमारे देश के क्रांतिकारी इंग्लैंड में काम भी कर रहे हैं; पर क्या अपने दुश्मन के देश में इस कला को सीखने के अवसर हैं?"

"इंग्लैंड में तो यह संभव नहीं है; पर हमारे जो साथी इंग्लैंड में हैं, वे यह प्रबंध कर सकते हैं कि हम बम बनाने की कला यूरोप के अन्य देशों में सीख सकें। इस दिशा में हमारे सामने जो सबसे बड़ी कठिनाई है, वह यूरोप प्रवास के लिए आवश्यक धन की है।"

"आप इसकी चिंता न करें, अरविंदजी! पुरखों की दी हुई काफी जायदाद इस समय मेरे पास है। यदि मैं उसका कुछ हिस्सा बेच दूँ तो अपना काम बन जाएगा।"

"तो आप जाने की तैयारी कर लीजिए। मैं उस माध्यम की खोज करता हूँ, जो लंदन स्थित भारतीय क्रांतिकारियों से हमारा संपर्क स्थापित करा सके।"

इस प्रकार बातों-ही-बातों में एक योजना बनी और वह क्रियान्वयन की ओर अग्रसर हो गई। उन दिनों श्यामजी कृष्ण वर्मा और सरदारसिंह राणा इंग्लैंड से हटकर फ्रांस में रह रहे थे। हेमचंद्र दास उनके पास जा पहुँचे। श्यामजी कृष्ण वर्मा ने हैदराबाद के मिर्जा अब्बास और बंबई के टी.एम. वापट को हेमचंद्र दास के सहयोगी के रूप में नियुक्त किया। वे इन तीनों को खर्च भी अपने पास से देने लगे। कुशाग्र बुद्धि हेमचंद्र दास तीन महीनों में ही बम बनाने की कला में पारंगत हो गए। वे यह भी सीख गए कि ड्राई सेल के द्वारा किस प्रकार ट्रेन का सफाया किया जा सकता है।

हेमचंद्र दास सन् १९०७ के मध्य में फ्रांस गए थे और बम निर्माण कला सीखकर वे शीघ्र ही भारत लौट आए। कलकत्ता में कई स्थानों पर उन्होंने बम बनाने के कारखाने खोले। ये बम मानिकतल्ला के राजा नवकृष्ण स्ट्रीटवाले मकान में और बाग बाजार के गोपीमोहन दत्त लेन में बनाए जाते थे। बंगाल के छोटे लाट की ट्रेन को उड़ाने के लिए चंदन नगर में जिस बम का प्रयोग किया गया था, वह हेमचंद्र दास का बनाया हुआ था।

अत्याचारी अंग्रेज अफसरों को दंडित करने के साथ-साथ गद्दार भारतीयों को भी दंडित करने की योजनाओं में हेमचंद्र दास क्रांतिकारियों के साथ रहे। इस प्रकार के एक गद्दार नरेंद्र गोस्वामी की हत्या के प्रयत्नों में हेमचंद्र दास सम्मिलित रहे।

आखिर हेमचंद्र दास भी गिरफ्तार हुए बिना न रह सके। उन्हें भी 'अलीपुर बम केस' के अभियुक्तों में सम्मिलित किया गया। देशभक्ति के पुरस्कार में उन्हें आजीवन कारावास और निर्वासन का दंड मिला। अंडमान की काल कोठरियों में बंद हेमचंद्र दास अपने साथी क्रांतिकारियों का मनोरंजन किया करते थे। वे कहा करते थे—

"जानवरों को कांजी-हाउस में बंद करते-करते मैं स्वयं भी आदमियों के कांजी-हाउस में बंद हो गया।"

□□□

Vichaar Television Network Limited

प्रणित वाचनालय पु.क्र. ३२७

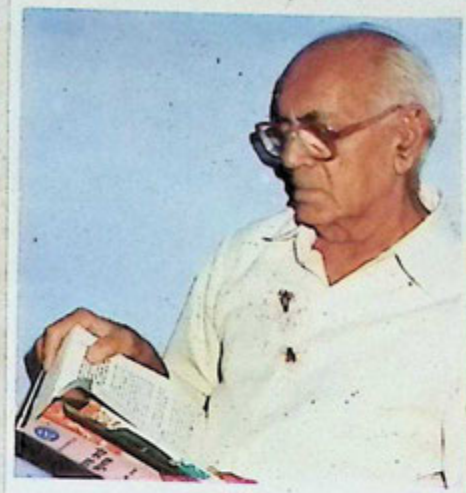

श्रीकृष्ण 'सरल'

जन्म : १ जनवरी, १९१९ को अशोक नगर, गुना (म.प्र.) में।

श्रीकृष्ण सरल उस समर्पित और संघर्षशील साहित्यकार का नाम है, जिसने लेखन में कई विश्व कीर्तिमान स्थापित किए हैं। सर्वाधिक क्रांति-लेखन और सर्वाधिक महाकाव्य (बारह) लिखने का श्रेय सरलजी को ही जाता है।

श्री सरल ने एक सौ सत्रह ग्रंथों का प्रणयन किया। नेताजी सुभाष पर तथ्यों के संकलन के लिए वे स्वयं खर्च वहन कर उन बारह देशों का भ्रमण करने गए, जहाँ-जहाँ नेताजी और उनकी फौज ने आजादी की लड़ाइयाँ लड़ी थीं।

श्रीकृष्ण सरल स्वयं स्वतंत्रता संग्राम सेनानी रहे तथा प्राध्यापक के पद से निवृत्त होकर आजीवन साहित्य-साधनों में रत रहे। उन्हें विभिन्न संस्थाओं द्वारा 'भारत-गौरव', 'राष्ट्र-कवि', 'क्रांति-कवि', 'क्रांति-रत्न', 'अभिनव-भूषण', 'मानव-रत्न', 'श्रेष्ठ कला-आचार्य' आदि अलंकरणों से विभूषित किया गया।

निधन : १ सितंबर, २००० को।

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली